दिव्यानुभूति

(स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजीका जीवनचरित)

प्रथमभाग



स्वस्तिप्रकाशन-संस्थान
श्रीगोवर्द्धनमठ, पुरीपीठ

दिव्यानुभूति

(स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी का जीवन चरित)

प्रथमभाग



स्वस्तिप्रकाशन-संस्थान
श्रीगोवर्द्धनमठ, पुरीपीठ

दिव्यानुभूति
प्रकाशन-प्रशस्ति

॥ श्रीरिः ॥

श्री गणेशाय नमः

स्वस्तिप्रकाशनसंस्थानम्

पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ-पुरीका ४४वाँ पुष्प

❖

दिव्यानुभूति (प्रथम भाग)

❖

❖

सहयोगराशि
११० (एक सौ दस रुपये)

❖

प्रकाशित
प्रथम संस्करण वि.स. २०६७, ई.सन् २०१०
एक हजार (१०००) प्रतियाँ
प्रथम संस्करण वि.स. २०७६, ई.सन् २०१९
एक हजार (१०००) प्रतियाँ

❖

मुद्रक
लोकवाणी प्रिंटिंग प्रेस, पटना-८०००४

❖

प्रकाशक
स्वास्तिप्रकाशन-संस्थान
श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य-गोवर्द्धनमठ,
श्रीशङ्कराचार्य, पुरी - ७५२००१, ओडीशा, (भारत)

।।श्रीहरिः।।

★ श्रीगणेशाय नमः ★

प्रकाशकीय

पूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य स्वामी निश्चलानन्दसरस्वतीजी महाभागके बाल्यकालका नाम **नीलाम्बर** था । संन्यास से पूर्व साधुवेष में आपका नाम **ध्रुवचैतन्य** था ।

जिस जीवन में धर्म और ईश्वर के प्रति आस्था सन्निहित हो, जो सेवा-सद्भाव-स्नेह-सहानुभूति-सत्यसहिष्णुता-तदर्थ क्रान्ति तथा वैदुष्य से समन्वित हो ; वह आदर्श माना जाता है ।

उक्त हेतुओं से '**दिव्यानुभूति**' नाम से पूज्यपाद के जीवनचरित का चित्रण किया गया है । 'दिव्यानुभूति' का संक्षिप्तरूप '**जीवनज्योति**' नाम से स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान से प्रकाशित हो चुका है ।

'दिव्यानुभूति' में मिथ्यांश का कहीं भी सन्निवेश नहीं है । सत्यार्थ का ही अक्षरशः चित्रण है । इसकी संरचना महाभारत और रामायण की आर्षशैली में की गयी है, ताकि यह आध्यात्मिक, धार्मिक और सांस्कृतिक धरातलपर अनुपमनिधि एवम् व्यावहारिक धरातलपर आदर्श इतिहास सिद्ध हो सके ।

ग्रन्थ में चरितनायक से सम्बद्ध महानुभावों के गुण या दोषका चित्रण राग-द्वेषपूर्वक नहीं, अपितु चरितनायकके चरित को व्यक्त करनेवाले उज्ज्वल संस्थान के रूप में आस्थापूर्वक किया गया है । नायकके नाम-रूप-गुण-कर्मका निरूपण भी राग-द्वेषपूर्वक नहीं ; बल्कि तटस्थ-दृष्टिसे यथार्थचित्रण की भावना से किया गया है । महर्षि वाल्मीकि, देवर्षि नारद, महर्षि कुम्भज और श्रीव्यासादि मनीषियों ने जिस भावसे

निज-निज जीवनवृत्त का सङ्कीर्त्तन किया है, परोक्षशैली में उसी भावसे इस जीवनगाथा की संरचना की गयी है ।

मनमें कलुषित भाव का अभाव और सत्यके प्रति आस्थाने चरितनायकके हृदयको विभिन्न ढङ्गसे झङ्कृत किया है । परन्तु स्वप्न में प्रशंसक और निन्दक तथा पोषक एवम् घातक दोनों की आत्मरूपता की दृष्टि से अथवा अभिनय मञ्चपर पक्ष-विपक्ष की स्वपक्षरूपता की दृष्टिसे ग्रन्थसंरचना का साहस जुटा पाना सम्भव हो सका है ।

अभिप्राय यह है कि जिन व्यक्तियों या संस्थानों के द्वारा यातना प्राप्त हुई, उनके प्रति भी कलुषित भाव न होने पर भी श्रीप्रभुकृपामृत की स्फूर्ति में उन्हें सहयोगी समझ कर ही जीवनचरित में उनका उल्लेख किया गया है ।

स्रष्टा सर्वेश्वर की यह सृष्टि अद्भुत कृति है । श्रीगौडपादमहाभाग के शब्दों में धर्म और ब्रह्मरूप वेदार्थ में मनःस्थिति की स्फूर्ति की भावना से इसकी संरचना है- **'उपायः सोऽवताराय'** (३.१५)। तद्वत् इस ग्रन्थ की संरचना भगवत्कृपा की अनुभूति तथा सत्यकी विजयश्री की भावना से की गयी है ।

ध्यान रहे, जिस वस्तु या व्यक्ति के दर्शनादि की योग्यता जीवन में नहीं होती, उसका दर्शनादि स्वप्न में भी नहीं होता, अर्थात् अन्तर्निहित योग्यता ही वस्तु और व्यक्ति के दर्शनादि में हेतु है । अतः बाह्य जन, देवता, ग्रह, कर्म, कालादि पर दोषारोपण दार्शनिक धरातल पर व्यर्थ ही है ।

ब्रह्मर्षि वाल्मीकि-विरचित 'रामायण' और श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास विरचित 'महाभारत' के अनुशीलन से यह रहस्य सिद्ध है कि प्रजापति ब्रह्माजी द्वारा निर्दिष्ट अभिनय में मनोनीत देवादि ही मर्त्यलोक में लीलानायक तथा पक्ष-विपक्ष के परिकर हुए । इसी भाव से इस आर्ष

संरचना का अनुशीलन करना चाहिये । यदि भगवान् रामके जीवन में विश्वामिश्र और कैकेयी-काण्ड न होता तो रामजी का चरित दिग्दिगन्त, लोक-लोकान्तर तथा युग-युगान्तर तक प्राप्त नहीं होता । तद्वत् यदि पाण्डवों को पितृवियोग, धृतराष्ट्र का प्रकोप और दुर्योधनादिका कुयोग न होता तो पाण्डवों का चरित दिग्दिगन्त, लोक-लोकान्तर तथा युग-युगान्तर तक प्रशस्त नहीं होता ।

ध्यान रहे, चरितनायक ही जिस ग्रन्थ का अध्ययन और अनुशीलन कर विह्वल हो जाते हैं, उसका अध्ययन और अनुशीलन हम पाठकों को आस्था, सहनशीलता और धैर्यसहित अवश्य करना चाहिये ।

सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन भागों में प्रकाशित करने का विचार है । 'दिव्यानुभूति' में जीवसुलभ रुग्णतादि दुर्बलताओं एवम् ध्रुव, प्रह्लाद, दत्तात्रेय, शेष, परशुराम, रन्तिदेव, कुन्ती, तितिक्षु ब्राह्मण, याज्ञवल्क्य, स्कन्द, भगीरथ, शङ्कर, चाणक्य, रामदासादि में सन्निहित दिव्यताओंका सहज सन्निवेश परिलक्षित है ।

ग्रन्थ के इस प्रथमभाग के अन्तर्गत प्रथम खण्ड '**जन्मभूमि-प्रवास**' नामक है, द्वितीयखण्ड '**दिल्ली-निवास**' नामक है तथा तृतीय खण्ड '**नैमिषारण्यवास**' नामक है । 'आदित्यमित्रम्' के रचयिता दिवङ्गत श्रीहरिवंशभूषणमिश्रजीका सादर और सस्नेह स्मरण है ।

निवेदक

स्वामी निर्विकल्पानन्दसरस्वती

पुरी

मार्गशीर्षकृष्ण २ बुध, सं. २०६६
(४ नवम्बर, २००९)

।।श्रीहरिः ।।

★ श्रीगणेशाय नमः ★

★

विषयानुक्रमणी

*

दिव्यानुभूति (प्रथम भाग)

विषयानुक्रमणी

विषयानुक्रमणी

विषयानुक्रमणी

विषयानुक्रमणी

विषयानुक्रमणी

विषयानुक्रमणी

।।श्रीहरि: ।।

★ श्रीगणेशाय नम: ★

मङ्गलाचरणम्

गणेशं प्रमथाधीशं निर्गुणं सगुणं विभुम् ।
योगिनो यत्पदं यान्ति तं गौरीनन्दनं भजे ।।१

(गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्)

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तित्रयं यद्भावसाधनम् ।
तद्ब्रह्मसत्तासामान्यं सीतातत्त्वमुपास्महे ।।२

(सीतोपनिषत्)

चित्सदानन्दरूपाय सर्वधीवृत्तिसाक्षिणे ।
नमो वेदान्तवेद्याय ब्रह्मणेऽनन्तरूपिणे ।।३

(वज्रसूचिकोपनिषत्)

श्रीमहाविष्णवे तुभ्यं नमो नारायणाय च ।
गोविन्दाय च रुद्राय हरये ब्रह्मरूपिणे ।।४
नारायण महाविष्णो श्रीधरानन्त केशव ।
वासुदेव जगन्नाथ हृषीकेश नमो नमः ।।५

(नारायणपूर्वतापिन्युपनिषत्)

नारायण हरे कृष्ण वासुदेव जगद्गुरो ।
मुकुन्दाच्युत देवेश महाविष्णो नमोऽस्तु ते ।।६

(नारायणोत्तरतापिन्युपनिषत्)

दिव्यानुभूति

मङ्गलाचरण

सूदितस्वातिरिक्तारिसूरिन्दात्मभावितम् ।
सूर्यनारायणाकारं नौमि चित्सूर्यवैभवम् ।।७

(सूर्योपनिषत्)

प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ।
महादेवं महात्मानं विश्वस्य जगतः पतिम् ।।८

(महाभारत-शान्तिपर्व २८४.५७)

श्रुत्याचार्योपदेशेन मुनयो यत्पदं ययुः ।
तत्स्वानुभूतिसंसिद्धं स्वमात्रं ब्रह्मभावये ।।९

(मैत्रेय्युपनिषत्)

❋

।। श्रीहरिः ।।

★ श्रीगणेशाय नमः ★

दिव्यानुभूति

(प्रथम भाग - प्रथम खण्ड)

१. जन्मभूमि-प्रवास

१. जन्मभूमि प्रशस्ति

श्रीजनक, याज्ञवल्क्य, गौतम, कणाद, कुमारिल, मण्डन, वाचस्पति, शङ्करमिश्र, उदयन, गङ्गेश उपाध्याय, कविकोकिल–विद्यापति, श्रीसीता, गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, उभयभारती आदि की जन्मभूमि तथा कर्मभूमि मिथिला की प्रशस्ति सर्वविदित है ।

❋

२. वंशप्रशस्ति

पण्डित श्रीदिगम्बरझा वर्तमान मधुवनी मण्डलान्तर्गत वेनीपट्टी के निकटवर्ती ग्राम बरहा निवासी 'दलिहरे बरगमिया' मूलक कश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे । उनका विवाह 'कर्महे अहपुर' मूलक शाण्डिल्य गोत्रीय बख्शी परिवार में हुआ । कालक्रम से वे हरिपुर बख्शी टोल में ही बस गये ।

पण्डिंत दिगम्बर झा के एकमात्र पुत्र पण्डित श्रीबालमुकुन्द झा हुए । श्रीबालमुकुन्द झा के ज्येष्ठपुत्र पण्डित यदुवंशी झा विवाहोपरान्त

युवावस्था में ही स्वर्गवासी हो गये । उनके कनिष्ठपुत्र पण्डित श्रीलालवंशी झा हुए, जिनका उपनाम 'बचबे झा' हुआ । '**झा**' शब्द उपाध्यायके अपभ्रंश ओझा का संक्षिप्तरूप है । नव्यन्याय के रचयिता श्रीगङ्गेश झा श्रीगङ्गेश उपाध्याय नाम से चर्चित हैं ।

पण्डित श्रीलालवंशी झा का विवाह निकटस्थ श्रीराजराजेश्वरी धामके सन्निकट दिघवेसन्दहपुरमूलक शाण्डिल्य गोत्रीय परिवार में पण्डित श्रीरमानन्दठाकुर की कन्या '**गीता**' देवी से हुआ ।

यद्यपि मिथिला की प्रसिद्धि के अनुसार शाण्डिल्य सामवेदी होते हैं और अन्य गोत्र के यजुर्वेदी होते हैं । तथापि पिलखवाड़के पञ्जीकार श्रीजयनाथविरचित वंशावली के अनुसार कश्यप, काश्यप, वत्स, शाण्डिल्य, कौशिक और धनञ्जय नामक छह गोत्र सामवेदी मान्य हैं ।

❃

३. प्रादुर्भाव

श्रीबालमुकुन्द झा मिथिला में चर्चित भक्तिरस के कवि हुए हैं । उनके सुपुत्र व्याकरण, ज्योतिष और धर्मशास्त्र के विद्वान् श्रीलालवंशी झा प्रचलित नाम बचबे बाबू हुये । वे श्रोत्रिय ब्राह्मण दरभङ्गा नरेश के राजपण्डित थे । उनकी धर्मपत्नी गीतादेवी के गर्भ से ज्येष्ठ पुत्र श्री श्रीदेव झा, मध्यमपुत्र श्रीशुकदेव झा और कनिष्ठ पुत्र श्रीनीलाम्बर झा हुए । नीलाम्बर और शुकदेव की बड़ी बहन शशिकला देवी हुईं ।

नीलाम्बर का जन्म विक्रमसंवत् २००० आषाढ कृष्ण त्रयोदशी उपरान्त चतुर्दशी बुधवार रोहिणी नक्षत्र वृषराशि, तदनुसार ३० जून, सन् १९४३ में दरभङ्गा जिलान्तर्गत हरिपुरबख्शी टोल नामक ग्राम में हुआ । हरिपुर आजकल मधुवनी जिला में है ।

ध्यान रहे, बालकके जन्मनक्षत्र रोहिणी द. ३८.२१ के उपरान्त मृगशिरा नक्षत्र का योग था । तदनुसार शूलयोग द. २.५१ के उपरान्त

गण्डयोग प्राप्त था । उस समय दिनमान ३३-५१, रात्रिमान २६-९ एवम् उभयमान ६०-० था । शतपदचक्रानुसार मृगशिरके प्रथम चरण में जन्म होनेके कारण '**वेदानन्द**' नाम निर्दिष्ट हुआ, जो कि वृषराशि के अनुरूप था ।

फलादेशके अनुसार बालक चामुण्डा-शक्ति, सूर्य और शिवका भक्त बताया गया । उसकी गणित और आयुर्वेद के कारण विशेष ख्याति बतायी गयी । बालककी लग्नकुण्डलीमें १ में लग्न, २ में शनि तथा चन्द्र, ३में सूर्य और बुध, ४में गुरु एवम् राहु, ५में शुक्र, १० में केतु तथा १२में मङ्गल प्राप्त है ।

❋

४. नामकरण

पिताजी ने राशि-नाम 'वेदानन्द' रखा । वे ख्यातिप्राप्त दैवज्ञ थे । उन्होंने स्वयं ही बालक की जन्मकुण्डली बनायी । ज्येष्ठ भ्राता श्री श्रीदेव झाजी ने अपने अनुज का नाम '**नीलाम्बर**' रखा । नीलाम्बर के दो अग्रज स्वल्पायु में ही काल कवलित हो गये थे । उनमें कोई एक लौट कर पुनः आया है, ऐसा सोचकर माताओं ने शिशु का नाम 'घुरन' रखा । गाँव में अधिकांश व्यक्ति नीलाम्बर को इसी नाम से जानते थे।

❋

५. आत्मबोध

पलने पर शिशु नीलाम्बर को नित्य ही कई बार अद्भुत दृश्य दीखते । काली-काली साड़ी पहनी हुई कई विकराल स्त्रियाँ एक साथ शिशु पर तीक्ष्ण तलवार का प्रहार करतीं । बालक सहसा आँखें मींच लेता और चौंक पड़ता । प्रायः वर्ष भर यह क्रम चला ।

इस घटनाक्रम ने शिशु नीलाम्बर को पलने में ही अद्भुत बोध प्रदान किया– 'मैं कोई मरनेवाला तत्त्व नहीं ।' यद्यपि मातृभाषा आदि का बालक को बोध नहीं था । फिर भी गर्भगत ऋषिसंज्ञा–सम्प्राप्त मनुष्योंको कई जन्मों के परिज्ञान के तुल्य यह दिव्य बोध बालक को मातृभाषामें भगवत्कृपा से हुआ । जिसका स्मरण भी बना रहा ।

❋

६. श्रीकृष्णदर्शन

बालक की आयु लगभग दो वर्ष की थी । रात्रि में पिता के पास शयन कर रहा था । वह हठात् चौंक पड़ा और रोने लगा । रोते हुए तोतली वाणी में वह बोल पड़ा– **'राधा किश्न (कृष्ण) के गन्हा (गहना, आभूषण) हेरा गेलैन (खो गया)'** ।

पिता की नीन्द खुली । बालक को पुचकारा । परन्तु वह तो विलख-विलखकर रोते–रोते रट लगाये कह रहा था– **'राधा किश्न के गन्हा हेरा गेलैन'** ।

रात बीती । माता–पिता–बहिन–चाची सब हैरान । बालक क्या कह रहा है, इसे सहसा हो क्या गया ?

बालक ने स्वयं को अकेला पाया । घरके बाहर तालाब और अपने बाग, फिर दूसरे तालाब के किनारे से वह प्रथम वार श्रीराधा-कृष्ण के प्राङ्गण में दूसरे मुहल्ले में पहुँच गया । तालाब के किनारे खड़े होकर वह मन्दिर में स्थित श्रीराधा-कृष्ण को निहारने लगा । सहसा उस दिगम्बर शिशु के समीप दिगम्बर श्रीकृष्ण पहुँच गये । दोनों कन्धों पर हाथ रखा । दृष्टि से दृष्टि मिलाई । विह्वल होकर बोल पड़े– 'हमर गहना हेरा गेल, कतउ देखलउँ हैं' (हमारा आभूषण खो गया, कहीं देखा है?)

दिव्य स्पर्शलाभ कर स्नेहिल नेत्रों की चोट खाकर, करुण स्वरलहरी का श्रवण कर बालक नीलाम्बर समझ गया, ये मेरे सखा श्रीकृष्ण हैं । उससे कुछ बोला नहीं गया । बालगोपाल अन्तर्हित हो गये । बालक द्रुत गति से अपने घर आया । मातृ-तुल्या बाल विधवा अपनी बहन से एकान्त में बोला- 'उस मन्दिर में रहनेवाले मेरे भगवान् के गहने खो गये हैं, तुमने देखा है क्या ?'

बहन आश्चर्य-चकित हो गयी । कहाँ यह नन्हा-सा बालक, कहाँ दूसरे मुहल्ले का मन्दिर । यह अकेले ही दो-दो सरोवर के किनारे से इतनी कम आयु में अप्रत्याशित रीति से वहाँ कैसे पहुँच गया ? इसे कौन मिल गया ? यह क्या बोलता है ? इसका हाव-भाव भी अद्भुत है । बहन ने पुत्रतुल्य भाई को स्नेहावेश में हृदय से लगाया । गोद में उठाया । झटपट मन्दिरवाले ब्राह्मण के घर गयी । अपनी बालविधवा सहेली को सब कुछ रातसे तब तक की घटना को सुनाया । सहेलीने कहा- 'सच है, आज रात श्रीराधा-कृष्ण के आभूषणों की चोरी हो गयी है ।'

दोनों के नेत्रों से अविरल प्रेमाश्रु । अरे, इस छोटे-से बालक को भगवान् ने दर्शन दिया । इसे स्वप्न में भी आभूषण चोरी की बात बता दी । इसके कन्धों पर हाथ रखा । इससे सम्भाषण किया । धन्य है प्रभु की करुणा । धन्य है बालकका जीवन ।

भगवान् की योगमाया ने इस घटनाके प्रचार-प्रसार को सीमित कर दिया ।

❀

७. वृन्दावन दर्शन की चटपटी

नेपालनिवासी एक पण्डितजी दिल्ली में अनुष्ठानादि कृत्यों से जीविकोपार्जन करते थे । विविध कला में वे कुशल थे । कर्मकाण्डी होने

के साथ ही वस्त्र सीने, भजन-कीर्त्तन करने, हारमोनियम बजाने में भी वे दक्ष थे । दूरके सगे-सम्बन्धी ही लगते थे । एकवार वे नीलाम्बर के गाँव अपने रिस्तेदारों में आये । समय निकालकर नीलाम्बर के घर भी पधारे । उन्होंने अनुनय-विनय करने पर हारमोनियम पर विचित्र तान छेड़ा- **'बस एक बार, बस एक बार !'** वृन्दावन के कुञ्ज गलिन में मुरली मधुर बजा दो श्याम !....."

नीलाम्बर केवल पाँच वर्ष का था । जब वह लगभग तीन वर्षकी आयुका था पिता तथा माताका देहावसान हो चुका था । चाची सुमित्रा देवी और बहिन शशिकला ने बालक का पालन-पोषण पुत्रवत् किया था ।

नीलाम्बर को सखा श्रीकृष्ण का दर्शन तो सुलभ ही हो गया था, सखा के धाम श्रीवृन्दावन का वर्णन सुनकर वह विह्वल हो गया । सुमधुर सङ्गीत- 'बस एक बार, बस एक बार' उसके मन में गूंजने लगा, वृन्दावन जाने की चटपटी बढ़ने लगी । एकान्त में एक दिव्य नदी के तट पर दोनों ओर बालुका और वृक्षावलियों का दृश्य दिखने लगा । कालान्तर में पहचान हुई वह नैमिषारण्य में प्रवाहित होनेवाली गोमती नदी थी ।

बाल्यकाल में नीलाम्बर अकेले ही अपने बाग में आ जाते और घण्टों भगवान् का चिन्तन करते । कभी-कभी मिट्टी में लकड़ी से छेदकर किसी छोटी और पतली-सी कलम-सरीखी लकड़ी को गाड़ देते और कहते "भगवान् मुझपर प्रसन्न हैं तो यह लकड़ी चारों ओर घूमने लगे ।" और वह लकड़ी घूमने लगती । आत्मा अमर है, भगवान् सर्वव्यापक हैं- यह बोध उन्हें सुस्पष्ट था । वे अपने वागके विशाल आँवलेकी शाखापर अकेले ही घण्टों बैठे और लेटे रहते ।

८. पद्मासन सिद्धि

बाल्यकाल में श्रीलोचन झाजी के अनुज श्रीकमलाकान्त झाजी ने एकदिन नीलाम्बर को पद्मासन लगाना सिखा दिया । शिशुने यदा-कदा एकान्त में पद्मासन लगाना प्रारम्भ किया । यज्ञोपवीत के लिए निर्मित विशालमण्डप को ही अपने निवास के उपयुक्त घर बनाया था नीलाम्बर ने ।

एक बार मण्डप में पद्मासन सहित मण्डप के अन्तिम सिरे तक नीलाम्बर उठे और पुन: अनायास यथास्थान पद्मासन लगाये ही उतर आये । वे भगवान् की इस अनुकम्पा पर अत्यन्त आह्लादित हुये । यही घटना कुछ समय पश्चात् पुन: घटी । साधना में विघ्न न पड़े, इस भावना से नीलाम्बर ने इस दुर्लभ उपलब्धि को अपने तक ही सीमित रखा । एक बार बाल्यकाल में स्वप्न में एक कुत्ते के शरीर पर लिखा था "**सारमेय**"। प्रात: अग्रज महोदय श्री श्रीदेव झाजी से नीलाम्बर ने पूछा सारमेय किसे कहते हैं ? उन्होंने उत्तर दिया- 'कुत्ते को' । कालान्तरमें नीलाम्बरको भैरवजी का अनुग्रह प्राप्त होता रहा ।

❀

९. आदित्यमित्रम्

यज्ञोपवीत के पश्चात् अग्रज महोदय से नीलाम्बर ने पूछा '**चक्षुर्मित्रस्य**' में मित्र किसे कहा गया है ? अग्रज महोदय ने कहा- मित्र सूर्य भगवान् का नाम है । तत्काल नीलाम्बर ने सूर्य को अपना मित्र मान लिया । सूर्यदेव में उसकी सुहृत् (मित्र) बुद्धि बन गई ।

❀

१०. दिव्यमन्त्रोपलब्धि

श्रीगरुड़जी ने यज्ञोपवीतके पश्चात् लगभग तेरह वर्षकी आयु में उसे एक वर्ष के अन्दर तीन बार पञ्चदशाक्षरी वासुदेव विद्या (पन्द्रह अक्षरोंवाले वासुदेव मन्त्र) का माहात्म्यसहित उपदेश दिया । उस दिव्य मन्त्र में भक्ति, मुक्ति और सदेह वैकुण्ठ गमन तक की शक्ति समन्वित है ।

बाल्यकाल में श्रीविश्वामित्रजी ने स्वप्न में नित्य ही लगभग तीस दिनों तक धनुर्वेद का साङ्गोपाङ्ग सवाघण्टे नित्य क्रमबद्ध प्रशिक्षण दिया । कालक्रम से उस धनुर्विद्या को नीलाम्बर भूल गया ।

❋

११. तत्त्वबोध

यज्ञोपवीत के पूर्व १०/११ वर्ष की आयु में दो बार नीलाम्बर की अब तब की हालत हो गई । प्राङ्गण में मृतप्राय समझकर लिटाकर सभी लोग रुदन करते हुए, कुमार की परिक्रमा करते हुए कहने लगे- ''इनकी जीवन-लीला समाप्त हो रही है । जिसे दर्शन करना हो कर लो । अल्प समय के लिये ही ये यहाँ आये थे । हमको अनाथ कर यहाँ से जा रहे हैं ।''

कुमार नीलाम्बर बोलने में असमर्थ होने पर भी उक्त विलाप युक्त वचनों को सुने । सहसा उनके हृदय में दिव्यबोध उदित हुआ । ''मैं कोई मरनेवाला नहीं, ये मुझे मरनेवाला समझ रहे हैं । मैं तो मृत्यु का द्रष्टा हूँ ।'' हृदय में इस बोध के उद्बुद्ध होते ही नीलाम्बर मुस्कुराते हुये सहसा उठ बैठे । सबको आश्चर्य हुआ । सबके नेत्र प्रेमाश्रु से पूरित हो गये ।

❋

१२. विद्याध्ययन

जब बड़े भाई का विवाह हुआ, तब भाभी सौभाग्य सुन्दरी बहुरिया 'सरस्वती' देवी ने अपने देवर नीलाम्बर को अद्भुत स्नेह प्रदान किया। नीलाम्बर पढ़ने और पढ़ाने में बड़े ही दक्ष थे। दूसरी-तीसरी कक्षा में भी रात्रि के प्रायः बारह एक बजे तक पढ़ते थे। अध्यापक श्री लक्ष्मीनारायण सिंह ने इन्हें इतना योग्य बनाया कि ये अपने सहपाठियों को सभी विषय पढ़ा भी देते और अर्द्धवार्षिक एवं वार्षिक परीक्षा में उनके कापी को जांचकर समुचित अङ्क भी प्रदान करते।

एक बार गर्मी छुट्टी के दिनों में नीलश्रीने बक्सेमें बन्द अग्रज महोदयके ग्रन्थोंको देखना प्रारम्भ किया। एक बृहदाकार ग्रन्थपर उनकी दृष्टि जम गयी।

हिन्दी अनुवादसहित श्रीकालिदासजी के समस्त ग्रन्थोंका उसमें सङ्कलन था। नीलने श्रीरघुवंश, मेघदूत आदि सबका मूलसहित अध्ययन किया। यद्यपि नीलकी आयु दस या ग्यारहसे अधिक नहीं थी, तथापि दैवयोगसे उसे अद्भुत आह्लाद प्राप्त हुआ।

उन ग्रन्थों के अध्ययनका मन पर विचित्र प्रभाव भी पड़ा। चाची, भाभी किसी मातृशक्तिको बिना घूंघटके खुले बाल देखकर नील अत्यन्त उग्र होकर उसके सिरपर मिट्टी फेंके बिना नहीं रहते थे। जब उनकी माँ गोदीमें लिटाकर दुधमुँहे नीलको दूध पिलातीं। यदा-कदा उनके कपोलोंपर माँके खुले बाल छू जाते, इससे बालक नील चिढ़कर आँखे मूँद लेते और हाथसे बालोंको फेंकनेका प्रयास करते। ग्रन्थोंके अध्ययनके बाद नीलका वह उग्र स्वभाव मृदु हो गया; परन्तु स्वयंको शृङ्गारप्रधान व्यक्तियोंके समान सुसज्जित न रखने, तैल-कंघा-साबुन आदिका प्रयोग न करनेका मनोभाव पूर्ववत् बना रहा। नीलकी भाषामें साहित्यका अद्भुत ढङ्ग से समावेश हो गया।

एक दिन बड़ी भाभी ने देवर से पत्र लिखने तक पढ़ा देने की भावना व्यक्त की नीलाम्बर ने चन्द महीनों में भाभी को पत्र लिखने तक की योग्यता प्रदान की । बाग आदि में काम करने वाले दरबरिया एवं प्रयाग को भी नीलाम्बर ने पत्र लिखने तक की योग्यता शीघ्र प्रदान की । छोटी भाभी विद्याजी जो आयु में देवर के कुछ वर्ष ही बड़ी थीं, उन्हें भी देवर ने कम समय में पढ़ना-लिखना सिखा दिया ।

नीलाम्बर पर देवी देवता और पितरों का अनुग्रह बचपन से था । उसका प्रकाश वह नहीं करता था । वह बचपन से ही मनुष्यों से घबराता था, जीवच्छ नदी के तटपर या एक किलो मीटर दूर अपने बाग में चुपके से वह चला जाता । उसकी धारणा बन गई थी कि भूत-प्रेत, सर्प, राक्षस और पिशाच भी उतने भयङ्कर नहीं होते, जितने कि मनुष्य । एक बार सन्ध्या की बेला में श्रीविनोदानन्द मित्र को साथ लेकर लालटेन हाथ में लेकर कुतूहल वश नीलाम्बर गाँव से एक किलोमीटर दूर अपने आम के बगीचे में चले गये । आम छोटे-छोटे थे । केवल चटनी के योग्य थे । समीप के बाग में कोई चलते हुए उच्च स्वर से दुर्गा सप्तशती का पाठ कर रहा था । यह क्रम कई मिनटों तक चलता रहा । दोनों मित्र समझ गये कि कोई विद्वान् ब्राह्मण मरने के बाद प्रेतयोनि को किसी प्रमाद से प्राप्त हुए हैं । न तो अधोगति प्राप्त व्यक्ति ने डराया न दोनों मित्र डरे । घण्टे - डेढ़ घण्टे बाद दोनों अपने-अपने घर चले गये ।

❋

१३. जय मङ्गला की माया

एक वर्ष बाग में रात्रि में नीलाम्बर आम की रखवाली कर रहे थे । दरबरिया जो कि रात्रि में बगीचे में सोता था, उसकी कुछ ही महीने पूर्व शादी हुई थी । उसने एकान्त में नीलाम्बर से एक दिन कहा- "आप

निडर हैं। मैं कभी-कभी रात्रि में आपके पास सोने नहीं भी आ पाऊँगा। आप मेरी शिकायत चाची या बहनजी से मत करना।'' नीलाम्बर मुस्कुराते हुये बोले- 'तुम निश्चिन्त रहो' एक दिन पर्याप्त रात्रि हो जाने पर भी जब दरबरिया नहीं आया, तब नीलाम्बर समझ गये कि आज दरबरिया नहीं आयेंगे। वे गाँव की ओर मुख किये निहार रहे थे कि एक विचित्र दृश्य दिखा, कुछ वर्ष पूर्व गाँव में एक विवाहिता गर्भवती थी, वह अपने मायके में दैवयोग से मर गई। उसका दाहसंस्कार नीलाम्बर के बाग के समीप ही किया गया था। वह ब्राह्मणी मरकर प्रेत हुई। आस-पास यात्रा करनेवाले कई ब्राह्मणों को उसने डराया। एक हाईस्कूल के प्रधानाचार्य को तो इतना कष्ट दिया कि वर्षों तक उनकी नाक से रक्त गिरता रहा। नीलाम्बर ने देखा वही जयमङ्गला समीप के पथपर खड़ी है। उसने तत्काल आकाश में रस्सी फेंकी, बिना आश्रय के ही रस्सी लटक गयी। उसने बैठने और खड़े होने के लिए झटपट झूला बनाया। और फिर क्षण भर में ही वह यहाँ से वहाँ झूलने लगी। नीलाम्बर आश्चर्यचकित होकर यह सब देखते रहे। थोड़ी देर बाद वह अदृश्य हो गई।

❃

१४. शैशव में शुभ संस्कार

महामहोपाध्याय श्रीमुकुन्द झा बख्शी अद्वितीय विद्वान् और नीलाम्बर के सगे-सम्बन्धी थे। उनके बारे में मिथिला में उन दिनों प्रसिद्धि थी - 'जो आन पण्डित के पोथी, से मुकुन्द के थोथी।' -'अन्य पण्डितों का जो ज्ञान पोथी में सन्निहित है, वह मुकुन्दकी जिह्वापर नाचता है।'

उनके सुपुत्र श्रीजयकृष्ण झा मूर्धन्य विद्वान् थे। श्रीगोपालजी झा तान्त्रिक, विद्वान् तथा राष्ट्रभक्त मनीषी थे। वे अपने खर्च से प्रतिवर्ष

नवरात्र में देवी दुर्गादि की मृण्मयी प्रतिमा प्रतिष्ठित कर विधिवत् पूजन करते । पुरोहित आचार्य के रूप में नीलाम्बर के पिता ही होते थे । बालक को इन विद्वान् सत्पुरुषों का स्नेह सुलभ था । कभी-कभी पिताजी बालक को श्रीगोपालजी के पास ले जाते । बालक कुछ देर बाद बोलता- ''बाबू अंगनी चलू', 'पिताजी घर चलें' ।

श्रीगङ्गेशमिश्रजी न्याय, व्याकरण, साहित्य आदि के ख्यातिप्राप्त विद्वान् थे । वे पञ्जावस्थित पटियाला में प्राचार्य थे । गर्मी के दिनों में वे जब गाँव आते, तब श्रीमद्भागवत की रात्रि में नित्य ही कथा कहते । चाचीजी बालक को गोद में बिठाकर कथा सुनतीं ।

गाँव में समीपवर्ती मण्डप में नित्य हि पुराणकथा विद्वान् मनीषियों के द्वारा प्रारम्भ की गयी । चाचीजी बालक को गोद में बिठाकर कथा सुनतीं।

पण्डित गङ्गेशजी को चाचीजी आदि नैयायिक कहतीं । बालक की उनके प्रति अगाध आस्था उदित हुई । बालक ने अपने मित्रों से कहना प्रारम्भ किया- 'मुझे नैयायिक बनना है ।'

चाची बालक नीलश्रीको सम्मुख विठाकर कथा सुनातीं-

पहले खेतोंमें बिना छिल्केके चावल ही हुआ करते थे । एक बार एक ब्राह्मण निमन्त्रण पाकर घर लौट रहे थे । यद्यपि उन्होंने भर पेट स्वादिष्ट विविधं प्रकारका भोजन किया था, फिर भी मार्ग में दोनों ओर चावल लगे हुए देखकर दोनों हाथों से पौध से चावलों को नोचा और दो-चार दाने मुँह में डालकर शेष चावलों को फेंककर चलने लगे । चावल उनके इस अवैध और असंयत व्यवहार से कुपित होकर धान हो गये । तबसे चावलके पौधमें धान लगने लगे ।

बालकके आश्चर्यका ठिकाना नहीं ।

एक बार चाची ने सुनाया पहले जब तीर्थयात्री या अन्य कोई यात्री पदयात्रा करते और मार्गमें थके-माँदे होकर ज्यों ही किसी जलाशयके

किनारे बागमें डेरा डालते, त्यों ही अतिथिसत्कार की भावनासे जलाशय वर्तन, ईन्धन सहित भोजन बनाने की सब प्रकार की शुद्ध सामग्री उन्हें प्रदान करते । एकबार एक तीर्थयात्री भोजनोपरान्त मूल्यवान् वर्तनों को बांध कर ले जाने लगे । बस क्या था, जलदेव कुपित तथा तिरस्कृत होकर अतिथिसत्कार से उपरत हो गये । उसके बाद जलाशयों ने अतिथिसत्कार बन्द कर दिया । मीमांसोक्त अर्थवादकी शैलीमें शिक्षा देनेवाली आख्यायिकाओं को सुनाकर तायीने नीलश्रीके उज्ज्वल भविष्य की स्वस्थ आधारशिला प्रस्तुत की ।

बालकके हृदय में इन आख्यायिकाओं ने अन्न-जल आदि के अधिदैवमें, जगत् की चिन्मयता और लोभ, चाञ्चल्यादि से रहित संयत जीवन में आस्था उत्पन्न कर दी ।

❋

१५. शिक्षा

नीलाम्बर की प्राइमरी शिक्षा अपने ही ग्राम में सम्पन्न हुई । मिडिल स्कूल की शिक्षा कलुवाही ग्राम में सम्पन्न हुई । छठी और सातवीं में दस रुपये मासिक छात्रवृत्ति भी नीलाम्बर को मिलती रही । हाईस्कूल की शिक्षा लोहा हाईस्कूल बिहार में एवं डी.सी.एम. हायर सेकेण्डरी स्कूल दिल्ली आदि में सम्पन्न हुई ।

❋

१६. अकाल मृत्यु क्या है ?

एक दिन गाँव में बड़ी भाभी और देवर नीलाम्बर में शास्त्रार्थ छिड़ गया । देवर ने कहा- 'अकाल मृत्यु नहीं है । जब जिस व्यक्ति को मरना होता है, तब उसे कोई बचा नहीं सकता' । भाभी ने कहा- ''तब आप नित्य ही पूजन के अवसर पर दोनों समय **'अकालमृत्युहरणं'**

यह मन्त्र पढ़कर हमें चरणामृत क्यों देते हैं ?'' देवर ने कहा- 'यहाँ अकाल मृत्यु अपमृत्यु को कहा गया है, जिसका निवारण सम्भव है ।' अकाल मृत्यु का अर्थ असमय में मृत्यु नहीं है । मृत्यु का निवारण सम्भव नहीं है । भाभी ने तत्काल फूँककर दीपक को बुझा दिया और कहा- 'अकाल मृत्यु हमने सिद्ध कर दिया, इस दीपक में तेल और बत्ती रूपी आयु के रहते हुए भी वायु ने जैसे इसे बुझा दिया, वैसे ही आयु के रहते हुए भी कालयोग से व्यक्ति का मरण हो जाता है ।'

❀

१७. मारण-तन्त्र-प्रयोग

एक बार नीलाम्बर लगभग ३ किलोमीटर दूर लोहाग्राम स्थित एम.एम.सी. हाईस्कूल में पढ़ने गया । मुख्यमन्त्री बिहार केशरी श्रीकृष्ण सिंह के आगमन के कारण विद्यालय में ही सूर्यास्त हो गया । सभी साथी लगभग दो किलोमीटर की दूरी बस द्वारा तय करने की भावना से बस पर चढ़ गये । उन्होंने नीलाम्बर से भी आग्रह किया, नीलाम्बर ने कहा- 'मेरे जेब में पैसे नहीं हैं, अतः मैं पैदल ही घर पहुंचूँगा' । बस पूरी गति से चली । नीलाम्बर भी बेग से चले । बस के पहुंचने के एक मिनट पूर्व ही वे बस अड्डे तक पहुँच गये । साथियों ने आवाज दी भैया रुको ! नीलाम्बर रुके । साथियों ने कहा- 'आश्चर्य है, तुम पैदल इतनी जल्दी कैसे पहुँच गये । आज तुम्हें हो क्या गया है ?' । नीलाम्बर ने कहा- 'मुझे भी पता नहीं, आज मुझे हो क्या गया' । साथियों ने कहा- 'अब तो पैदल का रास्ता है । साथ-साथ चलो ।' नीलाम्बर ने कहा- 'छेड़ो मत, आज मैं विचित्र स्थिति में हूँ । कोई अज्ञात शक्ति मुझे उड़ाये जा रही है। लो मैं चला ।' नीलाम्बर उड़ते हुए से चले । घर के पास चौराहे पर नीलाम्बर ने देखा- बीच की पगण्डी पर चक्र का चिह्न बनाकर किसी ने इसे पूजा है । हृदय से आवाज आई – खतरा है । इससे बचकर

चलना है, हठात् दोनों पैर चक्र पर ही पड़े । मानों किसी ने पाँवों में कील ठोककर धरती पर खड़ा कर दिया हो । गति अवरुद्ध । बगल में मन्त्रसिद्ध करनेवाली दो देवियों ने ताली पीटकर हँसना प्रारम्भ किया । मन्त्रसिद्ध हो गया । नीलाम्बर ने दोनों देवियों को पहचान लिया । वे धनी और प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार की देवियाँ थीं, सहपाठियों की माताएँ ही थीं । नीलाम्बर ने भगवान् का स्मरण कर बलपूर्वक पाँव को चक्र से खींच कर आगे बढ़ाया । शरीर शक्तिहीन हो गया था, मानो बिजली के करेण्ट ने घायल कर दिया हो । घर आकर बड़ी भाभी के कान में नीलाम्बर ने घटना कह सुनाई । बड़ी भाभी रोने लग गयी । धीरे-धीरे चाची और बड़ी बहन तक बात पहुँची, सबने देखा शरीर निस्तेज शक्ति-विहीन हो गया है । सूख-सा गया है । रात बीतने पर बालक नीलाम्बर के पिता के मित्र परम विद्वान् परमशाक्त श्रीगोपालजी से चाची ने घटना सुना दी । उन्होंने कहा- 'दूसरा होता तो जीवित नहीं रहता, धीरे-धीरे दैनिक उपासना के बल पर नीलाम्बर स्वतः स्वस्थ हो जाएगा ।'

❃

१८. गाली कभी भी नहीं

नीलाम्बर बचपन से कबड्डी, कुश्ती और फुटबाल में बड़े निपुण थे । एक दिन मित्रों के बीच कुश्ती हो रही थी, अपने से आयु में लगभग चार वर्ष बड़े मित्र को उन्होंने सुगमतापूर्वक पटक डाला, इससे वे महानुभाव लज्जित हुए और अन्दर-ही-अन्दर कुपित भी । एक दिन कबड्डी में वही मित्र पछाड़ खाकर कुपित हो गये । एक ने गाली दी और चांटा भी मार दिया । नीलाम्बर रोते-रोते घर आ रहे थे, रास्ते में मारने वाले के पिताजी ने पूछा- 'क्यों रो रहे हो ?' रोने का कारण सुनकर वे भी कुपित हुए । उन्होंने कहा- 'जब तुमसे कोई कबड्डी, कुश्ती आदि में

पार नहीं पाता तो पिटाई भी नहीं करेगा क्या ?' इससे निरपराध बालक का हृदय अति विह्वल हो गया । वह आहत होकर रोते–रोते घर पहुँचा । बहिन ने रोने का कारण पूछा । भाई ने रोते–रोते मित्र के चाँटा मारने और गाली देने की बात सुना दी । बहिन ने अन्तःस्नेह बहिः कठोरता का परिचय देते हुए कहा– "यदि तुमने जो गाली तुम्हें उसने दी, सुना दी तो एक चपत मैं भी मारूँगी"। अब तो बालक का धैर्य का बाँध भी टूट गया, वह फूट–फूट कर रोने लगा । बहन ने पुचकारा, गोद में बैठाया, आँसू पोछा, सिर सहलाया । बड़े भाव से कहा– "बच्चे ! गाली कोई अनुवाद करने की चीज नहीं है" । गाली याद रखने से मन विकृत होता है । गाली का अनुवाद करने से वाणी अपवित्र होती है । आखिर गाली उसने हम लोगों को ही तो दी होगी ? तुम इतना ही कहने में अधिकृत हो कि, अमुक ने गाली दी । हम उन बच्चों की माताओं को समझा देंगी कि, आपके बच्चे बिगड़ रहे हैं, गाली देना सीख गये हैं । मातृतुल्या बहन के इस उपदेश ने नीलाम्बर के जीवन को परिष्कृत किया, उसने मन–ही–मन व्रत लिया कि– "जीवन में किसी को न तो गाली दूंगा, न किसी की गाली का अनुवाद ही करूँगा ।"

बहनजी ने समय–समय पर शिक्षा देकर नीलको आदर्श बनने का मार्ग प्रशस्त किया । एक बार उन्होंने कहा– "बाँटि कुटि खाइ राजा घर जाइ । एकसर खाइ डोमाघर जाइ ।।"– 'यदि कोई अच्छी वस्तु खाने को मिले तो बाँट कर ही खाना । ऐसा करने पर अवश्य ही राजा बनोगे । यदि मिठाई आदिको अकेले खा जाओगे तो अवश्य ही अपकर्ष प्राप्त करोगे ।'

बहन शशिकला ने अपने छोटे भाईको कविकोकिल श्री विद्यापतिके भक्तिभाव से भरपूर बीस–पचीस गीत याद करवा दिये थे । जिन्हें नीलश्री मित्रमण्डली में गाते और उनके मित्र भी गाकर उन्हें सुनाते थे ।

❃

१९. प्रेतलीला

एक बार नीलाम्बर अपने मित्र विनोदानन्द और लोकनाथ को साथ लेकर लगभग १० किलोमीटर दूर मधुवनी गये । सूर्यास्त होने पर गाँव लौटने लगे । गाँव से लगभग तीन किलोमीटर दूर ननिहाल सी.बी. पट्टी के निकट चाँदनी रात में कुछ दूर से माँ गीतादेवी की समाधि का दर्शन कर मन–ही–मन प्रणाम किया । गाँव की ओर मुड़ते समय तीनों मित्र मेड़ पर चल रहे थे । कुछ दूर से विचित्र दृश्य दिखाई पड़ा । ५/७ व्यक्ति एक प्रज्वलित चिता को चारों ओर से घेरकर बैठे थे, उनकी आकृति–प्रकृति से तीनों समझ गये कि ये प्रेत हैं । दोनों मित्र डर गये, नीलाम्बर ने कहा– 'मैं आगे चलता हूँ, मेरे पीछे लोकनाथ और लोकनाथ के पीछे विनोद चलें । आगे की ओर देखते चलें, हनुमान् चालीसा का उच्च स्वर से पाठ करते चलें ।' मेड़ के बिलकुल बगल में पाँच–छ: फीट की दूरी पर उस दृश्य को देखते हुए नीलाम्बर गाँव की ओर चल पड़े । जीवछ नदी पार कर गाँव पहुँचे ।

❃

२०. मित्रों का स्नेह

भूपनारायण झा आदि मित्र अनूठे थे । विद्यालय जाते समय वे तो साथ रहते ही थे, कबड्डी, कुश्ती, कन्दुक क्रीडा और नदी, सरोवर में तैरने में भी साथ रहते थे । नीलाम्बर के दोनों भाई दिल्ली, वाराणसी आदि में रहते थे ।

घर में केवल माताएँ थीं । बाजार से सामान लाना, बाग से काष्ठ आदि का सञ्चय करना, आम–कटहल आदि की रखवाली करना, आदि कार्यों में दो–चार मित्र नीलाम्बर का सदा सहयोग करते थे । नीलाम्बर

को अकेले रहने के कारण कभी भी कष्ट का अनुभव नहीं होता था । घर में माताओं का अद्भुत स्नेह और बाहर प्राण न्योछावर करने वाले मित्रों की मैत्री, विद्यालय में सहपाठियों का सहयोग और अध्यापकों का वात्सल्य उसे सदा सुलभ था । परन्तु विधि को कुछ और ही अभीष्ट था तथा नीलाम्बर को भी ।

❋

२१. विचित्र वृत्तान्त

एकबार बगीचे में नीलाम्बर आम की रखवाली कर रहे थे । रात्रि पर्याप्त हो चुकी, परन्तु दरबरिया के आने का नाम नहीं । उत्तर दिशा में स्थित गाँव की ओर देख रहे थे । विचित्र घटना घटी । लगभग तीन फर्लाङ्ग दूर लोचनजी के बाग में एक स्त्री खड़ी दिखाई दी । उसके हाथ में सफेद छोटी-सी झोली थी । जिसमें पाँच किलो आम आ सकते थे । वह स्त्री सफेद वस्त्र में थी । उसने आम तोड़ना प्रारम्भ किया । आम तोड़ती जाती और झोली में रखती जाती । आम तोड़ने का ढंग भी उसका निराला था । कभी वो पचास हाथ का हाथ बनाकर डाल में लगे आम को तोड़ लेती तो कभी डाली पचास हाथ नीचे झुककर उसके पास आ जाती । इसी क्रम से आम तोड़ती हुई पड़ोस में एक विशाल आम के वृक्ष के नीचे आई । जिसके नीचे की शाखाओं के सब आम तोड़ लिये गये थे । केवल ऊपर की शाखाओं में आम लगे थे । वह बाग महामहोपाध्याय श्रीमुकुन्द झाजी के सुपुत्र जयकृष्ण झाजी का था । नीलाम्बर से रहा नहीं गया । यह कोई मानवी नहीं है, यह समझते हुए भी नीलाम्बर ने कहा- 'बन्द करो आम तोड़ना ।' उसने केवल नीलाम्बर की ओर देखा और वह पुनः आम तोड़ने लगी । जब तीसरी बार नीलाम्बर ने उसे रोका तो उसने वात्सल्यपूर्ण हृदय से कहा- ''बच्चे ! मैं कौन हूँ, तुम्हें पता ही है ? तुम्हारे बाग में मैं आई भी नहीं हूँ । फिर

भी तुम मुझपर क्यों नाराज होते हो ? चुपचाप देखते रहो ।'' नीलाम्बर ने उसकी युक्तियुक्त बात को सुन कर मौन रहना ही उपयुक्त समझा । वह जीवछ नदी तक उसी प्रकार आम तोड़ती हुई अन्तर्हित हो गई, छोटी-सी उसकी झोली भरी ही नहीं ।

❃

२२. भविष्य की योजना

एक दिन गाँव के समीपवर्ती जीवछ नदी के तट पर श्रीविनोदानन्द झा और नीलाम्बर जीवन् के भावी कार्यक्रम की रूपरेखा पर चर्चा करने लगे । विनोदानन्द ने कहा - 'मेरी गान में रुचि है । मैं कहीं अच्छी नौकरी करूँगा और गानविद्या को विकसित करूँगा ।' नीलाम्बर ने कहा- 'मेरा हृदय तो कहता है, मैं अधिक समय तक घर में नहीं रह पाऊँगा । मैं तो सन्यासी बनूँगा । परन्तु मैं अपने इस मनोभाव को छिपाकर रखूँगा । नहीं तो चाची, बहन, भाभी और दोनों अग्रज जिन्हें मैं अति प्रिय हूँ,उन्हें यह बात सुनकर अति कष्ट होगा ।'

❃

२३. छात्रसङ्घ

नीलाम्बर के अग्रज 'सङ्घे शक्तिः कलौ युगे' - 'कलियुग में सङ्घमें शक्ति सन्निहित है' - इस सूक्ति में आस्थान्वित थे । एकवार पण्डित श्रीदेव झाजी दिल्ली से गाँव आये । उन्होंने 'छात्रसङ्घ' की स्थापना की । वे आयु में नीलसे पचीस वर्ष बड़े थे । नीलकी आयु उस समय नौ की रही होगी । अग्रज की मान्यता यह थी कि व्यक्ति जीवनभर शिक्षार्थी होने के कारण विद्यार्थी या छात्र ही रहता है । छात्रसङ्घ की गोष्ठी में बालगोपाल के रूप में नील भी श्रोता थे ।"फलस्वरूप नील भी सङ्घ शक्ति में आस्थान्वित हो गये ।

अग्रज महोदय दिल्ली चले गये । नील के मित्रों ने श्रीबालकृष्ण झाके मार्गदर्शन में अभिमन्यु नाटक की तैयारी की । उसमें नील को श्रीकृष्ण सारथि 'दारुक' का मञ्चन सौंपा गया । श्रीबालकृष्णजी युधिष्ठिर बने । श्रीभूपनारायणजी उत्तरा बने । विद्वानों का गाँव था । मञ्चनने सबको आह्लादित किया । आस-पासके गाँव में भी अभिनयकी प्रसिद्धि हो गयी ।

एक दिन भूपतिने नीलकी अनुपस्थिति में 'छात्रसङ्घ' की स्थापना की । नील आयु में सबसे छोटे थे । फिर भी उन्हें सङ्घका उपाध्यक्ष बनाया गया । नील को इसकी सूचना देदी गयी । नीलने गाँव में स्वच्छता का अभियान चलाया । अरहरके झाड़ू बनाकर पूरे गाँव को स्वच्छ रखने और गढ्ढे खोद कर गन्दगी को गाड़ने अग्नि प्रज्वलित कर जलाने आदिका प्रतिदिन व्यापक अभियान चला । बृद्ध ब्राह्मणों ने 'छी-छी', 'राम-राम' कह कर विरोध भी किया । परन्तु नीलश्रीने किसी की एक न सुनी । मातृशक्ति और वेरोजगार पुरुषों को स्वावलम्बी बनाने की भावना से नीलने खादी ग्रामोद्योग सङ्घसे सम्पर्क साधा । प्रायः प्रत्येक घरमें अम्बर चर्खा देने की व्यवस्था हो गयी । चालीस-पचास मातोओं ने चर्खे का प्रशिक्षण प्राप्त किया । भूपजीके पिता को मिस्त्री का प्रशिक्षण दिलवाया गया । रूई धुनने आदिका प्रशिक्षण भी श्रीभूपके एक भवन में महिलाओं ने प्राप्त किया । उन दिनों एक-एक महिला इतना सूत कात लेती । जिसका मूल्य उन्हें खादी ग्रामोद्योग से तीस, चालीस रुपये प्रति माह प्राप्त हो जाता ।

नीलके मित्रों ने उसके प्रस्तावको स्वीकार कर यह भी निर्णय लिया कि अपने या सभी के गाँव में कहीं भी आग-लगे, हम हँसिया, बाल्टी, दण्डालेकर वहाँ पहुँचकर अग्नि को बुझा दें, फैलने न दें । एक बार निकटवर्ती काजीटोल (मुसलमानों का गाँव) में दिनके दस बजे एक घरमें लगीहुई आग को और दूसरीवार समीपके डीहटोल (ब्राह्मणों

का गाँव) में रात्रि आठ बजे एक घरमें लगी आग को बुझाकर छात्रसङ्घ के सदस्यों में धन-जन की रक्षा की ।

गाँधी विट (चल शौचालय) की व्यवस्था कर माताओं को अपने हाते में ही शौचलय सुलभ कराकर छात्रसङ्घने अद्भुत यश प्राप्त किया । सुसंस्कृत, स्वच्छ, स्वावलम्बी और सुरक्षित ग्रामपरियोजना को क्रियान्वित करनेमें नील दक्ष हो गये ।

❋

२४. शत्रुता का बीजारोपण

नीलाम्बर सोलह वर्ष के हो गये । एक दिन उनके कुछ घने मित्रों के सङ्केत पर विनोदानन्द की पाठ्यपुस्तकें चुरा ली गयीं, ताकि वे पढ़ न सके । उनके माता-पिता शैशवावस्था में ही स्वर्गवासी हो गये थे। चाचा ने उनका पालन-पोषण किया था । एकान्त में विनोद ने आर्तस्वर में अपना दुःख नीलाम्बर को सुनाया ।

नीलाम्बर सोच भी नहीं सकते थे कि, उनके मित्र ऐसा अनुचित कार्य भी करवा सकते हैं या उनका हृदय विद्वेषपूर्ण है । नीलाम्बर ने अपने घने मित्रों से एकान्त में कहा- 'आप कुलीन हैं । इस प्रकार का दुर्व्यवहार आपके अनुरूप नहीं है । आप पुस्तकें लौटा दीजिए, मित्र ने कहा- "आपके साथ मेरा कोई दुर्व्यवहार है क्या ? बस ! आप इतने से ही सन्तुष्ट रहिये ।' नीलाम्बर ने कहा- 'हम दोनों एक-दूसरे के मित्र हैं, हमारा व्यवहार एक-दूसरे के प्रति अच्छा हो, इतना ही पर्याप्त नहीं है । हमारा सम्पूर्ण जीवन उज्ज्वल हो, सबके प्रति हमारा व्यवहार उत्तम हो, यह भी आवश्यक है ।"

मित्र ने कहा- "बस ! हो गई मैत्री । अब मैं तुम्हारे खून का प्यासा । ऐसा कहकर एक चाँटा जड़कर, धक्का देकर तिरस्कृत करते हुए उसने कहा- भागो यहाँ से ।"

नीलाम्बर के लिये यह अद्भुत घटना थी । जो कभी नीलाम्बर के पसीने पर, अपना रक्त बहाने को तत्पर रहते थे, वही नीलाम्बर के रक्त के प्यासे हो गये ।

विनोदानन्द को नीलाम्बर ने यह घटना सुना दी । विनोद के चाचा को भी पुस्तक चोरी की बात विदित हो गई । विनोद ने नीलाम्बर से कहा– "चाचाजी कहते हैं, वे सब बलवान् हैं । उनके पिता, चाचा आदि पराक्रमी हैं, जो हुआ, हुआ । उनका विरोध करके हम विनष्ट हो जायेंगे ।"

विनोद ने आगे कहा– "आपने मेरे लिये स्वयं को सङ्कट में डाल दिया ।"

नीलाम्बर ने कहा– "हमने सत्य का पक्ष लिया है । हमें कोई साथी नहीं चाहिये ।" गौरीनाथ मिश्र आदि जिन एक दो मित्रों ने इस घटना को अनुचित माना, उनकी पिटाई कर दी गई । सबका मुँह बन्द हो गया । गोष्ठी होने लगी । नीलाम्बर को मारने के लिये मित्रों के पिता, चाचा आदि ने योजना बना डाली ।

नीलाम्बर का विद्यालय जाना बन्द हो गया । पढ़ाई छूटने से मन पर आघात लगा । पाँच–पाँच चाकूधारी युवक घर को दिन हो या रात घेरे रहते थे । धीरे–धीरे नीलाम्बर का घर से बाहर जाना भी बन्द हो गया । मित्र शत्रु हो गये । जिनका साथ दिया वे उदासीन हो गये । सत्य ही साथी रह गया ।

❋

२५. वध की योजना

एक दिन चाँदनी रात्रि में चाची सुमित्राजी को प्रात:काल का भ्रम हो गया और वे मित्रों के घर के पास से कुलदेवी कालिका के पूजनार्थ करवीर पुष्प लेने सरोवरतट की ओर चल पड़ीं ।

मित्रों के दरवाजे पर गुप्त गोष्ठी हो रही थी । जिसमें मित्र के पिता आदि योजना बना रहे थे और कह रहे थे– "कल नहीं मार पाये, पर आज नहीं छोड़ेंगे ।"

चाची के कानों में शब्द पड़े । चाची उनके पिता आदि की पूज्या बड़ी भाभी थीं । चाचाजी सहसा चिल्ला पड़ीं– "अरे ! मैं तो इसे बच्चों का मनमुटाव, एक खेल समझ रही थी । यहाँ तो उसके मारने की योजना ढाई बजे रात तक चल रही है । चाची के सम्मुख शील के कारण किसी को बोलने का साहस नहीं हुआ । चाची रुदन करती हुई घर में आयीं और सबको जगाकर कहने लगीं मारनेवालो, हमें मार डालो, किन्तु हमारे हृदयधन इस बालक को मत मारो । नीलाम्बर ने कहा– "चाचीजी ! कुछ नहीं होगा, भगवान् ही हमारे रक्षक हैं, आप रोईये मत । आपको कष्ट न हो, इसलिये हमने इनके अत्याचारों को कभी नहीं बताया ।"

❀

२६. सङ्ग्रहणी की व्यथा

पेचिश के शिकार तो नीलाम्बर बचपन से थे । पढ़ाई छूटने और पूरे परिवार पर अपने कारण संकट आदि कारणों से संग्रहणी ने शरीर को गलाना प्रारम्भ किया । बड़े भाई उच्च कोटि के वैद्य थे, पत्र डाल के उन्हें बुलाया गया । विद्या और सदाचार के कारण समाज में उनका सम्मान था । अतः नीलाम्बर के मित्र और उनके पिता आदि ने उनका तिरस्कार नहीं किया । दवाएँ निरर्थक सिद्ध हुईं । बालक की रुचि नष्ट हो गई, पचास ग्राम भात खाना भी सम्भव नहीं रह गया । अन्त में नीलाम्बर के अग्रज ने एकान्त में अपनी पत्नी को बताया– "आयुर्वेद की सभी उत्कृष्ट औषधियों का मैं प्रयोग कर चुका । मुझे नील अत्यन्त प्रिय है । लगता है, अब वह नहीं बचेगा । मैं दिल्ली लौट जाता हूँ ।

अपने सामने मैं नीलाम्बर की मृत्यु नहीं देख सकता ।'' एक-दो दिन में श्रीदेव झाजी दिल्ली लौट गये । भाभी ने झाजी की कही बात रोते-रोते चाचीजी और ननद को बता दी । नीलाम्बर को मरणासन्न देख मित्रों की गतिविधि तेज हो गई ।

❃

२७. पितरों की कृपा

भगवान् ही रक्षक हैं । वे ही पितर आदि सभी रूपों में रक्षा करते हैं, यह भावना नीलाम्बर के हृदय में सुपुष्ट थी । संग्रहणी के कारण मरणासन्न दशा में पड़े नीलाम्बर ने एक दिन अपने घर से देखा- विनोदानन्द द्रुतगति से कहीं जा रहे हैं । उसके मन में भावना उठी- ''क्या मैं भी द्रुतगति से चल सकता हूँ ?'' तत्काल ही वे विना किसी से कुछ कहे, घर से निकल पड़े । धीरे-धीरे अपने बाग की ओर चलने लगे। दो-तीन जगह बैठकर बाग की दूरी तय की । सूर्यास्त हो गया । पूज्य पिताजी की समाधि बाग में ही थी । उनके पास पहुँचकर दण्डवत् प्रणाम किया । वहाँ की मिट्टी को प्रसाद समझकर चखा । रोते हुए पिताजी से कहा- 'या तो इस शरीर को ले लीजिए, या फिर जीवन दान दीजिए । मेरी प्रिय पढ़ाई छूट गई । मित्रगण रक्त के प्यासे बन गये । इस स्थिति में अब जीवन का क्या महत्त्व ? कोई आँसू पोछने वाला नहीं । घर में रोऊँ, अपनी व्यथा कहूँ तो माताएँ विह्वल होकर अनाथ की तरह रो पड़ती हैं । अपना कष्ट किससे कहूँ ?' ऐसा कह, दण्डवत् कर, समाधि को स्पर्श कर नीलाम्बर अधीर और अचेत हो गये ।''

अकस्मात् किसी ने बल और वेगपूर्वक उठाकर बैठा दिया । अन्तरिक्ष में विचित्र दृश्य दिखा । धरती से बहुत दूर गोलाकार परिधि में श्वेतवस्त्र और पगड़ी धारण किये हुए सहस्रों पितर दृष्टिगोचर हुए । सभी पुरुष थे, नीलाम्बर किसी को पहचानते नहीं थे । वात्सल्यपूर्ण

उच्च स्वर सुनाई पड़ा– "तुम्हारी संग्रहणी दूर हो गई । तुम स्वस्थ हो गये। तुम निर्भय होकर गाँव में विचरण करो, हम तुम्हारे साथ हैं ।"

नीलाम्बर ने पितरों के व्याज से भगवान् श्रीकृष्ण का अनुग्रह समझा । पितरों के अनुग्रह से उनके दर्शनके समय उसे ज्ञान हो गया कि ये देवतुल्य पितर दश हजार की सङ्ख्या में हैं । पिताजी की समाधि को श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर नीलाम्बर घर लौटने लगा । कहीं रुके बिना घर पहुँच गया ।

घर में माताएँ अनाथ कुररी की तरह विलाप कर रहीं थीं । कहाँ गया ? सेवॉर से आच्छादित समीपस्थ चभच्चा सरोवर में, या जीवछ नदी में डूबकर बच्चे ने कहीं जीवनलीला समाप्त तो नहीं कर ली । हाय ! हम मारीं गयीं, एक उसी का सहारा था, विधाता ने उसे भी हर लिया । तभी सबने प्रसन्नवदन नीलाम्बर को घर में आते देखा । आँसू पोछ कर बहन बोली– "कहाँ चले गये थे तुम ? हम सब परेशान थे।"

नीलाम्बर ने कहा– "मैं पिताजी की समाधि का दर्शन करने बाग चला गया । मुझे बहुत भूख लगी है । रोटी खाने की इच्छा है । मैं स्वस्थ हूँ ।"

मिथिलाञ्चल में उन दिनों गेहूँ की रोटी दुर्लभ थी । चावल के आटा की रोटी बनाई गई, उसे खाकर नीलाम्बर बोले–"बहुत भूख लगी है, और रोटी दो ।"

बहन रोटी सेंकती जातीं और रोती जातीं । वे सोच रही थीं– कहीं यह अन्तिम समय की भूख तो नहीं ? जो चार ग्रास भी नहीं खा पाता था वह पावभर आँटे की रोटी खा गया ? नीलाम्बर ने भाभी को बुलाकर बहन के रोने का कारण पूछा, तो भाभी ने रहस्य बता दिया ।

नीलाम्बर ने कहा– "उन्हें कहिए कि मुझे पितरों से वरदान मिला है, यही कारण है कि मुझे भूख लगी है । मैं रोगमुक्त हो गया हूँ ।

दक्षिण दिशा में पिताजी की समाधि से आया हूँ अब, ग्राम के उत्तर में स्थित ग्राम देवता का दर्शन करना चाहता हूँ ।''

अत्यधिक आग्रह देखकर चाची और बहिन ने पड़ोसी भाई, मिथिला के प्रसिद्ध कवि श्रीचन्दा झा के पौत्र श्रीलोचन झा को पूजन सामग्री देकर साथ कर दिया । ग्राम देव के मन्दिर गये । वहाँ सतियार (सती सरोवर) का दर्शन किया । दरभङ्गा नरेश श्रोत्रिय ब्राह्मण श्रीराघव सिंह जनकपुर से पालकी द्वारा लौटते समय वहीं पर दिवङ्गत हुए थे । उनकी धर्मपत्नी की उँगली से अग्नि प्रकट हुई थी, और वे सती हो गयीं थीं । दोनों की समाधि का दर्शन किया । प्राङ्गण में प्रवेश के पूर्व ही सती मां ने दर्शन दिया । ग्रामदेवी के मन्दिर में पुराणोक्त जया, विजया, विषहरा आदि पञ्च देवियों की मृत्पिण्डों में प्रतिष्ठा थी । उनका दर्शन और पूजन कर पड़ोसी भाई लोचन झा के साथ नीलाम्बर प्रसन्न चित्त घर लौटे ।

❀

२८. हत्यारों का हाहाकार

एक दिन विनोदानन्द के साथ जीवछ नदी के तट पर सन्ध्या बेला में नीलाम्बर धर्म ईश्वर और भावी जीवन के सम्बन्ध में चर्चा ही कर रहे थे कि, लगभग बीस व्यक्ति द्रुत गति से दौड़ते हुए, ''मारो डुबा दो'' आदि चिल्लाते हुए, आक्रामक होकर दोनों की ओर आने लगे । विनोद ने नील का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया । नीलाम्बर ने विनोद को धीरज रखने को कहा और स्वयं गायत्री मन्त्र पढ़ने लगे । चार-पाँच आवृत्ति के बाद ही आक्रामकों के मुँह से चीत्कार निकलने लगी- ''अरे ! बचाओ ! जले ।'' और इस तरह, मन्त्र की ज्वाला से दग्ध और विकल, सबके सब विफल मनोरथ गाँव की ओर प्राणरक्षार्थ भागने लगे ।

२९. वध के कई विफल प्रयास

होलिका दहन की सन्ध्या में नीलाम्बर अपने मित्र लोकानन्द के साथ जीवछ नदी के तट से घर लौट रहे थे । रास्ते में श्रीगङ्गेश मिश्र के आम के बाग में ही विचित्र दृश्य देखा– पूर्व प्राणप्रिय मित्र जो अब प्राण का प्यासा था वही, नशे में झूमता हुआ, लम्बा–सा छूरा लिये हुए आया, और नीलाम्बर को पकड़कर उसकी छाती में छूरा घुसाना चाहा, किन्तु स्वयं पछाड़ खाकर विमुख हो गया । नीलाम्बर हँसे और मित्र के साथ वापस मुड़कर होलिका दहन स्थल की ओर ही आ गये । वहाँ पर पूर्वमित्र के पिता, चाचा आदि होलिकादहन के लिये एकत्र थे । वे लोग नीलाम्बर को उधर ही आते देख आश्चर्यचकित होकर कहने लगे ''अरे ! यह छूरे से भी नहीं मरा ? कोई बात नहीं । होली की तरह ही जलने के लिए वह स्वयं ही इधर आ रहा है'' । नीलाम्बर किसी से कुछ बोले विना, कुछ दूर आगे पुलिया पर, मित्र के साथ बैठ गये ।

होली जलाने के लिये लोग कई जगह से चुराकर, या बलपूर्वक उपले, लकड़ी, मचान छप्पर आदि इकट्ठा कर रहे थे । तभी जिनका लक्ष्य बेध प्रसिद्ध था, जो ढेला फेंकने में अत्यन्त निपुण थे, ऐसे चार–पाँच पूर्वपरिचित ब्राह्मण युवक, नीलाम्बर को लक्ष्य बनाकर ढेला फेंकने लगे । प्राय: आधा घण्टा अनवरत वे प्रहार करते रहे । किन्तु सब ढेले नीलाम्बर से ४–५ हाथ पूर्व तक ही जा पाये, एक भी ढेला नीलाम्बर के पास तक नहीं पहुँचा । खेत के ढेले समाप्त हो गये, फेंकने वाले भी थक कर चूर हो गये । इस तरह जब नीलाम्बर ने देखा कि, वे अब प्रहार करने की स्थिति में नहीं हैं, तो मित्र के साथ सबके सामने से होते हुए सकुशल घर पहुँच गये ।

३०. जुर शीतल

तब मित्रों ने पुनः मैत्री का स्वाङ्ग रचा । जलविहार पर्व के दिन दो पूर्व विश्वस्त मित्र घर आये । चाचीजी से क्षमा याचना की और शपथ खाकर पूर्ववत् हिलमिलकर रहने के लिए समझौता कराने का आग्रह किया ।

नीलाम्बर ने चाची से कहा– "इन पर विश्वास करना उचित नहीं है । ये मुझे मारने का कोई अमोघ उपाय करना चाहते हैं", किन्तु चाची ने पुरानी प्रगाढ मैत्री का स्मरण कराकर आग्रहपूर्वक सन्धि करा दी ।

पुनः प्रस्ताव आया "जुर शीतल" क्रीडा में चलने का । होलिका दाह के बाद सरोवर या नदी के जल में सब जाति के लोग अपने जाति का समूह बनाकर पिचकारी से जलक्रीडा करते हैं । और कभी-कभी पिचकारी से प्रहार कर शिर भी फोड़ देते हैं । यह मिथिला का प्रिय जलक्रीड़ा पर्व है । नीलाम्बर मित्रों के कपट को समझते हुए भी चाची के आग्रह से जलक्रीडा में सम्मिलित हुए ।

नीलाम्बर तैराकी और डुबकी लगाने में निपुण थे । जलक्रीडा प्रारम्भ हुई । नीलाम्बर सावधान थे । उनके मित्रों ने उन्हें चारों तरफ से घेर कर व्यूह बनाकर अभिमन्यु की तरह मारने का उपक्रम प्रारम्भ किया । नीलाम्बर अनजान के समान कुछ दूर गोता लगाकर, कुछ दूर तैरकर तालाव के किनारे पहुँच गये और नौ दो ग्यारह हो गये ।

नीलाम्बर ने चाची को सब बताया । खेल के बाद मित्रलोग पुनः आकर चाची से कहने लगे 'ये हम पर अभी भी विश्वास नही करते हैं' । नीलाम्बर ने कहा 'चाची ये विश्वास करने योग्य नहीं है ।'

*

३१. कूटसन्धि

मित्रों ने नया व्यूह बनाया । मित्रों के एक चाचा विद्वान् व्याकरणाचार्य थे, सम्मानित महानुभाव माने जाते थे । नीलाम्बर ने उनसे अंग्रेजी और संस्कृत अनुवाद करना सीखा था, उनके माध्यम से समझौता किया गया । पहले चाचीजी ने जब फूट की चर्चा की तो, उन्होंने ऐसा प्रकट किया कि नीलाम्बर ही दोषी है ।

एकान्त में चाची ने नीलाम्बर से कहा– ''इनकी बात तो माननी ही पड़ेगी'' । नीलाम्बर कूटनीति को समझकर भी निरुत्तर हो गये । इन्हीं चाचा के पुत्र ने विनोद की पुस्तकों की चोरी की थी, नीलाम्बर ने यह बात चाचाजी से कही भी थी । तब ये बुरा मान गये थे । आज उसी का बदला लेने आये हैं । यह समझकर भी नीलाम्बर ने सन्धि स्वीकार कर ली ।

❋

३२. प्रेतात्माने की रक्षा

मित्रों ने एक दिन चाचीजी से कहा परीक्षा नजदीक है । हमलोग चाचाजी के कमरे में जहाँ नीलाम्बर पहले भी पढ़ चुके हैं, वहीं एकान्त में रहकर रात में १०/१५ दिन परीक्षा की तैयारी करेंगे । आप नीलाम्बर को भेज दें । नीलाम्बर ने सोचा– यह वही कमरा है जहाँ मित्रों ने मुझे चाँटा मार कर मेरा वध करने का प्रण किया था । किन्तु आत्मा की अमरता और श्रीकृष्ण, पितर और ग्रामदेव एवम् जयादि देवियोंकी अनुकम्पा का स्मरण कर नीलाम्बर ने मित्रों का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया ।

रात्रि में वरिष्ठ मित्र जिनसे दो–चार बार नीलाम्बर ने अलजेबरा और सामान्य गणित के कुछ प्रश्नों को हल करवाया था उनके तथा घनिष्ट मित्र के साथ उस कमरे में पढ़ाई का अभिनय किया गया । मित्रों

ने कहा- 'थोड़ा सो लेते हैं। रात अधिक हो गई है। फिर जागकर पढ़ेंगे।'

नीलाम्बर ने समझ लिया गला घोंटकर मारने की योजना है, फिर भी कहा- हाँ ! अब सो लें। इतने में कमरे के स्वामी चाचाजी आकर कूट भाषा में उन दोनों को कुछ समझा कर घर चले गये। किबाड़ बंदकर लालटेन बुझा दी गई। जिनसे कभी गणित पढ़ा था, वध का दायित्व उन पर ही था। ज्यों ही वह जल्लाद गला घोंटने को उद्यत हुआ, किसी ने किबाड़ पीटना शुरू कर दिया। वधिक ने पूछा- 'कौन ?' उत्तर मिला- 'तुम्हारा बाबा',

तीन दिन पूर्व ही विधिक मित्र के पितामह का नब्बे वर्ष की आयु में देहान्त हो गया था। स्वर उसके मृत बाबा का ही था। नीलाम्बर जागते हुए भी अनजान बने रहे। एक-दो घण्टे के अन्तराल से वधोद्यम और मृत पितामह की आवाज का क्रम चला। ब्राह्ममुहूर्त्त में नीलाम्बर किबाड़ खोलकर घर भाग आये, मित्रों ने सोचा लघुशंका गये हैं। घर में चाची को नीलाम्बर ने वधोद्यम की सारी कहानी सुना दी।

❋

३३. विषभोजन

पुनः नया षड्यन्त्र रचा गया। मित्र के मृत पितामह के त्रयोदशाह के दिन घोषणा की गई यदि नीलाम्बर भोजन करने नहीं आयेगा तो उसे अपना गोल (वर्गका ब्राह्मण समुदाय) त्याग देगा। घर में माताएँ रोने लगीं। नीलाम्बर ने उन्हें समझाया- 'जिस भगवान् ने अब तक रक्षा की है, वही आगे भी करेंगे।' नीलाम्बर भण्डारे में भोजन करने पहुँचे। वहाँ गुप्तचरों से पहले ही सूचना मिल चुकी थी कि नीलाम्बर आ रहे हैं। एक कमरे में मन्द टिमटिमाता दीपक जल रहा था, वहीं केले के पत्ते पर पहले से ही पर्याप्त भोजन परोसकर रखा गया, नीलाम्बर को

बाहरी दरवाजे से उसी कमरे में ले जाकर कहा गया भोजन करो । अन्य तीन-चार सौ ब्राह्मण बाहर प्राङ्गण में भोजन कर रहे थे । नीलाम्बर समझ गये कि भोजन विष मिश्रित है । उन्होंने मित्र से कहा- 'आप अन्य ब्राह्मणों को भोजन कराओ । मैं भी भोजन करता हूँ ।'

ज्यों ही जल्लाद मित्र बाहर गया, उसके मृत पितामह सामने आकर बैठ गये । उन्होंने कहा- 'भोजन में भयङ्कर विष मिलाया गया है । परन्तु तुम्हारे भोजन करने से मुझे तृप्ति मिलेगी, अतः तुम निर्भय होकर भोजन करो ।' फिर क्या था ? नीलाम्बर ने बड़े चाव और भाव से भोजन करना प्रारम्भ किया । बीच-बीच में वह मित्र झाँकता और पूछता- 'और कुछ ?', नीलाम्बर कहते 'पर्याप्त है ।'

मित्र के मुखमण्डल पर विकृति आ गई, वह सोचने लगा कहीं यह यहीं न मर जाय । कहीं पोल पट्टी न खुल जाय । उसे उसके पितामह नहीं दिखते थे । भोजन के बाद मुस्कुराते हुए नीलाम्बर ने कहा- 'अच्छा हम चलते हैं ।' मित्र से कुछ बोलते नहीं बना पर उसने शान्ति की सांस ली । नीलाम्बर जुठे मुंह ही घर लौट आये । माताओं को सारी रामकहानी सुना दी । उन्होंने दुष्टों को खूब कोसा । परन्तु विवेक का आलम्बन लेकर इस बात का प्रचार नहीं किया ।

३४. मारण मन्त्र प्रयोग

कुछ दिन बाद ही निर्लज्ज मित्र पुनः चाची के पास आकर कहने लगा- "आपकी कृपा से हमारी मैत्री पुनः दृढ़ हो गयी । तभी तो हमने तेरहवीं पर इन्हें बड़े प्रेम से भोजन कराया और इन्होंने बड़ी प्रसन्नता से भोजन किया । एक गोष्ठी आज मेरे घर में होगी, अतः चाची आपको शपथ है कुछ देर बाद इन्हें मेरे घर अवश्य भेजिये ।" कहकर वह चला गया । मातायें सभी कुपित थीं । किन्तु वे क्या कह

या कर सकतीं थीं ? सबने एक स्वर से कहा– 'अब कोई समझौता नहीं ।'

नीलाम्बर ने कहा– 'जब तक ये चारों ओरसे निराश नहीं हो जायेंगे, उत्पात करते रहेंगे । अत: मुझे जाने दीजिये । ईश्वर हमारे रक्षक हैं ।'

नीलाम्बर मित्र के घर पहुँचे । उसी काल कोठरी में एक चौकी पर उन्हें बैठाया गया, जिसमें उन्हें विषाक्त भोजन दिया गया था । वे पैर नीचे करके बैठ गये । मित्र कमरे से निकल गये । थोड़ी देर बाद उनकी पड़ोसन एक विधवा बहन जो कि मायके में ही रहती थीं, कमरे में आयीं । ये बहन जी और उनकी माताजी भयङ्कर डाइन थीं, मारण, मोहन और उच्चाटन में दक्ष थीं । उन्होंने पूतना की तरह कपट स्नेह प्रदर्शित किया । उन्होंने धरती पर बैठकर नीलाम्बर के पावों को अपने दोनों हाथों से ऊपर से नीचे सहलाना प्रारम्भ किया । बहनजी के ओंठ चल रहे थे, मन्त्र प्रयोग से मारण की प्रक्रिया प्रारम्भ की । नीलाम्बर धैर्यपूर्वक प्रसन्नचित्त हुये बैठे रहे । लगभग पन्द्रह मिनट बाद बहन जी ने कहा– ''अरे ! मैं तो विना देखे भी किसी का नाम लेकर मन्त्र पढ़ दूँ तो वह बेहोश हो जाय । आज क्या हो गया ? तुमने मुझे दूर से कईबार देखा होगा ? मेरा नाम भी सुना होगा ? आज मैं तुम्हें छूकर मन्त्र का प्रयोग कर रही हूँ । फिर भी, तुम्हारा कुछ नहीं होता ? धिक्कार है मेरे मन्त्र को, धिक्कार है मेरी सिद्धि को ।''

नीलाम्बर ने कहा– ''बहन जी । आपका नाम भी कई बार सुना है । आपका दर्शन भी कई बार किया है । मुझ पर प्रयोग करने के लिये और कोई विद्या शेष रह गई हो, तो उसका भी प्रयोग कर ही लीजिए ।'' बहनजी ने मुँह और हाथ हिलाकर कहा– ''अब कोई विद्या शेष नहीं रह गई ।'' नीलाम्बर ने कहा– ''तो, बहनजी ! मुझे बहुत देर हो गई है । आज्ञा हो अब मैं अपने घर जाऊँ ।''

बहनजी ने कहा– ''हाँ भैया ! अब तुम जाओ । मैं ही जब नहीं मार सकी तो दुनियाँ में और कौन तुम्हें कौन मार सकता है ? देखो तो सही, उस चुल्हे के कहने पर मैंने तुम्हारे साथ क्या व्यवहार किया ? तुम तो हमें सदा हाथ जोड़कर प्रणाम ही करते रहे हो । तुम्हारी बहन भी मेरी तरह बाल विधवा है । वह कितनी भोली है । वह मेरी आयु की ही है । अब दुष्ट चुल्हा मेरी हँसी करावेगा ।''

घर की माताएँ व्याकुल होकर नीलाम्बर की प्रतीक्षा कर रही थीं । रोती बिलखती इष्ट–अनिष्ट न जाने क्या–क्या सोंच रहीं थी । तभी नीलाम्बर हँसते और दौड़ते हुए आये । सबको प्रणाम कर हक्कल डाइन की कथा सुना दी । सबको आश्चर्य हुआ । अरे ! अपने मन्त्र से पत्थर को भी चूर्ण बना देनेवाली, हरे वृक्ष को भी स्वाहा कर देनेवाली, वह हक्कल डाइन ! उसे क्या सूझा कि तुम पर ही उसने अपनी विद्या का प्रयोग कर दिया ? आदि, आदि घर की माताएँ कहने लगीं ।

उन दिनों मिथिलाके उस क्षेत्रमें मन्त्रसिद्ध करने वाली महिलाएँ अधिक थीं । नवजात बच्चे के मरजाने पर उनके शबको नदीके तट पर गाड़ दिया जाता । रात्रि में तन्त्रविद्या में सिद्ध महिला उस बच्चे को जीवित कर नृत्य करती । पुनः उसे शब बनाकर भूमिगत कर देती ।

मान्त्रिक सर्प (भूतसर्प–भूतसप्पा) से अपने शत्रु को डसवाने का कार्य भी मान्त्रिक स्त्री–पुरुष करते । नीलश्री को भी तीन बार मान्त्रिक सर्पसे डसवाया गया था ।

भामतीकार श्रीवाचस्पति मिश्रने अग्निपिण्डाकार राक्षस (राकस) तथा प्रबल मान्त्रिक (ओझा) द्वारा लघुमान्त्रिकका बालुकापर चित्र बनाकर छड़ीसे प्रहार करने पर लघुमान्त्रिक पर आधात का वर्णन किया है, नीलने बाल्यावस्था में ऐसे मान्त्रिकों को देखा है ।

अधोगतिको प्राप्त जीव किसी यात्री को उत्पीडन करने की

भावना से गोलाकार चक्र-प्रकाशपुञ्ज बन कर रात्रि में उसके आगे-आगे चल कर उसे दुर्गम स्थलों में भटकाने लगता है । वह दुर्गतिप्राप्त यात्री 'राकस - राकस ! बचाओ, बचाओ' कहकर जब चिल्लाने लगता है, समीपवर्ती गाँव के व्यक्ति टार्च, लालटेन, दण्डा आदि लेकर दुर्गासप्तसती, हनुमानचालिसा आदिका पाठ करते हुए उसे बचानेके लिये आने लगते हैं, तब वह राक्षस तिरोहित हो जाता है ।

मारन, मोहन, उच्चाटन आदि तामस प्रयोग दुर्गति में हेतु हैं। स्वयं के और सबके हितमें अपने जीवन का उपयोग तथा विनियोग ही श्रेयस्कर है ।

❋

३५. देवी की कृपा

एक दिन नीलाम्बर ने अपने मित्र गौरीनाथ मिश्र को साथ लेकर देवीधाम उच्चैठ की यात्रा की । उस दिन भीड़ नहीं थी । उच्चैठवासिनी भगवती की कृपा से नीलाम्बर के पिता श्रीलालवंशी झाजी को पुत्रों की प्राप्ति हुई थी । जब स्नान करके नीलाम्बर दर्शन करने गये और देवी के सामने आँचल फैलाया तो, देवी जी ने प्रमुदित होकर श्रीविग्रह पर स्थित सभी पुष्प आंचल में गिरा दिया । देवी से एक पुष्प पाना भी बहुत दुर्लभ माना जाता है । पुजारी आदि सभी आश्चर्यचकित हो गये । नीलाम्बर ने श्रद्धाभक्ति से उन पुष्पों को आँखों से लगाया । शिर से स्पर्श किया तथा वस्त्र में बाँधकर झोली में रखा । उसे अपूर्व और अनन्त निधि समझकर भगवती की अनुकम्पा का बार-बार अनुशीलन कर उसे प्राणवत् सुरक्षित रखा ।

❋

३६. निन्दकों को दैवीदण्ड

अब तो विचित्र स्थिति हो गई । जो भी नीलाम्बर की आलोचना करता, उसी को सर्प प्रकट होकर डस लेता । वे नीलाम्बर के पास आते और नीलाम्बर क्षणभर में उन्हें विषमुक्त कर देते । स्वाभाविक सर्पदंश को भी वे तत्काल ठीक कर देते थे ।

एक दिन पड़ोस की चाची श्रीलोचन झा की मामी अपने सहेलियों के साथ तालाब में स्नान करते समय द्वेषवश नहीं, आश्चर्यवश की कहने लगीं – इस नीलाम्बर को क्या हो गया है ? जो उसकी आलोचना करता है, उसी को सर्प डस लेता है । क्या वह सचमुच का सर्प होता है ? आदि, इतने में ही उन्हें एक सर्प ने डस लिया । वे कांपती हुई अस्तव्यस्त दशा में बेहोशी की स्थिति में नीलाम्बर के पास आयीं । नीलाम्बर ने भगवती का स्मरण किया । चाचीजी स्वस्थ हो गयीं । उन्होंने हँस कर सरोवर में जो कुछ हुआ था, बता दिया ।

एक दिन नीलाम्बर के घर कोई स्वाभाविक सर्प का डँसा हुआ व्यक्ति आया । नीलाम्बर ने उसके विष को मिट्टी पर आकृष्ट कर उतार दिया । दर्शकों ने आश्चर्य प्रकट किया और कहा– 'क्या इस मिट्टी में सर्प विष समाहित हो गया है ?' नीलाम्बर ने आंगन में लगी हुई खीरा की लता जो पर्याप्त फल पुष्प युक्त थी, उस पर मिट्टी को फैंक दिया । वह लता मुरझाने लगी और प्रात:काल होते ही पूर्णत: सूख गई । सबके आश्चर्य का ठिकाना न रहा ।

अब तो गाँव में तहलका मच गया । सर्पदंशित कोई भी व्यक्ति मरणासन्न दशा में नीलाम्बर के पास लाते ही क्षण भर में ठीक हो जाता । इतना ही नहीं, उपस्थित व्यक्तियों में से किसी पाँच साल के बच्चे को भी यदि नीलाम्बर विष उतारने का आदेश देते तो देवी के अनुग्रहपूर्ण आवेश से वह विष को उतार देता था ।

एक दिन सर्प दंशित एक व्यक्ति को मरणासन्न दशा में लोग नीलाम्बर के पास लाये । नीलाम्बर ने अपने बड़े भैया श्रीदेव झा के छः महीने के शिशु से कहा– इनका विष उतार दो । सहसा मिथिलेश ने हाथ चलाया और विष उतर गया । दर्शक आश्चर्यचकित हो गये ।

उक्त चमत्कृतियों से पूरा गाँव प्रभावित होने लगा । एक किलोमीटर दूर मुसलमानों की बस्ती थी । उन मुसलमानों में भी श्रद्धा उछल पड़ी ।

❀

३७. करुणालहरी की अद्भुत चमत्कृति

नीलाम्बर जब मिडिल स्कूल में पढ़ते थे, हिन्दी और संस्कृत के उनके एक अध्यापक उन्हें पुत्रतुल्य स्नेह और शिक्षा प्रदान करते थे । उन्होंने नीलको अवकाशके क्षणों में विस्तृत निबन्धको चन्द शब्दोंमें और सूत्रात्मक वाक्यको विस्तृत निबन्ध के रूपमें प्रस्तुत करने की विद्या दी। सूत्रको व्यास और व्यासको सूत्र–शैली में प्रस्तुत करने की विद्या नीलको उन्हींके अनुग्रह से प्राप्त हुई । नीलाम्बर भी अपने बाग के नीबू, आम आदि भेंटकर उन्हें प्रमुदित करते थे । उन अध्यापक महोदय का नाम था श्रीरत्नकान्त झा । वे नरही गाँव के थे । उन्होंने नीलको पुस्तकालयसे लेकर 'गौतमबुद्ध' नामक पुस्तक पढ़ने को दी । गर्मी छुट्टीमें नीलने उसे पढ़ना प्रारम्भ किया । परन्तु रोना–ही–रोना, करुणा–ही–करुणा । पुस्तकका प्रभाव भी अद्भुत पड़ा । नील घर में या आस–पास जहाँ कहीं हों, दस किलोमीटर की परिधिमें किसी को सर्प डसे । उस अनजान व्यक्तिका विष भी नीलको व्याप जाता । नील देवी विषहरा का स्मरण कर विष उतार देते । इस प्रकार बुद्ध और विषहरा के अनुग्रह से नीलाम्बर का अन्तर्यामित्व विकसित होने लगा । वे करुणामूर्त्ति होने लगे ।

❀

३८. पण्डितों की ईर्ष्या

जब नीलाम्बर की प्रसिद्धि चारों ओर फैलने लगी तब मित्रों की शत्रुता शनैः-शनैः शिथिल पड़ने लगी । परन्तु पण्डितों में खलबली मच गई । वे परस्पर कहने लगे – "हम चालीस वर्षों से तान्त्रिक उपासना कर रहे हैं, किन्तु इस प्रकार की कोई सिद्धि नहीं मिली है । नीलाम्बर की सिद्धि का कोई अन्त ही नहीं ? न जाने इसको कौन गुरु मिल गया ? कहाँ से इसने सिद्धि पा ली ?"

नीलाम्बर उन पण्डितों को पितृतुल्य मानते थे । वे सब थे भी पिताजी के समवयस्क और सखा ही । इन घटनाओं से पूर्व वे सब भी नीलाम्बर से पुत्रवत् स्नेह करते थे । किन्तु दैवी विधान । नीलाम्बर ने किसी सिद्धि के लिये न तो कभी साधना की, न इच्छा ही । उसके जीवन की रक्षा के लिये ग्रामदेव और पितरों ने यह चमत्कार दिखाना प्रारम्भ किया था । पर नीलाम्बर किस-किस को समझाता कि यह सब मेरा स्वयं का कोई चमत्कार नहीं है और न सदा रहनेवाला ही है ।

❀

३९. अजगर की माया

एक दिन एक विचित्र घटना हुई । श्रीजयकान्त झाजी के कमरे में असम्भावित ढङ्ग से एक अजगर प्रकट हुआ । उसने अपना भयङ्कर मुँह फैलाकर जयकान्त को निगलाना चाहा । झाजी अत्यन्त भयभीत हो गये । अजगर ने संस्कृत भाषा में कहा– 'नीलाम्बर को विविध यातना देने वाले युवकों को तुम गुप्त मन्त्रा देते हो, अतः तुम्हें निगले बिना नहीं रहूँगा ।' झाजी ने जीवन दान की प्रार्थना की और प्रतिज्ञा भी की– 'आज से मैं नीलाम्बर की हर तरह से रक्षा करूँगा । कभी भी उसके विरुद्ध कोई गुप्त या प्रकट कार्य नहीं करूँगा ।' इतना सुनकर अजगर अदृश्य हो गया । झाजी ने नीलाम्बर को आकर सब बता दिया । नीलाम्बर ने

पूज्य चाचाजी को प्रणाम किया और कहा- 'मैने आपसे संस्कृत और अंग्रेजी का महीनों अध्ययन किया है । मैं आपका बालक हूँ । सब प्रकार से आप मुझे स्नेह प्रदान करें, यही भावना है ।'

❋

४०. बधिक बन गया बन्धु

एक दिन मूसल जैसा मोटा डण्डा लिये एक ब्राह्मण गरजता हुआ नीलाम्बर के घर के समीप सरोवर के पास आ गया । उसने चिल्लाना प्रारम्भ किया- 'कहाँ है घूरन ? आज मैं उसे मार डालूँगा, उसका घर जला डालूँगा और घर की स्त्रियों की इज्जत ले लूँगा ।'

घर की चाची, भाभी, बहिन आदि को ब्राह्मण की गर्जन सुनाई दी । वे सब भयभीत हो रोने लगीं । कहने लगीं- 'आज यह नयी विपत्ति आ गई । कैसे हम घर की, नीलाम्बर की और अपनी रक्षा कर सकेंगी ?'

नीलाम्बर ने रोना सुना, वे घर से बाहर होने के लिए दौड़ पड़े । माताओं ने रोकना चाहा पर वे नहीं माने । छलांग लगाते, गर्जन करते, उस ब्राह्मण के पास जाकर बोले- 'जिसे मारने आया है, वह यह है, मार सके तो मार ।'

ब्राह्मणदेव तेजस्वी कुमार की ओजस्वी मेघगर्जन सुनकर कहने लगे- 'अरे ! तुम्हीं हो ! बैठो-बैठो पहले मेरी बात सुनो । तुमने क्या अन्याय किया है, कि तुम्हें मारने के लिए मुझे बुलाया गया है ? मेरे चार साथी और हैं, उन्हें हमने बाग में बैठा दिया है । पहले वस्तु स्थिति समझ लूँ तब उनको बुलाऊँ या न बुलाऊँ, ऐसा सोच कर मैं उन्हें साथ लेकर नहीं आया ।'

नीलाम्बर ने कहा- 'ब्राह्मणदेव ! मैंने तो किसी के प्रति कोई अन्याय नहीं किया है । मुझे यह नहीं पता कि मारने के लिये किसने आपको भेजा है ।'

ब्राह्मण ने कहा– 'हमारे पास पचास रुपया भेजा गया । हम तुम्हारे पास के गाँव के पहलवान ब्राह्मण हैं । अमुक ब्राह्मण ने मुझे बुलवाया है ।'

नीलाम्बर ने कहा– 'अरे ! उनके सगे-संबधी विनोदानन्द की रक्षा के कारण ही तो मेरी यह दुर्दशा हुई है । वे मुझे जब भी दीखते हैं, मैं उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूँ । उनका भाञ्जा तो पन्द्रह–बीस दिनों से अधिकतर मेरे पास ही रहता है । उस पर ग्राम देव की कृपा हुई है ।'

ब्राह्मण ने कहा– 'तुमने उनके भाञ्जे को बिगाड़ दिया है । इसी लिये तुम्हें मारने के लिये रुपया देकर हमें बुलाया गया है ।'

नीलाम्बर ने कहा– 'ब्राह्मणदेव ! आप ही बताओ ? जिन जया-विजया आदि पुराण प्रसिद्ध देवियों का दर्शन भी दुर्लभ है, उनका अनुग्रह प्रदान करना, क्या बच्चे को बिगाड़ना है ?'

ब्राह्मण ने कहा– 'अरे ! यह तो उस भाञ्जे पर तुम्हारा अनुग्रह ही है । मैंने तुम्हारे बारे में बहुत कुछ सुना है, तभी तो "एक पन्थ दो काज" की कहावत के अनुसार मैं यहाँ चला आया । पचास रुपये भी मिल गये और तुम्हारा दर्शन भी ।'

इतने में किसी से सूचना पाकर जयकान्त झा जी आ गये । नीलाम्बर ने प्रणाम किया । उन्होंने मूसल – जैसा डण्डा लेकर ब्राह्मण के आने का कारण पूछा । नीलाम्बर ने सब बता दिया । झाजी को देखकर माताओं को यह लगा कि, इस गाँव में भी हमारा कोई रक्षक है । झाजी ने पहलवान से अजगरवाली घटना कह दी, और यह भी बताया कि मेरे जीते जी मेरे इस भतीजे को कोई मार नहीं सकता ।

मल्ल विप्र . कहा– पण्डित जी ! आसपास के गाँवों में आपका नाम कौन नहीं जानता ? आप संस्कृत विद्यालय के प्रधानाचार्य हैं । हेमियोपैथिके डाक्टर भी हैं । आज भगवान् की बड़ी कृपा हुई, कि

आपका दर्शन हुआ और साथ ही आपके इस भतीजे का दर्शन हुआ। अब आप निश्चिन्त रहिये। मैं किसी के द्वारा अपने साथियों को गाँव लौट जाने की आज्ञा देता हूँ।

रात्रि में नीलाम्बर के पड़ोसी श्रीनिरसन झा के घर रुकूँगा। वे मेरे सम्बन्धी हैं। बहुत दिनों से उनसे भी नहीं मिला हूँ। पण्डित जी! "यदि ये कहें तो, जिसने मुझे बुलाया है उसे ही मार दूँ। उसके घर में आग लगा दूँ। उसकी बहू-बेटी की इज्जत नष्ट कर दूँ।"

नीलाम्बर ने कहा- 'उनको मारना मुझे ही मारना है। उनका घर मेरा भी घर है। उनकी बहू-बेटियां मेरी ही पूज्या हैं, अतः उनका अपमान मेरा ही अपमान है।' नीलाम्बर का उत्तर सुनकर ब्राह्मण ने कहा- 'धन्य हो ! धन्य हो !' फिर ब्राह्मण चल गये।

रात्रि में भोजन करने के बाद घर के बाहर अतिथि कक्ष में मल्लविप्र सोने लगे। विविध प्रकार की यातना उन्हें मिलने लगीं। वे काँपने लगे। उच्चस्वर से आर्तनाद करने लगे। घर के भीतर स्त्रियों के बीच घुस कर रात बिताया। प्रातः होते ही गाँव भागे। गाँव में जाते ही बिना किसी बाह्य कारण के उनके घर में आग लग गई। घर जल गया। हृष्टपुष्ट बैल पछाड़ खाकर गिरा और मर गया। ब्राह्मण देव अनाथ की तरह रोते, कांपते, डरते नीलाम्बर के घर आये। नीलाम्बर की बहन को प्रणाम किया और कहा- 'जब तक रक्षाकवच के रूप में नीलाम्बर जनेऊ नहीं देगें, तब तक मैं नहीं जाऊँगा।'

बहन के बार-बार कहने पर नीलाम्बर ने उसे यज्ञोपवीत दे दिया। जब तक नीलाम्बर गाँव में रहे, तब तक प्रतिवर्ष मल्लविप्र उनसे रक्षाकवच के रूप में जनेऊ ले जाते रहे और उसीके बल पर बर्ष भर सुरक्षित बने रहे।

❋

४१. मृतक को प्राणदान

एक दिन, एक शत्रु बने हुए पूर्व मित्र के ताऊकी पत्नी को सर्प ने डस लिया। वे मर गयीं। उनकी सुन्दरता प्रसिद्ध थी। उन्हें श्मशान ले जाने के लिए सभी इकट्ठे हुए। अन्त्येष्टि की सामग्री अग्नि, उपले, बाँस आदि लेकर सब श्मशान की ओर चलने लगे। किसी ने कहा– 'रास्ते में नीलाम्बर का मकान है। घर के बाहर शब को दो मिनट रखकर, नीलाम्बर को दिखा लेते, सम्भव है तो उसके प्रयास से वे जी जाँय। नीलाम्बर बड़े परोपकारी हैं। बचपन से ब्राह्मणों में कोई भी मरे, साथ जाकर अन्त्येष्टि में अवश्य सम्मिलित होते हैं।'

शत्रु बने हुए मित्रों ने कहा– 'नीलाम्बर के द्वारा जिलाई गई माता हमें नहीं चाहिए।'

श्रीजयकान्त आदि ने उन्हें डांटा और शब को नीलाम्बर के घर के पास रखकर नीलाम्बर को सूचना दी। घर की माताओं ने उन लोगों द्वारा दी गई यातनाओं को स्मरण कर नीलाम्बर से कहा– 'मरने दो। तुम घर से मत निकलो।'

परन्तु नीलाम्बर ने कहा मित्रों की माता अपनी माता है। वे घर से बाहर आ गये। सभी पूज्यों को यथायोग्य नमस्कार किया। मित्रों को नेत्रों से प्यार दिया। जिसकी विमाता मरी थी, उसने कहा– 'इन्हें तुम जिला सको तो जिला दो। परन्तु मेरे छोटे भाई ने जो प्रतिज्ञा की है, उसकी पूर्ति के लिए हम तुम्हें मारने का प्रयत्न करते ही रहेंगे।'

उसकी बात सबको बुरी लगी। सबने कहा– 'राम, राम! वैर का कोई अन्त नहीं और इसकी मूर्खता का भी कोई अन्त नहीं।'

नीलाम्बर ने हँसते हुए कहा– 'आप शत्रुता छोड़कर मुझे अपना लेंगे, इस भावना से इन्हें जिलाने का प्रयास नहीं करूँगा। मैं अपनी ही मरी हुई माता को जिलाने का प्रयास करूँगा।'

नीलाम्बर की उदारता पर सब द्रवित हो गये । नीलाम्बर ने भगवान् का स्मरण किया । शव की ओर निहारा भगवती विषहरा का स्मरण किया और शव जीवित हो गया । शवकी अर्थीसे रस्सी खोली गयी । सर्वत्र जय-जयकार, हर्षध्वनि ।

अब तो मित्र मण्डली लज्जित हो गई । सबने श्रीजयकान्त झाजी की प्रेरणा से, वैरभाव छोड़ कर पूर्वापेक्षा और अधिक परस्पर मिलकर रहने का भाव व्यक्त किया । नीलाम्बर के घर की माताएँ भी आनन्द विभोर हो गयीं ।

❀

४२. प्रेत का उद्धार

एक दिन श्रीजयकान्त झा आदि विद्वद्वृन्द और पुनर्मैत्री के पक्षधर श्रीभूपनारायण झा, श्रीनन्दू झा, श्रीचुल्हाई झा आदि युवक वृन्द, नीलाम्बर की प्रेरणा से ग्रामदेव के प्राङ्गण में उपस्थित थे । गोष्ठी चल रही थी । तभी अकस्मात् बाहर से दो-तीन ढेले किसी ने फेंके । परन्तु वे ढेले किसी को लगे नहीं । नीलाम्बर ने सबसे कहा- 'यह कोई प्रेत का उपद्रव है । इतना कहते ही एक स्त्री श्वेतवस्त्र में, सबको बाहर दिखाई दी । सबने उसका पीछा किया । वह एक समीपस्थ विशाल आम के वृक्ष पर चढ़ गई । जिन्होंने उसे जीवन काल में देखा था, उन सबने उसे पहचान लिया । वह मन्दिर के समीपस्थ एक तेली की बेटी थी । कुछ महीने पूर्व किसी विशेष कारण से मरकर प्रेत बन गई थी । नीलाम्बर ने पूछा- 'तुम कौन हो ?' उसने सबको सुनाते हुए अपना पूरा परिचय दिया । सवके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा ।

नीलाम्वर ने कहा- 'तुम नीचे उतरो ।' सबके देखते-देखते वह नीचे उतरने लगी । कुछ दूर आकर वह एक कीड़ा के रूप में पत्ते पर दीखने लगी । नीलाम्बर ने कहा- 'नीचे उतरो ।' वह कीड़ा पत्ते के

सहारे झटपट द्रुतगति से उतरता हुआ दिखने लगा । धरती पर चलकर वह नीलाम्बर के पास पहुँचा । नीलाम्बर ने उसे अपने हाथों पर ले लिया । दो-तीन व्यक्तियों के हाथ में देकर दिखाया भी । उसके समुद्धार के लिये उसे मन्दिर के प्राङ्गण में लाकर छोटा-सा बिल खुदबा दिया, उसे उसमें डालकर, ऊपर से मिट्टी से बिल को बन्द का दिया गया ।

❀

४३. ब्राह्मण का शाप

पिताजी के समवयस्क एक पण्डित जी ने एक विद्यार्थी भेजकर नीलाम्बर से कहलवा दिया- ''तुम पागल हो जाओगे'' । नीलाम्बर ने मन-ही-मन सोचा । पण्डितजी मेरे पितृतुल्य हैं । सदा ही इन्होंने मुझे स्नेह दिया है । उपासक भी अच्छे हैं । श्रीराम आदि सात्त्विक देवों के उपासक हैं । मैंने उनका कोई अपराध भी नहीं किया है । फिर, पण्डितजी ने मुझे यह शाप क्यों भिजवाया है ? शाप वाहक विद्यार्थी ने खेद प्रगट करते हुए कहा- 'आप निरपराध हैं, पण्डितजी आपकी सिद्धियों से व्यथित होकर ऐसा अनुचित शाप दे रहे हैं ।'

नीलाम्बर ने कहा- ''ब्राह्मण का शाप लेकर पागल होकर जीवन धारण उचित नहीं है । किन्तु ब्राह्मण के शाप को स्वीकार न करना भी उचित नहीं है । अच्छा ! तो कुछ महीने के लिये, जब तक मैं इस गाँव में हूँ, तब तक के लिए, वैराग्य और विरहावेश में बहिर्मुख व्यक्तियों को मैं पागल-सरीखा लगूँ ।''

नीलाम्बर ने यह सङ्कल्प कर शाप को शोधित किया और स्वीकार भी किया ।

❀

४४. नीलाम्बर का क्षोभ

आत्मविद्याको विकसित करने तथा दुर्लभ तत्त्वबोधको पूर्णरूप से सुलभ करने की भावना से नीलाम्बर रुदन करता । घर की देवियाँ पूछती क्यों रोते हो ? इतनी विपत्तियों से पार होकर यह कौन-सी नई विपत्ति ने तुमको घेर लिया । विधाता को सदा तुम्हें कष्ट देना ही अभीष्ट है क्या ?'' नीलाम्बर का करुण स्वर में अति आर्त रुदन सुनकर पड़ोसी भी विह्वल हो जाते । नीलाम्बर से पूछते, तुम्हें क्या कष्ट है ? तुम्हारा यह कष्ट कैसे दूर होगा ? नीलाम्बर कहते मुझे सदा के लिए जन्मभूमि से, गाँव से जाने की अनुमति चाहिए । मैं सन्यासी बनूँगा, मैं गृहस्थ जीवन नहीं व्यतीत करूँगा । शाक्त क्षेत्र । वहाँ संन्यास को कोई जानता भी नहीं था । एक दिन नीलाम्बर ने कहा- यदि आप मुझे जीवित देखना चाहते हैं तो इसी समय जाने की अनुमति दीजिए नहीं तो मेरा जीवन नहीं बचेगा ।

❋

४५. दिल्ली गमन

ऐसा कहकर नीलाम्बर घर से बाहर निकल पड़े । एक झोली उसमें एक धोती, एक पोटली में उच्चेठवासिनी देवी के द्वारा दिये हुये पुष्प । नीलाम्बर के हठ, मनोबल और वेग को असह्य समझकर सभी रोने लगे - ''न जाने, कौन इसके मन को उचटा गया ? इस सत्रह वर्ष की आयु में गाँव घर को छोड़कर कहाँ मारे-मारे फिरेगा ? पढ़ाई छूटी, मित्र छूटे । अब हमको और इस गाँव को छोड़कर अकेले कहाँ जायेगा ? इसके दोनों भाई हमें क्या कहेंगे ? हम उन्हें क्या उत्तर देंगे ? उन्होंने धरोहर रूप में इसे गाँव में छोड़कर रखा था, इसे खोकर वे कितनी वेदना पायेंगे ?'' ऐसा कहकर सब आर्तस्वर से रोने लगे ।

१. जन्मभूमिप्रवास

चाची ने कहा– लोकनाथ के पिताजी राजाजी, जब से यह पितरों की कृपा से स्वस्थ हुआ है, प्राय: नित्य ही दिन में अपने पास बिठाकर ही भोजन कराते हैं । वे दो चार दिन बाद दिल्ली जाने वाले भी है । जब तक मैं उन्हें मनाकर ले न आऊँ, तब तक इसे तुम लोग पकड़ कर रखो ।

चाची अति अनाथ की तरह रोती–रोती राजाजी के घर गई । उन्होंने कहा– ''उसकी पढाई भले ही छूट गई है, वह उत्कृष्ट विद्वान् बनेगा। उसकी जन्मकुण्डली उसके पिताजी ने ही बनाई है । मुझे भी ज्योतिष उन्होंने ही सिखाया है । इसकी जन्मपत्री के अनुसार यह महाविद्वान् राजा और योगी बनेगा । आप रोओ मत । जिस पर विविध देवी–देवताओं की इतनी कृपा हो, वह कैसे नष्ट हो सकता है ? उसके मार्ग में विघ्न मत बनिये । हम अभी उसे लेकर दिल्ली चलते हैं । श्रीदेव और शुकदेव दोनों ही दिल्ली में हैं, मैं भी वहीं रहता ही हूँ, यह पढ़ेगा, इसे कोई कष्ट नहीं होगा ।''

राजा जी की बात सुनकर चाची का विषाद दूर हो गया । उन्होंने आँसू पोछा । तत्काल वे बिस्तर आदि आवश्यक सामग्री लेकर घर के समीप सरोवर के तट पर आम के बाग में जहाँ नीलाम्बर को घेरकर सब बैठे थे, वहाँ आ गये । राजाजी ने सबको सान्त्वना दी । नीलाम्बर ने मन से जननी और जन्मभूमि को प्रणाम किया, पितरों, ग्रामदेवों को प्रणाम किया, कुलदेवी कालिका को प्रणाम किया । शत्रु मित्र सबका अभिनन्दन किया । चाची, बहन, भाभी आदि को पाँव छूकर प्रणाम किया । लोकनाथ आदि मित्रों को हृदय से लगाया । मुझसे जो भी जाने–अनजाने अपराध हुआ है, आप सभी अपनी उदारता से क्षमा करें । कहकर नीलाम्बर ने राजा चाचा और अपनी चाचीजी तथा बहन और भाभी को प्रणाम कर जन्मभूमि से दिल्ली के लिए प्रस्थान किया ।

१. जन्मभूमिप्रवास

चाची सुमित्रा जी के निर्णय की सबने भूरि–भूरि सराहना की । सबने सोचा- वहाँ दोनों भाइयों की देखरेख में नीलाम्बर पढेंगे भी और यहाँ के शत्रु-मित्र से दूर रहकर अपने जीवन को विकसित करेंगे ।

पूर्व मित्रों को पता चला वे पछताने लगे, हाय ! वह शत्रुता और मित्रता का केन्द्रबिन्दु सदा के लिए ओझल हो गया । अब न वैसा मित्र मिलेगा, न वैसी शत्रुता किसी से करते बनेगी ।

।। श्रीहरि: ।।

★ श्रीगणेशाय नमः ★

दिव्यानुभूति

(प्रथम भाग - द्वितीय खण्ड)

दिल्ली-निवास

१. दिल्ली यात्रा, विन्ध्यवासिनी दर्शन

नीलाम्बर बस से दरभङ्गा, दरभङ्गा से मोकामा पहुँचे, मोकामा से रेल पकड़ कर दिल्ली की ओर चले । रात्रि का समय था । चाचा के बगल में बैठे बैठे नीलाम्बर यात्रा कर रहे थे । झोली में उच्चैठवासिनी द्वारा प्रदत्त पुष्प को स्पर्श किया । बगल में सामने एक ट्रेन आ रही थी । रेल के पहिये से चिपकी पद्मासन लगाये एक नौ वर्ष की कन्या दिव्यरूप में नीलाम्बर को दर्शन दे रही थी । ट्रेन चल रही थी । नीलाम्बर ने उस कन्या को भगवती समझा और श्रद्धापूर्वक सिर झूकाकर प्रणाम किया । राजाजी खांसे और बोले– नीलाम्बर सो रहे हो क्या ? जागो ! सामने देखो यह विन्ध्याचल है । नीलने समझ लिया चलती हुई रेल के पहिये से संलग्न देवी अन्य कोई नहीं, साक्षात् विन्ध्यवासिनी ही हैं । विन्ध्यवासिनी को प्रणाम किया । विन्ध्यवासिनी तिरोहित हो गईं । ट्रेन दूर चली गई । देवी के अन्तर्हित होते ही, झोली में रखीं पुष्पों की पोटली भी अदृश्य हो गई । नीलाम्बर ने राजा चाचा को कुछ नहीं बताया ।

दिल्ली आये। राजाजी ने गौरी-शङ्कर मन्दिर के समीप दरियागंज में अपने निवासस्थान एक मन्दिर में नीलाम्बर को ठहराया। भोजनादि की सारी व्यवस्था की। उस छोटे से मन्दिर में प्रतिवर्ष पाँच-सात व्यक्ति गाँव से राजाजी के पास आते। राजाजी अनुष्ठानी पण्डित थे। सबको प्रेम से रखते, तब तक भोजन देते जब तक उसे कोई रोजगार न लग जाए। लगभग तीस चालीस व्यक्तियों को वे इस प्रकार आश्रय दे चुके थे। उनके आश्रय दिये कोई दिल्ली सन्मार्ग, कोई हिन्दुस्तान, कोई बीर अर्जुन और कोई नवभारत के सम्पादक वने। कोई दिग्गज विद्वान्, कोई वैद्य तो कोई डॉक्टर, कोई अनुष्ठानी पण्डित और कोई वैज्ञानिक भी बने। उनकी इस सहनशीलता और उदारता के कारण ही उन्हें 'राजा' कहा जाता था।

❋

२. अग्रजमिलन

नीलाम्बर के अग्रज श्रीदेव झा जी श्रीरामकृष्ण डालमियाँ के यहाँ बगलामुखी अनुष्ठान के आचार्य थे, चिकित्सक थे तथा पुस्तकालय के अध्यक्ष भी थे। उन्हें सूचना दी गयी। वे आये। नीलाम्बर ने उन्हें पितृतुल्य आस्था के सहित प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद दिया। नीलाम्बर को पूर्वापेक्षा स्वस्थ देखकर प्रसन्न हुए। राजा चाचा ने गाँव में जो भी घटना घटी थी, झाजी को संक्षेप में बता दी और नीलाम्बर को ध्यान देकर सँवार कर रखने की प्रेरणा दी। श्रीदेव झाजी ने श्रीरामकृष्ण डालमियाँ की पत्नी सरस्वती देवी को अपने अनुज नीलाम्बर के आने की सूचना दी। विदुषी सरस्वती देवी ने कहा- 'आपके भाई आपके साथ ही अपने ही चौके में भोजन कर लिया करेंगे। उन्हें योग्य बनाइये।' झाजी ने कहा- 'ऐसा सुना है कि वह ध्यान-भजन के मार्ग में लगना

चाहता है । आप मुझे जो योगक्षेम देती हैं, उसी से उसे मैं भोजन करा दूँगा । पढ़ सकेगा तो पढ़ाऊँगा । आप पर नीलाम्बर का भार बिलकुल नहीं रहेगा । केवल मेरे साथ आपके दिये हुए स्थान में रहेगा ।'

श्रीदेवजी साल–दो साल में महीने पन्द्रह दिन के लिए गाँव जाते । नीलाम्बर पढ़ने–लिखने और समय पर खेलने में मस्त रहते । प्रात: नीलाम्बर को अपने पास बिठाकर बड़े भाई प्रात:स्मरण करते । विद्यालय के अवकाश दिनों में पूजन के समय नीलाम्बर के शालग्रामादि का पूजन स्वयं झाजी ही करते । वाल्मीकीय रामायण के सुन्दर काण्ड का नित्य पाठ भी करते । नीलाम्बर को गोदी में बिठाकर गीतगोविन्द के पद भी गाते ।

परन्तु नीलाम्बर की छ: महीने के अन्दर मित्रों से वैर और ग्रामदेवता के अनुग्रह आदि घटनाओं से वे प्राय: अपरिचित ही थे । गाँव से आने वालों ने अपनी मति के अनुसार जो कुछ उन्हें सुनाया था वह कोई आनन्दप्रद नहीं था । झाजी बहुत गम्भीरतापूर्वक नीलाम्बर की मन:स्थिति का पता लगाने लगे । गीताप्रेस से प्रकाशित भगवद्गीता देकर अपनी देख–रेख में शाक्त तन्त्रग्रन्थों का अध्ययन एक वर्ष तक कराकर वे समझ गये कि यह प्रवृत्तिमार्ग का अनुगमन नहीं कर सकेगा । नीलाम्बर ने एकबर्ष की अवधि में लगभग अट्ठावन तन्त्रग्रन्थों का अध्ययन किया। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि तन्त्रोक्त देवी-देवताकी समाराधनासे भुक्ति (सुखद भोग्य वस्तुओं की उपलब्धि और उनके सेवासे सुखानुभूति भक्ति (भगवच्चरणों में रति) एवम् मुक्ति (भवबन्ध की आत्यन्तिकी निवृत्ति) सम्भव है । प्रचुर भोग्य और भोगभोगने की शक्ति तन्त्रका प्रारम्भिक फल है ।

❀

३. नीलाम्बर की दिनचर्या

बचपन से ही नीलाम्बर को तेल लगाकर स्नान करना पसन्द नहीं था । जन्मभूमि में उसके सामने कोई विवाहिता या विधवा बाल ढके बिना रहती तो दण्ड अवश्य पाती । वे पूर्वजन्म के प्रबल संस्कार से गोवर और मिट्टी मिलाकर सरोवर या समीपवर्ती जीवछ नदी में स्नान करते । एक बार बड़ी भाभी सरस्वतीजी ने अपने अधिकार का प्रयोग कर अद्भुत स्नेहपूर्वक तेलकी मालिश कर दी । नीलाम्बर गाँव के बाहर नदीतट पर पहुँच गये। सर्दी के दिनों में गोबर और मिट्टी मिलाकर बार-बार शरीर में लगागर स्नान करने लगे । उनके एक मित्र उन्हें ढूँढ़ते हुए जब नदीतट पर पहुँचे, तब नीलाम्बर के काँपते हुए शरीर को देखकर उन्हें अद्भुत आश्चर्य हुआ ।

जन्मभूमि में नीलाम्बर को चाची सुमित्रा ने श्रीगोपाल झा तान्त्रिक विद्वान् से राशि के आधार पर अन्नपूर्णा का मन्त्र लिखवाकर विधिवत् दीक्षा दी थी । नीलाम्बर ने रात्रि में १० से १२ और प्रातः ३ से ६ तक जप प्रारम्भ कर दिया । दिन में एक बार नीलाम्बर अपने हाथ से प्रसाद बनाकर पा लेते । उन दिनों उनके भोजन में प्रायः २० रुपये महीने व्यय होते थे । यह घटना लगभग सन् १९६० की होगी । शनैः-शनैः नीलाम्बर की गतिविधि से अग्रज महोदय परिचित होने लगे । एक दिन उन्होंने बड़े ही प्रेमपूर्वक नीलाम्बर से कहा- जब मैं तुम्हारी चिकित्सा करने गाँव गया था, तब श्रीबलभद्र जी मिले थे । उनसे तुम्हारी कभी बात हुई होगी । वे तुम्हारे असम्भावित सम्भाषण को सुनकर भौंचक्के रह गये थे । उन्होंने तुम से तो कुछ नहीं कहा; परन्तु मुझसे तुम्हारा सम्भाषण बता दिया । मैंने भी उसे सुनकर यही निष्कर्ष निकाला कि तुम्हारे मस्तिष्क में कोई विकृति आ गई है । परन्तु वह उनका और मेरा भ्रम था । प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या ? बलभद्र भैयाजी से तुमने कहा था-

'आपके पड़ोसी मेरे मित्रों को आप समझा दीजिए कि, वे मुझसे पूर्ववत् हिलमिलकर रहें । मुझसे वैर छोड़ दें । मुझे इस गाँव में कुल छः महीने ही रहना है। फिर सदा के लिए मैं इस गाँव को छोड़ दूँगा ।'

सचमुच में कुल छह महीने के बाद तुम गाँव छोड़कर दिल्ली आये । तुमने तो अपनी ओर से सदा के लिए गाँव छोड़ ही दिया । चाची और राजाजी के कारण तुम मेरे पास आ गये ।

ऐसा कहकर झाजी का गला अवरुद्ध हो गया । वे बालकों के समान फूट-फूट कर रोने लगे । नीलने श्रीबलभद्रजी को जो कुछ कहा था, वह बौद्धिक धरातल पर योजनाबद्ध नहीं था । वह निःश्वासकल्प अपौरुषेय (दिव्य) था । नीलश्री उस वचन को भूल भी गये थे । दैवात् वचनकी यथार्थता सुनकर प्रमुदित हुए ।

एक दिन बड़े भाई ने हिन्दी अंग्रेजी का एक मैट्रिक स्तर का ग्रामर लाकर दिया और कहा कि- कुछ समय निकाल कर इसे देखा करो । नीलाम्बर समझ गये कि ये मुझे पुनः पढ़ाई में प्रेरित करना चाहते हैं । नीलाम्बर की उनमें पितृतुल्य श्रद्धा थी । नीलाम्बर ग्रामर पढ़ने लग गये ।

❀

४. सूर्यार्घ्य के सन्दर्भ में भैया की फटकार

झाजी ने सोचा - यह अधिक समय ग्रामर पढ़ने में लग गया है । सूर्यादि को जल देना कहीं भूल तो नहीं गया है ? उन्होंने बड़े प्रेम से पूछा- 'सन्ध्या के पश्चात् सूर्य को जल देते हो कि नहीं ? सूर्य भगवान् को नित्य जल दिया करो ।'

नीलाम्बर ने सोचा, 'ये मुझे सदा ही आप कहकर बोलते हैं । गाँव से यहाँ तक कभी इन्होंने मुझे तनिक भी डाँटा नहीं । क्यों न, नास्तिकों की तरह उत्तर देकर एक बार इनसे मीठी डाँट सुन लूँ ।'

नीलाम्बर ने कहा– 'क्या सूर्य मेरे पानी देने पर ही तृप्त होंगे ? मैं पानी नहीं दूँगा तो वे प्यासे रह जाएँगे ?' झाजी बड़े दुःखी हुए । उन्होंने सरपर हाथ रख कर कहा– 'अरे नास्तिक ! सूर्य पर कृपा करने के लिए नहीं, अपने ऊपर अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए सूर्य भगवान् को जल दिया कर । जिनकी कृपा से जगत् जल पाता है, उन्हें तुम्हारे चुल्लू भर पानी की क्या आवश्यकता ?'

नीलाम्बर मन–ही–मन बड़े प्रमुदित हुए, उन्होंने कहा– 'मैं तो नित्य सूर्य भगवान् को जल देता हूँ । सन्ध्या–तर्पण करता हूँ । गाँव में जब तक था, प्रातः शालग्राम भगवान् का और सायं पार्थिव लिङ्ग का पूजन करता था । प्रायः नित्य ही एक सहस्र गायत्री जपता हूँ, जल लेकर लघुशङ्का जाता हूँ । मेरी सूर्य में पूर्ण आस्था है । आज से आपकी बात का विशेष ध्यान रखूँगा, सब पर अनुग्रह करने वाले सूर्य भगवान् की विशेष आराधना करूँगा तथा पूर्ववत् उन्हें जल देता रहूँगा ।

❋

५. प्रसाद की माया

एक दिन नीलाम्बर सन्ध्या की बेला में डालमियाँ की कोठी से बाहर अकेले ही घूमने जा रहे थे । इण्डिया गेट के समीप मानसिंह और अकबर रोड़ के मध्य वह कोठी थी । गेट के बाहर निकल कुछ दूर पैदल गये होंगे कि एक लगभग पैंतालीस साल का व्यक्ति साइकिल से सहसा उतर कर नीलाम्बर से प्रेमपूर्वक बातें करने लगा, तथा उसे केले के पत्ते में बँधा हुआ लगभग ढाईसौ ग्राम हनुमान् जी का प्रसाद देने लगा । नीलाम्बर ने कहा– 'आप मेरे साथ आईये, मैं आपको अपने अग्रज महोदय से मिला दूँगा । आप उन्हीं के सामने प्रसाद आदि की चर्चा कीजियेगा ।' अनजान व्यक्ति ने साइकिल पर बैठने का आग्रह किया । नीलाम्बर ने कहा– 'मेरे साथ पैदल ही चलिये ।' उसे लेकर अग्रज

महोदय के पास आये । वह बिना परिचय के ही अत्यन्त परिचित के समान बात कर रहा था । मार्ग में उसने प्रसाद को रखने का बार–बार आग्रह किया । नीलाम्बर ने कहा– 'आप भाई साहब के सामने दीजियेगा । बाद में मैं अवश्य चखूँगा ।' वह व्यक्ति श्रीदेव जी को अत्यन्त आग्रह पूर्वक प्रसाद थमाकर चल पड़ा । शिष्टाचार में अग्रज महोदय ने प्रसाद रख लिया ।

कमरे में एक अन्य पण्डितजी भी रहते थे, जो डालमियां के यहाँ अनुष्ठान करते थे, उनका नाम था श्रीवामदेव । वे निरसन मिश्र जी के समधी थे, नेपालस्थित जनकपुरके निकटवर्ती देवडीहा के विद्वान् मैथिल ब्राह्मण थे । भाई साहब ने नीलाम्बर को उनके सामने समझाया– 'सतघरा के अपने संबधी श्री ठक्कन चौधरी जी को इसी प्रकार कुछ समय पूर्व मङ्गलवार के दिन एक व्यक्ति प्रसाद दे गया । पूरे परिवार ने उस प्रसाद को थोड़ा–थोड़ा सेवन किया । सब मूर्च्छित हो गये । हमें सूचना मिली, बड़ी कठिनाई से उन लोगों की प्राणरक्षा कर सका । दिल्ली में इस प्रकार की घटना घटती रहती है ।' हम डालमियाँ जी का अनुष्ठान करते हैं, सरकार से उनका टकराव है । हम उनके मुख्य पण्डित हैं । कुछ भी अमङ्गलकारी षड्यन्त्र चलाया जा सकता है । यह प्रसाद आले पर रख देते हैं । प्रसाद है तो इसका अपमान न हो इस भावना से रखकर एक दिन बाद बगल वाले जंगल में इसे विसर्जित कर देंगे ।'

श्रीवामदेव जी ने प्रस्ताव का पूरा समर्थन किया । नीलाम्बर ने कहा– 'इन्हीं सब कारणों से मैं उस व्यक्ति को यहाँ ले आया था । मेरी भावना थी कि आप दोनों इसे परख लें ।' दोनों ने नीलाम्बर के इस उद्योग की सराहना की ।

२. दिल्ली-निवास

रात्रि में दो घण्टे बगलामुखी का अनुष्ठान करने अग्रज महोदय चले गये श्रीवामदेव जी कमरे के अन्दर सो गये। नीलाम्बर बरामदे में चटाई बिछाकर सो गया। वामदेवजी की नींद सहसा उचटी। देखा नीलाम्बर बाहर से हाथ बढ़ाकर खिड़की के समीप तक्खे पर रखे उस प्रसाद को बाहार निकालने का प्रयास कर रहा है। वामदेवजी ने कहा- नीलाम्बर ! नीलाम्बर ! वे घबराकर किवाड़ खोलकर बाहार आये। देखा, नीलाम्बर चटाई पर खर्राटे लेकर सो रहा है।

पण्डितजी ने सोचा- 'कमरा खोलने में क्षणभर लगा, इतनी जल्दी नीलाम्बर सोने का अभिनय नहीं कर सकता। बात क्या है ?'

पण्डितजी ने कहा- 'नीलाम्बर !' नीलाम्बर क्षणभर में उठकर खड़े हो गये और बोले- 'क्या है ?'

उन्होंने कहा- 'कुछ समझ में नहीं आता क्या कहूँ ? क्या करूँ ? सो जाओ।' नीलाम्बर लेट गये। पण्डितजी कमरे में आये, कुछ देर बाद अनुष्ठान करके झाजी लौट आये। वामदेव ने रोषपूर्वक सारी घटना बता दी। बड़े भाई ने नीलाम्बर को जगाया और डाँटते हुए कहा- 'तुमको मना किया था। फिर भी तुमने प्रसाद लेने के लिए हाथ क्यों बढ़ाया ?'

नीलाम्बर ने रोते हुए कहा- 'इनसे पूछिये, इनके जगाने पर मैं जगा हूँ।'

वामदेव जी ने कहा- 'यह बात पूर्णतः सत्य है। मेरे जगाने पर ही ये जगे हैं।'

श्रीदेव जी ने कहा- 'मुझे भी विश्वास है कि नीलाम्बर झूठ नहीं बोलते।'

वामदेव जी ने कहा- 'प्रश्न यह है कि दूसरा नीलाम्बर कौन था ? इनकी प्रसिद्धि गाँव में तान्त्रिकों तथा मान्त्रिकों में है, कहीं ये

कायव्यूह की सिद्धि का प्रयोग कर दूसरे रूप से प्रसाद लेने का प्रयास तो नहीं कर रहे थे ?'

श्रीदेव कातर दृष्टि से नीलाम्बर की ओर देखने लगे । नीलाम्बर ने कहा– 'मेरी जानकारी में यह सिद्धि होती तो मैं अवश्य ही बता देता, मैं इतना ही जानता हूँ कि इनके जगाने पर ही मैं जगा हूँ । दूसरा नीलाम्बर कौन था ? मैं नहीं जानता ।'

वामदेव ने कहा– 'मन करता है इस बवण्डर प्रसाद को फेंक दूँ । परन्तु अमङ्गल का डर भी लगता है । प्रसादरूपी इस विचित्र संकट को न फेंकते बनता है न खाते ।'

नीलाम्बर ने दोनों की अनुपस्थिति में वचनबद्धता के कारण एक–दो दाने लेकर चखा । अग्रज ने नीलाम्बर का रुख पाकर प्रसाद को जंगल में विसर्जित कर दिया ।

❋

६. अन्नपूर्णा की अनुकम्पा

हरिपुर गाँव में एक विघ्नेश पाठक नामक ब्राह्मण थे । वे कौमुदी विशेषज्ञ थे । इनके कुलदेव गोपालजी थे, अतः ये शाक्त होकर भी मांस नहीं खाते थे । जनश्रुति थी कि उन्हें ससुराल से प्रभूत स्वर्णाभूषण मिला था, किन्तु उद्यमी न होने से सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर जीविका हेतु दिल्ली आये । श्रीदेव जी को उन्होंने कौमुदी पढ़ाया था, नील के भी परिचित थे । गाँव में श्रीगोपालजी के घर नवरात्र में शिव–शक्ति–कार्त्तिकेयादि की आराधना करते थे । दिन में दर्शकों के मनोरञ्जन के लिए नृत्य, गीत, भजन और अभिनय का कार्य भी चलता था । एक दिन अभिनेता शृङ्गार कर रहे थे, तो उन्होंने नीलाम्बर से कहा– तुम मञ्च पर जाकर लोगों का मन बहला दो । तो नीलाम्बर उपेन्द्रनाथ के ड्रायवर को मञ्च पर बुलाकर नृत्य, गान और हास्य, नाट्य करने लगे जिससे दर्शक

अभिभूत हो गये । नीलाम्बर से विघ्नेश पुत्रवत् स्नेह करते थे । श्रीझाजी ने सेठानी से कहकर पाठकजी को भी अनुष्ठान में लगा दिया । एक दिन पाठकजी ने नीलाम्बर से कहा– 'गर्मी के दिन हैं । हम तुम अपनी–अपनी चटाई लेकर रात्रि में बाग में सो जाया करें । तुम भी जप–ध्यान करते हो, मैं भी रात्रि में उग्रताराजी के मन्त्र का जप करता हूँ ।'

तब से वे बाग में सोने लगे । नीलाम्बर रात्रि में १० से १२ और प्रात: ३ से ६ तक जप करते थे । नीलाम्बर नहीं समझ पाये कि पाठकजी के मन में द्वेष उत्पन्न होने लगा है । एक दिन पाठक ने ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर नीलाम्बर को पहले से ही जप करते देखा । वे क्रोधित हो जोर से चिल्लाये– 'मेरी नकल करता है । मुझे नीचा दिखाना चाहता है जा, पागल हो जा ।'

नीलाम्बर चुपचाप मुँह ढककर लेट गये और सोचने लगे यह कैसी असम्भावित विपत्ति है ? बिना अपराध के ही दण्ड ? अब ये भैया से डँटवायेंगे । कहीं भैया मुझे तान्त्रिक ही न समझ लें ? नीलाम्बर रोते–रोते सो गये और स्वप्न में देखा कि– श्री उग्रताराजी हाथ में खड्ग लेकर पाठक को मारने के लिए दौड़ रहीं थीं और नीलाम्बर की इष्टदेवी अन्नपूर्णा उन्हें बाहुपाश में पकड़कर मना रहीं थीं । बहुत कठिनाई से उग्रतारा का क्रोध शान्त हुआ ।

नीलाम्बर की नींद टूटी, देखा पाठकजी नहीं हैं । स्नानादि का समय हो गया । डरते हुए कमरे की ओर चले । झाँका, तो पाठक कराह रहे थे । झाजी उनकी सेवा कर रहे थे । नीलाम्बर को देखते ही झाजी तेजी से बाहर आये । उन्होंने कहा– 'आज तुमने गुरुजी को क्या कर दिया है ? वे बाग से अब तब की हालत में आये । मैंने दवा देना चाहा तो वे बोले– दवा मत दो । नीलाम्बर चाहेगा, तभी मैं जी सकता हूँ, नहीं तो बस अब मरने वाला ही हूँ । ऐसा कहकर वे फूट–फूटकर रोने लगे ।

उस दिन वामदेवजी क्या कह रहे थे ? और आज गुरुजी । अब तो सेठानी इस घटना को सुनेगी और हम अपमानित होकर निकाले जायेंगे।'

नीलाम्बर ने रोते-रोते जो कुछ घटना घटी थी, ज्यों-की-त्यों सुना दी । श्रीदेवजी ने सोचा- नीलाम्बर निरपराध है । किन्तु इसका भाग्य विचित्र है, निरपराध हो कर भी यह दण्डित होता है ।

असल में यह उच्च कोटि का योगी है । इस समाज का स्तर ऐसे योगी को सहने और निभाने का नहीं है । नीलाम्बर ने कहा मेरी भावना है कि ये शीघ्र ही स्वस्थ हों । ऐसा ही हुआ ।

❋

७. श्रीकरपात्रीजी का दर्शन

धर्मसङ्घ के वार्षिक महाधिवेशनके अवसर पर सर्ववेदशाखा सम्मेलन दिल्ली में हो रहा था । कन्याकुमारी से काश्मीर तथा काठमाण्डू तक के सनातनी विद्वान् और धर्माचार्य उसमें सम्मिलित थे । धर्मसङ्घके संस्थापक पूज्य स्वामी करपात्रीजी भी पधारे थे । श्रीदेव झाजी नीलाम्बर को लेकर प्रवचन सुनने गये । पं. श्रीराम आदि परिचित विद्वानों ने मञ्च पर बैठने का आग्रह किया, परन्तु झा ने नीचे बैठना ही उचित समझा । क्योंकि वे काशी में महाशय जी से पढ़े थे । उन्होंने नीलाम्बर को स्वामी श्रीकरपात्रीजी से परिचित कराया । नीलाम्बर ने धर्मसम्राट् का दर्शन करते ही उन्हें अपने सद्गुरु के रूप में पहचान लिया । नीलश्री ने जीवन में प्रथमबार दण्डी स्वामी का दर्शन किया । भाग्योदय के फलस्वरूप उन्हें ज्योतिर्मठ के श्रीजगद्गुरु-शङ्कराचार्य श्रीकृष्णबोधाश्रमजी के सहित श्रीकरपात्रीजी का दर्शन सुलभ हुआ । मिथिला से आये महामहोपाध्याय श्री उमेशजी आदि कुछ विद्वानों का प्रवचन सुनकर सन्ध्या हेतु झाजी नीलाम्बर के साथ अपने स्थान पर लौट आये।

❋

८. प्रकारान्तरसे संन्यास की आज्ञा और शिवानुकम्पा

एक दिन अग्रज महोदय ने नीलाम्बर से कहा- कदाचित्, जीवन में संन्यास मार्ग की ओर जाना ही हो तो, पूज्य श्री करपात्री जी को ही गुरु बनाना । वे वाराणसी में रहते हैं । नीलाम्बर ने प्रकारान्तर से प्राप्त संन्यास की आज्ञा से स्वयं को कृतार्थ माना । इसके बाद ही नीलाम्बर के साथ एक माह तक दिगम्बर वेष में श्रीशिव जी ने रात्रि में शयन किया । परन्तु नीलाम्बर ने इस रहस्य को किसी को नहीं बताया ।

रात्रि में ज्यों ही नीलश्री चटाई पर सोनेकी भावनासे लेटते, त्यों ही उनके बगलमें जटाजूटमण्डित श्रीशिवजी लेट जाते । श्रीशिवजी नीलश्रीको अपने वात्सल्यपूर्ण कर कमलोंसे सहलाते । कभी शिवजी अपने सनातन अंश-सरीखे पुत्र और शेष को सुकोमल कर से स्पर्श कर प्रमुदित करते ।

❋

९. श्रीशुकदेव झा

एक दिन श्रीदेव झाजी ने अपने अनुज श्रीशुकदेव को बुलवाकर उनसे कहा- 'नीलाम्बर के यहाँ आने से गाँव के घर में कोई पुरुष नहीं है। ऐसी स्थिति में हम दोनों में से एक का घर में रहना अनिवार्य है । मेरी भावना है कि आप नीलाम्बर को अपने पास रखें, किसी विद्यालय में इसका नाम लिखाकर पढ़ने की व्यवस्था करें । जब ये पढ़ने लगेंगे तब मैं गाँव चला जाऊँगा । घर पर चाची, बहिन आदि कष्ट पा रही होंगी । बाजार से सामान लाना, बाग आदि की रक्षा, विवाहादि में सम्बन्धी जनों के यहाँ जाना आदि कार्य हमारे गाँव गये बिना सम्भव नहीं है ।

श्रीशुकदेव जी आयुर्वेदाचार्य, वी.आई.एम्.एस्. और आर.एम.पी. थे । वे तिब्बिया कालेज के रिसर्च विभाग के पदाधिकारी थे । सरकारने उस विभाग को निरस्त कर दिया था । अतः केस लड़ रहे थे । उन दिनों

वे एक सरकारी आयुर्वेदिक दातव्य चिकित्सालय में चिकित्सक पद पर कार्य कर रहे थे । निवासादि की व्यवस्था अस्त-व्यस्त थी । फिर भी अग्रज की आज्ञा, घर की परिस्थिति और नीलाम्बर के प्रति स्नेह के कारण उन्होंने यह दायित्व लिया ।

वे बड़े भाई की तरह नीलाम्बर से अधिक सुपरिचित नहीं थे । अध्ययन के सन्दर्भ में छः वर्ष के बाद गाँव आये थे । नीलाम्बर भी उनसे अधिक हिले-मिले नहीं थे । साथ ही नीलाम्बर की उक्त गतिविधियों के कारण उन्हें सम्हाल पाना और दिशा दे पाना, हर व्यक्ति के बस की बात नहीं थी । इसलिए शुकदेवजी कुछ संकोच का अनुभव कर रहे थे।

❋

१०. विद्यालय प्रवेश

तिब्बिया कॉलेज परिसर के एक ब्लाक के प्राङ्गण में टेण्टों का सरकारी हायर सेकेण्डरी स्कूल था । वहाँ के हेडमास्टर से दोनों भाईयों ने सम्पर्क किया । उन्होंने कहा- 'यद्यपि यह नवमी पास है दशवीं में पढ़ रहा था, तथापि विहार के शिक्षा स्तर को हम अच्छा नहीं मानते । इसकी पहले परीक्षा ली जायेगी । उत्तीर्ण होने पर आठवीं में प्रवेश मिलेगा ।'

आठवीं के क्लासटीचर ने नीलाम्बर की धोती चोटी जनेऊ को देख मुस्कुराते हुए कहा- 'पण्डित ज़ी ! यह दिल्ली है । पहले तुम्हारी परीक्षा होगी, फिर पास होने पर दाखिला होगा ।'

नीलाम्बर ने कहा- 'मैं परीक्षा के लिये तैयार हूँ ।' क्लास टीचर ने प्रश्नपत्र बनाया । नीलाम्बर ने परीक्षा दी । अंग्रेजी, हिन्दी, गणित सभी का समुचित उत्तर देख मुग्ध होकर अध्यापक ने झाजी से कहा- 'आपका भाई तो बहुत योग्य है । बिहार का शिक्षास्तर कमज़ोर है, ऐसी भावना तो बिल्कुल गलत है ।'

आठवीं में नीलाम्बर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। श्रीदेव झाजी नीलाम्बर को प्रवेश दिलाने के कुछ समय बाद गाँव चले गये। नीलाम्बर 'विद्यार्थीपरिषद्' के महामन्त्री भी चुने गये और उस पद का उन्होंने समुचित निर्वाह भी किया।

❋

११. समाधिसिद्धि एवं श्रीभैरवादि की कृपा

नीलाम्बर श्रीशुकदेव जी के मित्र मुलतान के श्रीशर्मा जी के पास रखे गये। किन्तु वे तिब्बिया कॉलेज के डी. ८ ब्लाक के ऊपर बरसाती में रहने लगे। जनसंसर्ग से बचकर रहना उन्हें प्रिय था। वहाँ अकेले वे ही थे। पानी आदि की कोई सुविधा नहीं थी। नीचे स्नानादि की व्यवस्था थी। ग्रीष्म की रात्रि में वह स्थान सुखद था। वर्षा और शीत काल में नितान्त दुःखद था।

नीलाम्बर ने सोचा– 'अग्रज श्रीकरपात्री जी से संन्यास दीक्षा की आज्ञा दे ही चुके हैं। विद्वत्संन्यास की योग्यता अर्जित करनी चाहिये।'

उन्होंने अग्रज द्वारा प्रदत्त भगवद्गीता का अध्ययन प्रारम्भ किया। छठे अध्याय तक पढ़ पाये। योगभ्रष्ट के निरूपण ने उन्हें अत्यन्त प्रभावित किया।

उन्होंने गीतोक्त विधि से ध्यान सूर्योपासना सहित प्रारम्भ किया। प्रारम्भिक चरण में पद्माकार प्रकाशपुञ्जका सहस्रारसे अज्ञाचक्रतक और आज्ञाचक्रसे सहस्रारतक अवतरण एवम् अनहद नादका श्रवण प्रारम्भ हुआ। कभी–कभी सायं आठसे प्रातः आठतक छत पर ध्याननिमग्न नीलश्रीको सफाई करने वाली देवी चिल्लाकर उठानेका प्रयास करती और ताना कसती हुई कहती– 'मैं तेरे भाईसे शिकायत करूँगी कि तू पढ़ता–लिखता नहीं, ध्यान करता रहता है।'

लगभग यह क्रम छह महीने तक चला । एक दिन मध्यरात्रि में ध्यानावस्थित दशामें अद्भुत गर्जना सुनाई दी । उसके प्रभावसे ध्यानभङ्ग हुआ । नीलश्री को भय तो नहीं हुआ; परन्तु तीव्र प्यासका अनुभव हुआ ।

गर्मी के दिन थे । प्रथम तल पर ही जल मिल सकता था । दिखा- छत से कुछ ऊपर आकाश मार्ग से श्वानरूप में भैरव जी आगे-आगे चल रहे हैं ।

सीढ़ी पर भी रक्षा की भावना से भैरव जी ही आगे-आगे चल रहे थे । सामने जमीन से कुछ ऊपर खड़ी श्वेतवस्त्रा एक देवी दृष्टिगोचर हुई । उनके नेत्रों से विनिःसृत तेज नीलाम्बर के शरीर को आलोकित कर रहा था । लगभग चालीस हाथ दूर से यह दृश्य देखकर नीलाम्बर प्रमुदित हुए । देवी श्वेतवस्त्र धारण किये हुए थीं । परन्तु सिन्दूरादि चिह्नों से रहित थीं । ऐसा लगा मानो ग्राम देवी सतीने ही रक्षार्थ स्वयंको प्रकट कर नीलश्री को प्रमुदित किया हो । नील पानी पीकर ऊपर जाने लगे । न वह श्वान था और न ही वह देवी थी । ऊपर आकर सो गये ।

❋

१२. श्रीसूर्य द्वारा उपदेश

एक दिन छत पर घूमते-घूमते ही रात्रि के आठ बजे शरीर सत्त्वगुण से अभिभूत हो गया । छत पर ही नीलाम्बर बैठ गये । प्रातः आठ बजे ध्यानान्त में एक परमहंस प्रगट हुए । नीलाम्बर पहचान गये कि ये साक्षात् सूर्य हैं । ध्यानावस्था में ही उन्होंने नीलाम्बर को ब्रह्मात्म-तत्त्व के एकत्व का उपदेश दिया । नीलाम्बर ने स्वयं को कृतार्थ माना ।

द्वैतनिषेध पूर्वक आत्माकी अद्वितीयता का निष्ठान्त उपदेश देने के पश्चात् भगवान् सूर्यदेवने नीलश्रीको एक आदेश दिया । नीलने स्वयंको तदर्थ अयोग्य समझ कर असमर्थता व्यक्त की । भुवनभास्करने यथासमय तदर्थ योग्यताका वरदान दिया ।

१३. सिंघल-संवाद

डी.सी.एम. हाईस्कूल में नवमी कक्षा में प्रवेश के संबन्ध में साइन्स विभागाध्यक्ष श्रीसिंहल ने नीलाम्बर के अग्रज श्री शुकदेवजी से कहा- इसकी परीक्षा ली जायेगी, उत्तीर्ण होने पर ही प्रवेश मिलेगा। सहसा श्रीसिंघल ने नीलाम्बर से पूछा- तुम साइन्स क्यों लेना चाहते हो ? नीलाम्बर ने उत्तर दिया- 'मैं विश्व का सबसे बड़ा वैज्ञानिक होने के लिए विज्ञान का अध्ययन करना चाहता हूँ।' उत्तर पर मुग्ध होकर सिंघल ने कहा- जिसका लक्ष्य इतना महान् है, उसकी परीक्षा नहीं होगी। उस समय नीलश्रीको या उनके अग्रज महोदयको तथा सिंघलजीको क्या पता था कि गणितगत '०'की भावरूपता और प्रथमाङ्कता सिद्ध कर एवम् द्व्याङ्कादि-पद्धति (बाइनरी-सिष्टमादि) की वैदिकार्ष विधा प्रस्तुत कर तथा **'वैदिक गणित'** की व्याख्या कर सहसा अद्भुत यह ध्रुवा वाणी अक्षरशः चरितार्थ होगी ! अग्रज श्रीशुकदेवजी से यह जानकर कि नील गायत्री का उपासक है, आर्यसमाज में आस्था रखनेवाले श्री सिंघल ने गायत्री मन्त्र का अर्थ पूछा, नीलाम्बर आर्यसमाज की शैली में ही गायत्री मन्त्रका अर्थ बताया- **'धारण करें हम सवितादेवके उस दिव्य तेज को करे जो हमारी धारणाओं को दिव्य।'** विज्ञानविभाग के अध्यक्ष सिंहलजीने प्रमुदित होकर विज्ञानविभाग में प्रवेश दिया।

नीलश्री नित्य ही सायङ्काल समीपवर्ती अजमलखाँ पार्क में भ्रमण करने जाते। पार्क में विविध प्रखण्ड थे। कहीं वाल्मीकीय रामायण की, कहीं श्रीदुर्गासप्तशतीकी, कहीं श्रीमद्भागवतकी, कहीं हंस सम्प्रदायकी, कहीं आर्यसमाजकी, कहीं गुरुग्रन्थसाहित्यकी कथा होती। नील चुपचाप खड़े होकर कभी कहीं, कभी कहीं कथा सुनते। वे अधिकतर वाल्मीकीय रामायण और श्रीमद्भागवतकी कथामें विशेष रुचि

लेते । अजमल खाँ पार्क में कई महोत्सव भी होते । एकबार नीलने रक्षामन्त्री श्रीमेननका और श्रीलालबहादुर शास्त्रीजीका भी भाषण सुना था । उक्त कार्यक्रमों में सम्मिलित होने के कारण ही नीलश्रीने श्रीसिंहलजी को आर्यसमाजकी शैली में गायत्रीमन्त्र का झटपट अर्थ बता दिया था ।

धीरे–धीरे श्रीशुकदेव जी को पता चला की पढ़ने में तेज होने पर भी नीलाम्बर पढ़ाई में ध्यान कम देता है । एक दिन विद्यालय के एक उत्सव में नीलाम्बर के प्रवचन को सुनकर समुपस्थित सभी अध्यापक जेब से रुपये निकाल कर नीलाम्बर को भेंट देने लगे । श्रीशुकदेव जी को जब इस घटना का पता चला तो वे बहुत प्रसन्न हुए ।

❃

१४. पुस्तकों का अदृश्य होना

मासिक तथा अर्द्धवार्षिक परीक्षा के अवसर पर कुछ दिन पूर्व ही नीलाम्बर की पुस्तकें विस्तर से सहसा अदृश्य हो जातीं और परीक्षा के बाद पुनः उद्भूत हो जातीं । यह ऐसी विचित्र घटना थी, जिसे किसी को कहना भी उचित नहीं था । नीलाम्बर ने समझ लिया बस स्थान छोड़ने का सङ्केत मिल चुका है । श्रीसूर्यदेव के अनुग्रह के पश्चात् नीलाम्बर विरला मन्दिर के पीछे जंगल के बीच एक पार्क में जाकर तीन घण्टे ध्यान करने लगे अग्रज महोदय को शिकायत मिलने लगी । न जाने यह कहाँ रहता है ? पढ़ना तो अब प्रायः इसने छोड़ ही दिया है । विद्यालय की ओर जाकर भी सहसा मुड़ जाता है । कहीं अज्ञात स्थान में छिप जाता है । इसका कोई साथी भी नहीं, जिससे इसकी गतिविधि की जानकरी मिल सके ।

❃

१५. तप का निश्चय

एक दिन आश्विन नवरात्र में, नीचे गढ़वाली युवक रामलीला कर रहे थे । नीलाम्बर छत पर घूम रहे थे । माइक से प्राप्त आवाज को सुनकर नीलने समझ लिया कि रामवनवास की लीला चल रही है । नीलाम्बर ने सोचा– जब हमारे प्रभु धर्मरक्षार्थ भूभार हरणार्थ चौदह वर्षों के लिए वन जा सकते हैं, तो हमारा यह दायित्व है कि यावज्जीवन धर्मरक्षार्थ, भूभारहरणार्थ तपोमय जीवन व्यतीत करें । सनातन प्रशस्त मानबिन्दुओं की रक्षा की भावनासे यह जीवन सनातन देवको समर्पित करें ।

।।श्रीहरिः ।।

★ श्रीगणेशाय नमः ★

दिव्यानुभूति

(प्रथम भाग - तृतीय खण्ड)

vewefcexeejC³e-Jeeie

१. निवृत्ति पथ की ओर

एक दिन नीलाम्बर खाकी पैण्ट और ब्लु शर्ट पहने विरला मन्दिर के पीछे जंगल में स्थित पार्क में ध्यान करने गये । ध्यानके अनन्तर वे आनन्द से आप्लावित थे । उन्होंने मन से कहा– 'चलो संन्यास पथ पर ।'

मन ने कहा– 'अवश्य !'

नीलाम्बर ने कहा– 'प्रवृत्तिमार्ग को पुनः नहीं अपनाना है, पत्ते खाकर भी रहना पड़े तो रहना है, कितनी भी यातना मिले पश्चात्ताप नहीं करना है ।'

मन ने कहा– 'सब तरह से तत्पर ।'

मन–ही–मन जननी, जन्मभूमि, सिद्धिदात्री दिल्ली और स्थान–देवादि को नमस्कार कर नीलाम्बर चल पड़े, संन्यास पथ की ओर । चलते–चलते गुरुगाँव (हरियाणा) में एक ब्राह्मण के घर बाजरे की रोटी और गुड़ खाकर रात्रि विश्राम किया ।

२. मथुरा में रात्रि निवास

चलते-चलते मथुरा पहुँचे । भूख से संतप्त थे । भिक्षा माँगने का न तो अभ्यास था, न उपयुक्त वेष ही । मथुरा-वृन्दावन के मध्य विरला मन्दिर के बाहर रात्रिविश्राम किया । चलते-चलते वृन्दावन पहुँचे । वहाँ गोशालानगर में माध्वसम्प्रदाय के आश्रम में रुके । वहाँ के महन्त व्रजवासी ब्राह्मण थे । उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं था । वे धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी की प्रेरणा से रामराज्य परिषद् की ओर से चुनाव भी लड़ चुके थे । उन्होंने रात्रि में कहा- 'तुम निर्गुणोपासक हो या सगुणोपासक ? यदि तुम सगुणोपासक और द्वैत मत को मानते हो, तो मैं तुम्हें उत्तराधिकारी बनाना चाहता हूँ ।'

नीलाम्बर ने कहा- 'इन दिनों तो मैं निराकार की ही उपासना करता हूँ । मेरी रुचि अद्वैत में ही है । मुझे आपका उत्तराधिकार नहीं चाहिये । आपने मुझे इतना सम्मान दिया, यही पर्याप्त है ।' उन्होंने गेहूँ की चार रोटी और टेंटी का आचार प्रसाद रूप में दिया । भूख दूर हुई । नीलाम्बर सो गये ।

❀

३. श्रीकृष्णदर्शन और आदेश

ब्राह्ममुहूर्त्त में श्रीकृष्ण ने स्वप्न में दर्शन दिया । नीलाम्बर ने कसकर भगवान् पीताम्बर के श्रीचरण को पकड़ा । भगवान् ने कहा- 'तुम रात्रि बीतने पर नित्य ही पूर्व की ओर मुँह करके यात्रा करना । कुछ दिन बाद एक सन्त मिलेंगे । उनकी सेवा तत्परतापूर्वक करना, उनसे तुम्हें नीति आदि की शिक्षा मिलेगी । दम्भ की अनुकृति से बचना । पुनः कालान्तर में स्वामी करपात्री जी मिलेंगे, उनसे संन्यास होगा । ....'

नीलाम्बर ने प्रभु को दण्डवत् किया, भगवान् अन्तर्हित हुए । नीलाम्बर उठ बैठे । प्रेमपागल तुल्य होकर कुछ समय आनन्द विभोर

बैठे रहे । एक सन्त जगे थे, उन्हें संकेत में कहा मैं जा रहा हूँ और चल पड़े । पूर्व की ओर मुँहकर चलना प्रारम्भ किया । दिनभर चलते रहे । मार्ग में यमुना नदी मिली । कई गाँव, कई वन मिले । आश्चर्य तब हुआ जब माध्व आश्रम के समीप ही सायंकाल आ गये । नीलाम्बर स्तब्ध रह गये । कम-से-कम तीस किलोमीटर चले और वहीं पहुँचे, जहाँ से चले थे । भूख से सन्तप्त थे । मथुरा की ओर चल पड़े । मथुरा में रात्रि विश्राम कर प्रातः आगरा की ओर चल पड़े ।

❋

४. हत्यारा स्वयं ही मारा गया

आगरा से पहले एक हृष्टपुष्ट काले युवक ने नीलाम्बर से पूछा– 'कहाँ जा रहे हो ?'

नील ने कहा– 'संन्यास पथ पर चलता जा रहा हूँ ।'

उसने बलपूर्वक कहा– 'मेरे साथ चलना होगा ।'

नीलाम्बर ने प्रभु का स्मरण किया और दैवयोग से प्राप्त संकट का बुद्धियोग से समाधान उपयुक्त समझा । वह बबूल के जंगल की पगडण्डी से बहुत दूर ले गया । सूर्यास्त हो गया । रेल की पटरी के पास उसने कहा– 'मैं रेल विभाग में रक्षक हूँ, रात्रि में लाइन के आसपास रहता हूँ । देखो ! सीटी दूंगा तो, कुछ दूर आगे मेरे साथी भी सीटी देकर उत्तर देंगे ।' ऐसा ही हुआ । फिर उसने कहा– 'मैं मुसलमान हूँ । मैं तुम्हारी हत्या करना चाहता हूँ । देखो ! यह नदी का पुल है । रेल आती जाती है । पुल से नीचे धकेल कर या गला दबाकर मैं तुम्हें थोड़ी देर में मार डालूँगा ।'

नीलाम्बर ने कहा– 'क्या तुम मुझे दो मिनट दे सकते हो ?' वह जोरों से हँसा । उसने कहा– 'दो मिनट में क्या कोई तुम्हारा रक्षक आ जायेगा ?'

नीलाम्बर ने कहा– 'जो भी होगा, देखना ! गिनकर दो मिनट मुझे दे दो ।'

उसने कहा– 'दिया ।'

नीलाम्बर ने भगवान् का स्मरण किया, भगवद्रूप पितरों का स्मरण किया । खड़ाऊँ पहनकर किसी के चलने की आवाज दोनों को सुनाई पड़ने लगी । नीलाम्बर ने कहा– 'दो मिनट हो गये, अब तुम्हें जो करना हो, कर लो ।'

उस जल्लाद ने कहा– 'मेरी चेतना लुप्त हो रही है, मैं बेहोश हो रहा हूँ । मैं तुम्हें नहीं मार पाऊँगा । परन्तु मैं तुम्हें भटकाकर बहुत दूर ले आया हूँ, यदि तुम पुल पार करोगे तो अंधेरी रात में रेल की पटरी से उस पार कैसे जा पाओगे ? चूक गये तो नदी में गिरकर मरे । रेल आ गई तो कटकर मरे ।'

नीलाम्बर ने कहा– 'जिस प्रभु ने तुमसे मेरी रक्षा की है, वे ही इन सब घाटियों से भी पार करेंगे । मुझे तो केवल तुम्हारी अनुमति चाहिये ।'

उसने कहा– 'बस, जाओ । अब मैं बोलने की स्थिति में नहीं हूँ ।'

नीलाम्बर ने कहा– 'कदाचित् जी जाना तो कभी-कभी मेरा स्मरण कर लेना । मैं तुम्हारा मित्र नीलाम्बर हूँ ।' वह फूट-फूट कर रोते-रोते मूर्च्छित हो गया । नीलाम्बर ने कठिनाई से पुल पार किया । पटरी के सहारे चलते-चलते नीलाम्बर ने आगरा-मथुरा मार्ग पर जा रही ट्रक, बस आदि का प्रकाश देखा । रोड का लक्ष्य बनाकर रेलवे लाइन से नीचे उतरे । बबूल के वन में गिरते पड़ते अपार यातना पाते रोड पर पहुँचे । देखा- कुछ दूर आगे एक पड़ाव था वहाँ जाकर लेट गये । न किसी ने कुछ पूछा, न नीलाम्बर ने कुछ कहा । रात बीती ।

चलते-चलते आगरा पहुँचे । आगरा में सोचा 'गाँवों में जाता हूँ तो लोग मुझे पागल समझते हैं या गुप्तचर । जाऊँ तो कहाँ जाऊँ । जब गाँव वाले ही सहृदय नहीं हैं तब शहरवाले मुझ अकिञ्चन को क्यों प्रश्रय देंगे !'

❋

५. लंगोटी लगाई

यह वेष उचित नहीं है, यमुना के तटपर जेब में हाथ डाला । दैवयोग से ताम्बे का एक नया पैसा मिला । उसे यमुनाजी को समर्पित कर दिया । शर्ट यमुना में प्रवाहित कर दिया, पेण्ट को फाड़कर उसी की लंगोटी बनाकर पहन ली । अब तो विचित्र वेष हो गया । छोटे-छोटे बाल, शिखा, यज्ञोपवीत, नंगा वदन और खाकी वस्त्र की लंगोटी ।

❋

६. आगरा निवास

आगरा में ताजमहल के सन्निकट एक शर्मा जी मिले । उन्होंने कहा- 'मैंने एक जूनियर विद्यालय की स्थापना की है । यदि आप चाहें तो उसमें आपको अध्यापक रूप में रख लूँ और मैट्रिक की परीक्षा भी दिलवा दूँ । अथवा कुछ दिनों के लिए आँटा आदि की व्यवस्था कर दूँ। आप अपने लिए भोजन बनाकर पालें । थकान मिटाकर आगे की यात्रा करें ।'

नीलाम्बर ने कहा- 'थकान मिटाकर आगे की यात्रा ही मुझे अभीष्ट है । तीन दिनों तक विश्राम कर नीलाम्बर ने कानपुर की ओर प्रस्थान किया ।

❋

७. शुक्लागंज ऋषि आश्रम में

कानपुर में गङ्गापार पहुँचकर ब्राह्ममुहूर्त्त में उन्नाव जिलान्तर्गत शुक्लागंज में प्रवेश किया । एक व्यक्ति सायकल से उन्नाव नगरी की ओर जा रहा था । उसने नीलाम्बर को देखते ही ब्रेक लगा दी । सायकल को पटककर बोला– 'देखो, यह ऋषि आश्रम है । इसमें चले जाओ । तुम्हारी सारी व्यवस्था हो जाएगी ।'

नीलाम्बर ने सोचा– 'मैंने इससे कुछ कहा नहीं । सम्भवतः भयङ्कर सर्दी में नंगेवदन काँपता हुआ देखकर दयावश इसने मुझसे ऐसा कहा हो ।'

वह पुनः सायकल से आगे की ओर चलते बना । नीलाम्बर आश्रम में पहुँचे । यज्ञोपवीत, शिखा, पीतवस्त्रादि युक्त ब्रह्मचारियों को देखकर प्रमुदित हुए । पूछा यहाँ के व्यवस्थापक कौन हैं ? लोगों ने कहा– एक वानप्रस्थी 'बापू'जी हैं, वे ऊपर वाले कमरे में रहते हैं ।

नीलाम्बर वहाँ पहुँचे । बापूजी पुलिस विभाग से अवकाश प्राप्त थे । मध्यप्रदेश के निवासी थे । पाण्डेय परिवार के अटेर निवासी सन्तसेवी ब्राह्मण थे । उन्होंने कागज–कलम लेकर पुलिस की शैली में कौन हो ? कहाँ से आये हो ? कहाँ जा रहे हो ? क्या लक्ष्य है ? यहाँ क्यों आये हो ? आदि अनेकों प्रश्न कर दिया । नीलाम्बर ने कुछ सोच विचारकर उनके प्रश्नों का उत्तर देना उचित समझा, सब कुछ बता दिया । विद्यालय के प्रधानाचार्य मैथिल थे । उन्हें बुलाया गया । उनसे पूछा गया, जिस गाँव का यह है वह गाँव कैसा है ? प्रधानाचार्य ने कहा– 'वहाँ सब ब्राह्मण विद्वान् होते हैं । ये कुलीन ब्राह्मण हैं, इन्हें यहाँ रख लिया जावे, इनकी जिम्मेदारी हम लेते हैं ।'

ब्राह्मण ने कहा– 'बापूजी से मिलकर मेरे पास आइयेगा ।' नीलाम्बर ने बापूजी से कहा– 'आपने पुलिस की शैली में बहुत कुछ

हमसे पूछा और बहुत कुछ कागज पर लिखा । नंग-धडंग पागलों-जैसे शरीर को देखकर आश्रम की सुरक्षा के लिए आपने यह सब ठीक किया ; परन्तु एक-दो दिन के लिए किसी स्थान में मुझे ठहरा लेते, प्रसाद की व्यवस्था कर देते । इतना ही पर्याप्त था, न तो मुझे यहाँ नौकरी करनी है, न दीक्षा लेकर बाबा बनना है । मात्र दो दिन भोजन और विश्राम के लिये फाइल तैयार करने की क्या आवश्यकता थी ?'

बापूजी ने कहा- 'सच कहते हो । मैंने पुलिस विभाग में नौकरी की है । छानबीन करना, अच्छे को भी बुरा समझाना, यह सब मेरा स्वभाव बन गया है । परन्तु तुम युवक हो, कहीं भटक न जाओ, इस भावना से सिद्ध सन्त श्रीदण्डी स्वामी गुरुदेव भगवान् नारदानन्दसरस्वती जी महाराज से मैं तुम्हें मिलाना चाहता हूँ । यह उन्हीं का आश्रम है, मैं भी उन्हीं का शिष्य हूँ । मैंने मध्यप्रदेश में कई सिद्ध परमहंसों की सेवा की है ।'

नीलाम्बर ने कहा- 'मैं भटक नहीं सकता । जिसके नाम पर जिसकी प्रेरणा से यहाँ तक पहुँचा हूँ, वह मुझे जहाँ तक पहुँचाना चाहिये, वहाँ तक पहुँचा देगा ।'

बापूजी बोले- 'अरे तुम कुल २०-२१ वर्ष के हो, परन्तु पहुँची हुई बातें कहते हो । परन्तु यह तो बताओ, बिना गुरु के जहाँ पहुँचना चाहते हो पहुँच पाओगे ?'

नीलाम्बर ने कहा- 'आप मुझे तंग मत कीजिए, मैं यहाँ गुरु बनाने नहीं आया, मुझे काशी में अपने गुरु के पास जाना है । आपके यहाँ केवल दो-तीन दिन रुकना है ।'

बापूजी- 'अरे, तुम तो नाराज हो गये, काशी में स्वामी करपात्री जी से बढ़कर कौन संत हैं ? क्या उन्हीं के पास जा रहे हो ? उन तक कैसे पहुँचोगे ? क्या वे देखते ही तुम्हें शिष्य बना लेंगे ?'

नीलाम्बर– 'आप क्या कहना चाहते हैं ? कहिये ।'

बापूजी– 'करपात्री जी तो हम और हमारे गुरु के भी पूज्य हैं। मेरी तो भावना इतनी–सी है कि पाँच दिन तुम यहाँ रुको । फिर किसी परिकर के साथ तुम्हें लखनऊ भेज दूँगा । वहाँ मेरे गुरुजी का दर्शन करना । फिर जहाँ चाहो चले जाना । आखिर सन्तों का दर्शन पुण्यप्रद ही तो है ? भाग्य से ही ऐसे सिद्ध सन्तों का दर्शन मिलता है ।'

नीलाम्बर ने मन–ही–मन सोचा– 'वृन्दावन में श्रीकृष्ण की कही हुई बातें तो सत्य ही होगी । सम्भवत: दम्भका अनादर करते हुये जिस संत की सेवा की आज्ञा मिली है, कहीं वे ही तो पूज्य नारदानन्द सरस्वतीजी नहीं हैं ? हो सकता है वे ही हों । नीलाम्बर ने बापूजी से कहा– 'अच्छा पाँच दिन रुक जाऊँगा ।'

बापूजी ने पुलिस वाला दाव देते हुए कहा– 'तुम दोनों समय नीचे भोजनालय में भोजन कर लेना । परन्तु अन्य लोग तुम्हें लुच्चा चोर उचक्का समझकर इधर जगह देने पर मुझ पर आक्षेप करेंगे । कुछ दूर आगे शौनक कुटी झण्डा पार्क है, वहाँ रात्रि में पहरा देना । दिन में आराम कर लेना ।'

नीलाम्बर ने सोचा– 'मुझे चोर समझकर जहाँ चुराने के लिए कुछ भी नहीं है । खाने के लिए घास है, उस खुले मैदान में पहरा देना, कैसी आज्ञा है ?' बापूजी से कहा– 'आप मुझे चोर समझकर ही अब तक बातें कर रहे हैं । जो भी हो पाँच दिनों तक रहना ही है ।'

नीचे आने पर पण्डितजी से मिले, उन्होंने एक धोती दी । नीलाम्बर ने वह धोती ले ली । गीताभवन की ओर जा रहे थे । आश्रम में तहल का मच गया कि कोई विचित्र व्यक्ति आया है, न जाने वह कौन है ? पागल है या सिद्ध अवधूत ?

लोग डरते और नजदीक आकर देखना भी चाहते । इतने में गीताभवन से आवाज आई– 'ए इधर आओ ।'

नीलाम्बर गया । वहाँ उमाशङ्कर अग्निहोत्री और पण्डित विमलेशजी थे । उन्होंने कहा– 'तुम्हारा हाव–भाव, तेज, भोला–भाला वेष, सब आकर्षक है, पर अज्ञातकुलशील को अपनाना शास्त्रविरुद्ध है । अतः तुम्हें आश्रय देने में डर भी लगता है, नीतिशास्त्र तुम्हें ठुकराने को कहता है और हृदय अपनाने को, विचित्र धर्म–संकट है ।'

नीलाम्बर ने कहा– 'जब ब्रह्मा जी के द्वारा प्रेरित और प्रेषित देवराज इन्द्र सामान्य वेष में अशोक वाटिका में देवी सीता के समक्ष दिव्य पायस लेकर पहुँचे, तब सीता के मन में भी यही सन्देह हुआ था कि, कहीं यह छद्मवेष में रावण तो नहीं है ? तब सीता को विश्वस्त करने के लिए इन्द्र ने देवोचित लक्षणों से युक्त अपने स्वरूप को दर्शाया था। पण्डित जी ! आपकी मनः स्थिति भी वैसी ही हो रही है ।'

सुनकर श्रीविमलेशजी चौंके, आश्चर्य है, यह तो कवि होने योग्य है । इतनी छोटी आयु में यह वाल्मीकि रामायण का उदाहरण भी देता है । महान् आश्चर्य तो यह है कि, आज ही मैंने रामायण में यही प्रसङ्ग पढ़ा है, उसी को यह सुना रहा है । अग्निहोत्री जी ने कहा एक पहनने का वस्त्र तुम ले लो । आखिर ब्राह्मण हो । पाँच दिन नीलाम्बर ने नंगे पांव रात्रि भर मैदान में पहरा देकर व्यतीत किया ।

❀

८. श्रीनारदानन्द का दर्शन

छठे दिन भोजन बनाने वाले रामभरोसेजी के साथ उन्हें बस से लखनऊ भेजा गया । गौरव कार्यालय में पहुँचने पर दण्डीस्वामी जी का दर्शन हुआ । रामभरोसे जी ने एक बापूजी का लिखा हुआ पत्र दिया । बस क्या था ? नीलाम्बर को नजदीक बैठा लिया गया । दो व्यक्तियों

ने वस्त्र का पर्दा किया । नीलाम्बर के दाहिने कान में षडक्षर राममन्त्र दे दिया गया । सब कहने लगे- अहो भाग्य ! आते ही इस भाग्यशाली जीव को कृपालु गुरुदेव भगवान् ने अपना लिया । रमा बाई आदि ऐसा कहकर रोने लगीं ।

नीलाम्बर ने कहा- 'क्या मैं शिष्य हो गया ? नहीं-नहीं मेरी उपासना निराकारपरक है ।' तत्काल एक मन्त्र निराकार परमात्मापरक दे दिया गया ।

दण्डिस्वामीजी ने शङ्करलाल शर्माजी के कान में कुछ कहा । उन्होंने कहा- 'बेटे मेरे पास तो आओ । ऐसा कहकर हाथ पकड़ कर एकान्त में ले गये । उन्होंने कहा मैं रिटायर डी.एस.पी. हूँ, शङ्करलाल शर्मा मेरा नाम है । एटा के पास अवागढ़ का मैं रहने वाला हूँ । मैं गुरुदेव भगवान् का शिष्य हूँ ।'

नीलाम्बर ने सोचा- 'एक पुलिस इन्सपेक्टर बापू ने तो यह काण्ड किया । अब ये डी.एस.पी. न जाने क्या कर डालें ?

शर्मा जी ने पुलिस की भाषा में पाँच प्रश्न जड़ दिये । नीलाम्बर ने दिल्ली के आठ हायर सैकेण्डरी स्कूल के छात्रपरिषद् के प्रधानमन्त्री की भाषा में पाँच-सात प्रश्न कर डाला । विदित हो नीलाम्बर दिल्ली में हायर सेकेण्डरी स्कूल पार्लियामेंट के सर्वसम्मति से प्रधानमन्त्री बनाये गये थे । दो वर्ष तक दक्षतापूर्वक नीलाम्बर ने इस पद का निर्वाह किया था ।

शर्मा बोले- अरे यह तो दिल्ली का खेला हुआ है । तंग करने वाले प्रश्नों को सुनकर नीलाम्बर ने चिढ़कर पूछा था- 'जिन्हें आपने गुरु बनाया है, जिनकी आप इतनी प्रशंसा करते हैं, क्या वे श्रोत्रिय हैं ? ब्रह्मनिष्ठ हैं ? क्या शास्त्रों में इसी प्रकार शिष्य बनाने की विधा है ? क्या आपने अवकाश प्राप्त जीवन आनन्दपूर्वक बिताने के लिए ही बाबा वेष

धारण नहीं किया है ? क्या आपको तत्त्वज्ञान प्राप्त हुआ है ? क्या आप यहाँ से सन्तुष्ट हैं ?' शर्मा जी ने दण्डीस्वामी जी के कान में कुछ कहा ।

दण्डीस्वामी जी ने नीलाम्बर को अपनी जीप में बिठाया । ऋषि आश्रम डालीगंज ले आये । वहाँ उनके उत्तराधिकारी और पुत्रवत् स्नेह प्राप्त ब्रह्मचारी विवेकानन्द जी थे । जब उन्होंने सुना कि बिलकुल अनजान व्यक्ति को गुरुदेव साथ रखना चाहते हैं, तो उन्होंने कहा– 'यदि यह साथ चलेगा तो मैं आपके साथ नहीं रहूँगा ।'

गुरुदेव ने कहा– 'यह तो साथ ही रहेगा ।' बस क्या था ? विवेकानन्द पैदल चल पड़े । सबको सुनाते हुये कहा– 'न कुल का पता, न शील का पता । जिसे देखो साथ लिये फिरते हैं । यह भी कोई बात है ?'

नीलाम्बर दौड़े । उन्होंने विवेकानन्द जी के पैर पकड़ लिये और कहा– 'मुझे यहाँ नहीं रहना है । मेरा कोई अधिकार भी साथ में रहने का नहीं है । आप लौटिये । नहीं तो मैं भी अभी चल दूँगा ।' अब विवेकानन्दजी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। जिसके कारण भाग रहे हैं, वही मना कर रहा है । कुछ देर खड़े रहे, पुनः लौट आये, कहा तुम साथ ही रहो ।

❋

९. जनि गाँव में

हरदोई जिलान्तर्गत जनिगाँव पहुँचे । गाँव के बाहर बृहत् पुष्करिणी के तट पर यज्ञ एवं भागवत आदि का कार्यक्रम था । सरोवर लगभग एक किलोमीटर का था । रात्रि में हवा बहुत चलती थी । मार्गशीर्ष का महीना था ।

महाराज के सेवकों ने नीलाम्बर से कहा- 'तुम कहीं भी सो जाओ, नये व्यक्ति हो। भले ही गुरुदेव भगवान् ने साथ रख लिया है। हमारा विश्वास अभी नहीं जमा है। वटवृक्ष के नीचे कुछ उँचाई पर महाराज के लिए राउटी की व्यवस्था थी, नीलश्री उसी के सहारे बाहर बैठ गये। रात्रि में पर्याप्त ठंड लगी। ऐसा लगता था आज रात ही जीवनलीला समाप्त हो जायेगी, सूर्योदय हुआ। प्रातःकृत्य से निवृत्त हुए। महाराज के बहुत से नामी-गामी शिष्य भी पधारे थे। राजाजी वानप्रस्थी, दण्डीस्वामी प्रेमानन्द ऋषि जी आदि। जब राजाजी आदि को पता चला कि कोई युवक गुरुदेव भगवान् के पास आया है, तो एक-एक करके आने लगे। महाराज जी आप मेरी सेवा में इसे सौंप दीजिये। महाराज ने कहा- 'नीलाम्बर जी, इन्हें पानी भरके पहुँचा दीजिए, इनकी अमुक सेवा कर दीजिए, बाकी मेरी सेवा में बने रहिये।'

सेवा लेने वालों की कठोरता देखकर नीलाम्बर के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। महाराज की मौज प्रसिद्ध थी। दश दिनों का काम वे एक घण्टे में ही कर देने को कहते थे। उसकी उपयोगिता भी बताते थे। काम हो जाये या न हो, उससे उन्हें कोई लेना-देना नहीं था। इस स्वभाव को परखने वाले प्रायः जी हजूर हो गये थे। बाद में काम करके देना वे जानते ही नहीं थे।

❋

१०. टीले की लिपाई

एक दिन नीलाम्बर को साथ लेकर अपने पुराने शिष्यों प्रशंसकों के साथ महाराज यज्ञशाला से एक फलांग दूर पहुँचे। शौचक्रिया से निवृत्त हुए, एक टीला को देखा, कहा- 'झाजी ! इसे अभी गोबर से लीपवा डालिये। अच्छा, मैं आकर देखूँगा। यहाँ बैठकर अध्यात्म की चर्चा होगी, राष्ट्रहित में गोष्ठी होगी।' कहकर महाराज चल दिए।

नीलाम्बर के सामने बड़ी समस्या आई । कोई भी तो सहयोगी नहीं । पानी भी पास नहीं । बाल्टी भी साथ नहीं, इस टीले को ऊपर से नीचे तक गोबर से लीपना सम्भव नहीं । दो सौ बाल्टी से कम पानी क्या चाहिए ? गोबर भी पर्याप्त चाहिए । फूटे घड़े के छोटे-छोटे टुकड़े, कङ्कड़ आदि चुभने वाले पदार्थों से आच्छादित टीले को गोबर से लीपना रक्त से होली खेलना है । एक फीट की लिपाई में ही हाथ से रक्त बहना अनिवार्य है। नीलाम्बर से उन दो चार साधकों को जिनके सामने उसे आज्ञा दी गई थी, विनम्रता पूर्वक सहयोगी बनाया । दण्डी स्वामी ऋषिजी को जाकर प्रणाम किया । प्रार्थना की और कहा- 'महाराज ! आप अनुग्रह करके वहाँ विराज जायेंगे तो साथ देनेवालों का उत्साह बढ़ेगा । हम बच्चे टीला को लीप डालेंगे । दण्डी स्वामी अन्दर से कुपित हुये । उन्होंने मन-ही-मन सोचा- 'यह कल आया है और हम पर शासन करने लगा है ।' वे नीलाम्बर के साथ टीले पर आ गये । उन्होंने टीला देखते ही कहा- 'दस दिन में भी इसे तुम लोग गोबर से नहीं लीप पाओगे ।'

नीलाम्बर ने कहा- 'बात सच है । परन्तु आज्ञा का पालन करना तो हमारा कर्त्तव्य है। असम्भव को सम्भव करने के लिए ही तो आपको हमने कष्ट दिया है । हम दो घण्टे में ही इस टीले को गोबर से लीपकर भव्य बना देंगे ।'

ऋषिजी नीलाम्बर के मुख की ओर देखने लगे विह्वल होकर बोले- 'महाराज को क्या सूझा कि ऐसा कठिन कार्य आते ही तुम्हें सौंप दिया । उनकी मौज है और तुम्हारी मौत । बोलो मैं दण्डी स्वामी और वृद्ध होकर तुम्हारा क्या साथ दूँ ?'

ऋषिजी पहलवान-सरीखे स्थूलकाय गौरवर्ण थे । वेदान्त में रुचि रखते थे । नीलाम्बर ने कहा- 'आप इस तमाशे को देखने वाले

एक दो गाँव वालों से गोबर मंगवा दीजिए । इन्हीं के द्वारा बाल्टी मंगवा दीजिए।' फिर क्या था ? वयोवृद्ध दण्डी स्वामी स्थूलकाय गौरवर्ण ऋषिजी की मेघस्वर में आज्ञा पाते ही वे लोग गाँव की ओर दौड़े । गोबर आ गया, बाल्टी आ गई । दण्डी स्वामी ने कहा– 'एक किलोमीटर दूर गाँव है, परन्तु इन लोगों ने देखो झटपट गोबर और बाल्टी की व्यवस्था कर दी। अब बोलो, तुम्हारा क्या सहयोग करूँ ?'

नीलाम्बर ने कहा– 'आप कृपा करके यहाँ आसन लगाकर बैठ जाइये और देखते रहिये कि थोड़ी ही देर में इस टीले को गोबर से कैसे लीपते हैं ।'

एक से नीलाम्बर ने कहा– 'भाई ! यज्ञस्थल से फावड़ा ले आओ' एक से कहा– 'सूखे अरहर की दो झाड़ू ले आओ ।' दो से कहा– 'देखो उधर से सरोवर दूर है इधर से नजदीक है । पानी लाना प्रारम्भ करो ।'

फावड़ा वाले से कहा– 'धीरे–धीरे कङ्कड़ आदि को फावड़े के सहारे नीचे ले जाओ । देखो, इस प्रकार कङ्कड़ आदि नीचे ले जाये जा सकते हैं ।'

नीलाम्बर ने बाल्टी में एक किलो गोबर रखा । शेष बाल्टी को पानी से भरा । लकड़ी से चलाकर घोल बना दिया । घोल को टीले के ऊपरी हिस्से में डाला । अरहर के खरेर (झाडू) से घोल को ऊपर से नीचे की ओर फैला दिया । अब तो ऋषिजी ताली पीटकर कहने लगे वाह ! वाह ! अब तो थोड़ी देर में ही यह असाध्य काम साध्य हो जाएगा। हुआ भी ऐसा ही । महाराज की लीला पूरी हो गई । उन्हें वहाँ न तो आना था, न देखना, न बैठना ।

परन्तु यह बात फैल गई । महाराज के कानों तक पहुँची ही होगी । नीलाम्बर यथायोग्य सेवा देकर एकान्त में चले जाते । नीलश्रीने

दिल्ली प्रवासमें पातञ्जलयोगप्रदीप का तथा स्वामी विवेकानन्दजी की पुस्तक 'धर्म और विज्ञान का' तथा 'श्रीमद्भगवद्गीता' और फ्रायडके मनोविज्ञानका मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया था । अग्रज श्रीश्रीदेव झाके आदेशानुसार अट्ठावन तन्त्रग्रन्थों का अध्ययन किया था । वहाँ धर्म, अध्यात्म, योग, विज्ञान सम्बन्धी भावों को स्वयं व्यक्त करते और स्वयं सुनते । यह क्रम नित्य ही एक-डेढ़ घण्टे चलता । जनिगाँव का दस दिनों का प्रोग्राम था । दिन में लोग सेवा लेते । शेष समय में नीलाम्बर महाराज के निवास स्थान की रक्षा करते । रात्रि में शीतरूपी मौत से जूझते । पद्मपाणि जी और युगल जी जनिगाँव में महाराजश्रीके परिकरों में थे । जनिगाँव का कार्यक्रम पूर्ण हुआ ।

❀

११. नैमिषारण्य गमन

पद्मपाणि जी से पूज्य दण्डी स्वामी जी ने कहा, तुम नीलाम्बर को नैमिष ले जाओ । मैं नैमिष लौट जाऊँ, फिर इन्हें साथ ही रखूँगा । नीलाम्बर पद्मपाणि जी के साथ नैमिषारण्य पहुँचे । नैमिष टीला पहुँचते-पहुँचते रात्रि हो गई । पद्मपाणि जी ने कहा- 'गुरुदेव भगवान् ने आज्ञा दी है । इन्हें अपने साथ नैमिषारण्य में रखना ।' इतना सुनते ही प्रबन्धक सन्त ने कहा- 'यह सब मैं कुछ नहीं जानता । तुम रहो । इसे कहो, डेढ सौ एकड़ में आश्रम है । कई एकड़ में वन है, कहीं सो जाये, कहीं रहे । पद्मपाणि को बुरा तो लगा परन्तु 'ये नहीं रहेंगे तो मैं भी नहीं रहूँगा' इस प्रकार धर्मनिष्ठा का परिचय वे नहीं दे सके । नीलाम्बर चुपके से द्वार के बाहर आये । रोड के किनारे से शौनक कुटी तक पहुँचे । शौनक कुटी के मार्ग में पाँच बाई पाँच फुट की दो-तीन पर्णकुटी बनी थी । सब खाली थीं । वे आदर्श की दृष्टि से बनी थीं । उनमें कोई रहता नहीं था । एक पर्णकुटी में नीलाम्बर रहने लगे । गोमती नदी वहाँ से समीप थी ।

वहीं स्नानादि क्रियाओं का सम्पादन करते । एक सप्ताह के बाद श्री दण्डी स्वामी जी महाराज नैमिष पहुँचे । वे उन दिनों शौनक कुटी में रुकते थे। नीलाम्बर को देखकर उन्होंने प्रसन्नता व्यक्ति की सत्संग में लोगों से नीलाम्बर का परिचय प्रदान किया । आश्रम के प्रमुख सन्तों और प्रबन्धकों का परिचय नीलाम्बर को भी दिया । यात्रा में युगल जी आदि परिकरों के सहित नीलाम्बर को भी साथ ले गये । युगल नापित (नाई) वर्ण के थे । वे महाराज को स्नान कराते । उनके बाल आदि का परिष्कार करते तथा स्वामी विवेकानन्द के अधीन रहकर अन्य कार्य सम्पादित करते ।

❋

१२. नील-प्रवचन

कानपुर में कोई कार्यक्रम था । एक धर्मशाला में श्रीमहाराज जी के रुकने की व्यवस्था थी । लखनऊ से डॉ. चन्द्रशेखर अग्निहोत्रीजी आदि प्रबुद्ध लोग आये । कानपुर के भी भक्त पहुँचे तथा शुक्लागंज ऋषि आश्रम से शौनक जी आदि साधक भी पहुँचे । धर्मशाला के ऊपरी भाग में छत पर श्रीगुरुदेव के सान्निध्य में सभी प्रमुदित विराजमान थे । लोगों का ध्यान नये ब्रह्मचारी पर गया । महाराज ने नीलाम्बर के सम्बन्ध में सहसा कहा– 'ये धर्म, विज्ञान, अध्यात्म पर घण्टों बोल सकते हैं । दिल्ली से शुक्लागंज तक पैदल आये । अब आप धर्म, अध्यात्म और विज्ञान पर इनका प्रवचन सुनिए ।' नीलाम्बर को आश्चर्य हुआ कि मैं प्रवचन करना जानता हूँ । उक्त विषयों पर घण्टों बोल सकता हूँ । यह तथ्य इन्होंने कैसे जाना ?

नीलाम्बर ने खड़े होकर बोलना प्रारम्भ किया, 'विज्ञान की धारा जब विषय की ओर बहती है, तब वह मनुष्यों को अर्थ और काम-परायण बना देती है । सर्दी, गर्मी आदि द्वन्द्वों से जूझने के लिए विविध

यन्त्र आदि उपकरणों का आविष्कार विज्ञान करता है । परन्तु द्वन्द्वों से जूझकर उन पर विजय प्राप्त करना, वैसे ही असम्भव है, जैसे कि अपनी छाया से युद्ध कर उसपर विजय प्राप्त करना । विषयोन्मुख विज्ञान को दिशाहीन होने से बचाने के लिए, वेदादिशास्त्र धर्म की आवश्यकता पर बल देते हैं । धर्मनियन्त्रित अर्थ और काम को ही सुखप्रद मानते हैं । विज्ञान जब दर्शन की ओर बढ़ता है तब, 'मेटर इज नथिंग बट एनर्जी' आदि का सिद्धान्त निर्धारित करता है, परन्तु एनर्जी के साङ्गोपाङ्ग स्वरूप और एनर्जी के नियन्त्रण की क्षमतासे सम्पन्न परमेश्वर तक विज्ञान को दिशा देने के लिए पुनः सांख्ययोग और वेदान्त दर्शन की आवश्यकता होगी । इस प्रकार सनातन धर्म विज्ञान को दिशा देने में समर्थ है । धर्म को विज्ञान दिशा देने में समर्थ नहीं है । न विज्ञान के द्वारा धर्म के स्वरूप का निर्धारण ही सम्भव है । तथापि तरु-लता-गुल्मादि को प्राणी सिद्ध करके, अतीन्द्रिय वस्तुओंके अस्तित्वको सिद्ध करके, वस्तुके निरन्वय नाशको अस्वीकार करके, रक्तगत विभेदादि में आस्था व्यक्त करके विज्ञानने सनातन सिद्धान्तों की परिपुष्टि कर स्वयं को सनातन धर्म तथा अध्यात्मका अनुचर अवश्य ही ख्यापित किया है ।' नीलाम्बर धारा प्रवाह बोल रहे थे । लगभग २० मिनट के बाद पूज्य महाराज ने कहा- 'अब रहने दीजिए ।' सब श्रोता प्रमुदित हुए । कुछ श्रोता मुग्ध भी हुए और शुक्लागंज के ब्रह्मचारी वृन्द क्षुब्ध भी हुए । विविध प्रकार के प्रभाव का आकलन भी नीलाम्बर ने प्रवचन के समय ही कर लिया । श्रीमहाराज मुग्ध और प्रमुदित दोनों ही हुए ।

युगल जी ने एकान्त में बताया । जनिगाँव में गुरुदेव भगवान् ने कहा- 'नीलाम्बर कहाँ जाता है ? कहाँ बैठता है ? क्या-क्या करता है ? किससे मिलता है ?- आदि की सूचना मुझे देते रहो । तुम जनिगाँव में शिविर से कुछ दूर एकान्त में बैठकर जो धर्म, अध्यात्म और विज्ञान

आदि विषयों पर प्रवचन करते, उसे छिपकर मैं सुनता, बाद में श्रीगुरुदेव भगवान् को सब कुछ बता देता ।'

मैंने उनसे कहा– 'यद्यपि यह स्वयं को केवल दशमी तक शिक्षाप्राप्त बताता है; परन्तु मुझे लगता है कि यह उच्च शिक्षा प्राप्त और प्रवचन एवं अध्यापनकला में अत्यन्त दक्ष है ।'

दस पन्द्रह दिन में कई बार गुरुदेव सार्वजनिक सभा में अपने प्रवचन के पूर्व नीलाम्बर को पन्द्रह–बीस मिनटों के लिए प्रवचन की आज्ञा देते । श्रोता प्रवचन सुनकर झूम जाते । करतल ध्वनि से स्वागत करते, नीलाम्बर प्रवचन करने से प्रायः कतराते । वे समझ गये थे कि श्री शौनक जी, श्रीविवेकानन्द जी आदि के हृदय पर इस प्रभाव से आघात पड़ रहा है । इस प्रभाव की वृद्धि न तो मेरे जीवन के लिए और न साधना के लिए ही उपयुक्त है ।

❃

१३. ब्रह्मचर्य दीक्षा

झांसी उत्तरप्रदेश में नैमिषारण्य का महोत्सव था । नैमिषारण्य के श्री रामदुलारे जी यज्ञाचार्य थे । यज्ञशाला में पूज्य महाराज जी ने नीलाम्बर को ब्रह्मचर्याश्रमोचित वस्त्र दिया और **प्रबुद्ध चैतन्य** नाम रख दिया । कालान्तर में श्रीविवेकानन्द जी ने कहा– सर्वसामान्य के लिए इस नाम का उच्चारण सुगम नहीं है, अतः कोई अन्य नाम रखा जाए । गुरुजी ने **धर्म चैतन्य** नाम रख दिया । कन्नौज में एक ब्रह्मचारी ने कहा– महाराज आपको विस्मृत हो गया है, आपने मेरा नाम धर्म चैतन्य रखा था । महाराज ने पुनः **ध्रुवचैतन्य** नाम रख दिया । संन्यास के पूर्व तक यही नाम प्रसिद्ध हुआ ।

❃

१४. स्वामी श्रीनारदानन्दसरस्वती-चरित्र

पूज्य दण्डी स्वामी जी भागवत के ११.१३.४ के अनुसार आगम, अन्न, जल, प्रजा, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मन्त्र और संस्कार इन दशों को गुण में हेतु मानते थे । -

आगमोऽप: प्रजादेश: काल: कर्म च जन्म च ।
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतव: ।।

उन्होंने नैमिषारण्य के अध्यात्म विद्यापीठ नामक बृहद् आश्रम को हर प्रकार से सात्त्विक बनाने का प्रयास किया था । परन्तु कलियुग का स्वभाव है कि वह अपने शासनकाल में छल-बल-डंके की चोट से सर्वत्र प्रविष्ट हो जाता है । फिर भी महापुरुष सत्त्वगुण के उत्कर्ष से सज्जनों के संरक्षण का प्रयास करते हैं ।

पूज्य नारदानन्दसरस्वती जी महाराज महाराष्ट्र के सन्त पूज्यपाद श्री एकरसानन्दसरस्वती जी के शिष्य थे । उनके देहान्त के पश्चात् उन्होंने वाराणसी में पूज्य श्रीगोकुलानन्दसरस्वती से दण्ड सहित विधिवत् संन्यास ग्रहण किया । समाज में सुगमतापूर्वक कार्य करने की दृष्टि से उन्होंने अन्नाहार का त्याग किया । आहार और निद्रा पर उनका संयम था । वे स्नानोत्तर जलपान और मध्याह्न एवं रात्रि में भिक्षा ग्रहण करते । प्राय: खरबूजे के छिलके हटे हुए तले ४-५ तोले दाने और एक गिलास गर्म गोदुग्ध जलपान में लेते । मध्याह्न और रात्रि में ४-५ बहुत पतली और छोटी-छोटी कूटू की सिकी रोटी वथुवे, परवल, पालक आदि सात्त्विक समयोचित स्वल्पमात्रा में सब्जी और भुने मखाना उनका आहार था । रात्रि में एक गिलास गोदुग्ध और अतिस्वल्प मात्रा में उक्त आहार का वे सेवन करते थे । फलों में कभी-कभी भुने हुए अमरूद और देशी आम का सेवन करते थे । किञ्चित् काली मिर्च और बताशा डालकर उन्हें पीने के लिए पानी दिया जाता । जबाहरलाल गोयल जब

से सेवा में रहने लगे तबसे उन्हें प्रात:काल काली मिर्च, सोंठ, पीपल, सौंफ और बड़ी इलायची के चूर्ण का काढ़ा भी दिया जाने लगा। नाभिमण्डल के आस-पास सरसों के तेल से धीरे-धीरे लगभग आधे घण्टे सहलाया जाता। उस समय प्रायः वे अन्तर्मुख और निद्रा की स्थिति में हो जाते। पुनः गर्म पानी में तौलिया भिंगोकर शरीर पोंछ दिया जाता। साल में दो-चार बार वे ५-६ लोटे गर्म जल से स्नान भी कर लेते। शीतकाल में भी दिन में एक ऊनी चादर और रात्रि में एक ऊनी कम्बल का ही प्रयोग करते।

रात्रि में उनकी सेवा में एक ब्रह्मचारी भूमि पर शयन करते। यदि रात्रि के १० बजे स्वामी सो जाते ठीक १२ बजे जग जाते। जगने के बाद उनका मौन रहने का स्वभाव नहीं था। वे उस ब्रह्मचारी को प्रातः ५ तक अध्यात्म, धर्म, नीति और प्रचार-प्रसार की प्रणाली आदि का उपदेश देते। नैमिषारण्य आदि अपने आश्रम में प्रातः सत्सङ्ग के बाद एक घण्टा श्रमदान का कार्यक्रम भी सम्पन्न कराते। वे किसी साधक से कोई भूल हो जाती तो चाहे वह अवकाश प्राप्त डिप्टी कलेक्टर या स्वयं विवेकानन्द ही क्यों न हों, दण्डवत् करते-करते देव मन्दिर जाने का प्रायश्चित्त बताते या मुर्गा बनवा देते या सर पर ईंट लेकर १५-२० मिनटों तक खड़े रखते। स्नानोत्तर वे आधे मिनट में दण्डतर्पण मात्र करते। उस समय भी दो-चार वाक्य बोलकर उपदेश देते जाते। पुनः सार्वजनिक सभा में या गोष्ठी में उपदेश देते। रात्रि के १० या १२ बजे तक उपदेश और गोष्ठी का कार्यक्रम चलता रहता। प्रातः सत्सङ्ग और सायं सत्सङ्ग के बाद **'जय जय सुरनायक'** और **'वह शक्ति हमें दो दयानिधे'** की प्रर्थना और 'संसार को स्वप्नवत् जानो' आदि पूज्य एकरसानन्द सरस्वती जी के दस उपदेश के पाठ का कार्यक्रम लगभग १५ मिनटों तक चलता रहता।

३. नैमिषारण्यवास

ब्रह्मचर्याश्रम के विद्यार्थियों का नाम '**सत्यमित्र**' आदि '**मित्रान्त**' खते तथा वानप्रस्थियों का नाम '**विश्वामित्र पूजन**' आदि '**पूजनान्त**' रखते । नैष्ठिक ब्रह्मचारियों के नाम '**प्रणव चैतन्यादि**' अथवा '**विवेकानन्दादि**' चैतन्यान्त अथवा आनन्दान्त रखते । दण्डी स्वामियों के नाम शिवानन्दसरस्वती, प्रेमानन्दसरस्वती, सर्वानन्दसरस्वती आदि रखते । वे पूर्व स्वाध्याय के आधारपर ही प्रवचन करते । रामचरित मानस, विनय पत्रिका आदि का पुट प्रवचन में अधिक होता । उनके प्रवचन में निष्काम कर्मयोग और गुरुमहिमा तथा त्रिगुण के स्वभाव, प्रभाव का चित्रण अधिकांश होता । यज्ञ और प्रवचनादि में वे अपने पण्डित तथा अपने प्रवक्ता का ही उपयोग करना पसन्द करते । वे अपने बनाए हुए कार्यक्रमों एवं उत्सवों में ही पधारते । कभी-कभी सदस्यों के विशेष आग्रह पर पुरी के पूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य महाभाग निरञ्जनदेवतीर्थ जी को आमन्त्रित करते थे । उनका प्रमुख आश्रम नैमिषारण्य में था । फसल के अवसर पर अन्नसञ्चय के द्वारा वहाँ अन्न की पूर्त्ति हो जाती थी । दक्षिणा के रूप में प्राप्त धन से शेष व्यवस्था की पूर्ति हो जाती थी । आश्रम का दायित्व उन्होंने वानप्रस्थियों को सौंप रखा था । किसी सेठ-साहुकार या राजा-महाराजा का अथवा राजनेता का अपने ऊपर या आश्रम पर प्रभुत्व उन्हें पसन्द नहीं था । भक्तों के घरों में तथा यज्ञादि महोत्सवों में रखे दानपात्र से उत्सवों और आश्रमों की व्यवस्था का सम्पादन होता । वे तम्बाकू, चाय, पान, भांग आदि से सुदूर थे तथा अपने साधकों को भी सुदूर रखते थे । स्वयं पादुका (खड़ाऊँ) धारण करते थे और साधकों को भी चप्पल, जूते पहनने से दूर रखते थे ।

रामचरितमानस, विनयपत्रिका, वैराग्यसंदीपनी, दासबोध, हिन्दी योगवासिष्ठ, विवेकचूडामणि, श्रीमद्भगवद्गीता, महाभारत और

भागवत का एकादश स्कन्ध उनके द्वारा निर्धारित स्वाध्याय के प्रमुख ग्रन्थ थे ।

साधकों को अधिक विद्वान् होने की प्रेरणा वे नहीं देते थे । अन्य महात्मा के समीप में उनके साधक जाँय यह उन्हें पसन्द नहीं था । उन्हें भक्त '**गुरुदेव भगवान्**' कहते थे । वे स्वयं को भगवान् ही सिद्ध करने लग गये थे । उनके जीवन में दिव्यताओं का रहस्य भी भक्तों की दृष्टि में भगवान् सिद्ध होना ही था । उनके कामी, क्रोधी, लोभी, सिद्ध न होने का मुख्य कारण भी यही था । वे कोई ग्रन्थ नहीं पढ़ते, पूजन नहीं करते, पाठ नहीं करते । अभिप्राय यह है कि वे जीवोचित कोई व्यवहार अपने लिए नहीं करते, उनके मस्तक में भक्त ही चन्दन रोली आदि लगाते थे, वे स्वयं चन्दनादि भी नहीं लगाते थे ।

कुञ्ज, गुफा, पर्णकुटी आदि में भजन, निवास उन्हें प्रिय था । नैमिषारण्य में वे अवकाश प्राप्त ऑफिसरों को वानप्रस्थी बनाकर सरकारी आफिसरों पर अपना प्रभाव बनाये रखते थे । वे अपने प्रशंसक, विश्वस्त माध्यम से उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री रेड्डी जी आदि को भी प्रभावित रखते थे । किसी राजनैतिक दल के विरोधी और पक्षधर नहीं थे । भरी सभा में सबको '**श्रीहरिः शरणम्**' का मन्त्र सुनाकर उपस्थित श्रोताओं को अपना शिष्य बना लेते थे । किसी के दीक्षा या शिक्षा गुरु, किसी के केवल दीक्षा गुरु तो किसी के केवल शिक्षा गुरु जो भी उनके समीप आता, उसके वे गुरु हो ही जाते । वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को अपना ब्रह्मचारी और वानप्रस्थी बना लेते । कालान्तर में ब्राह्मणेतर को बिना दण्ड के संन्यास की भी, एक दो घटना घटी । स्त्रियों को सामान्य दीक्षा या वानप्रस्थ की दीक्षा ही देते थे । घर छोड़ने की प्रेरणा देकर घर छुड़ाकर भी वे बाबा बना देते थे । गृहस्थ युवकों के योगक्षेम की व्यवस्था करके वे उन्हें प्रचार-प्रसार में सहयोगी बना लेते थे । शुष्क

विवाद उन्हें पसन्द नहीं था। वे स्वयं कान्यकुब्ज कुल के थे। फर्रुखाबाद जिलान्तर्गत मियाँगंज में उनका जन्म हुआ था। गङ्गातट पर वैकुण्ठाश्रम में उन्होंने साधना की थी। विविध कारणों से लोग उन्हें बहुत पसन्द करते थे। उन्होंने दलितों और मुसलमानों तथा समाजवादियों और कम्युनिष्टों को भी शिष्य बनाया। मितव्ययता और सदाचारके बल पर वे समाजवादियों और साम्यवादियों को प्रभावित रखते। वे पर्यावरण के पोषक थे।

उन्होंने भागवत और गीता के नौ श्लोक का हिन्दी अनुवाद कराकर उसे **'नवरत्न'** नाम देकर उसका बहुत प्रचार करवाया। एकादश स्कन्ध भागवत के सात श्लोकों और गीता के दो श्लोकों को वे नवरत्न कहते थे। ये नवरत्न के लोकोपयोगी नौ श्लोक ध्रुवचैतन्य को भी याद कराये गये।

श्रीमद्भागवत एकादशस्कन्धके द्वितीय अध्याय में सन्निहित उत्तम, मध्यम और प्राकृत भक्तोंके लक्षणों को ख्यापित करनेवाले ४५,४६,४७ श्लोक, श्रीमद्भागवत एकादशस्कन्ध अध्याय २३ में सुख-दुःख में मनकी परमकारणता, मनके समाहित होने में दानादिसत्कर्मों की सार्थकता अन्यथा निरर्थकता के प्रतिपादक ४३,४६,४७ श्लोक, श्रीमद्भागवत एकादशस्कन्ध के अध्याय १३ में शास्त्र, अन्न-जल, प्रजा, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान तथा मन्त्रकी गुणहेतुता का निरूपक श्लोक ४ एवम् श्रीमद्भगवद्गीताके अध्याय १६ में सन्निहित शास्त्रविधिके परित्याग और स्वेच्छाचारसे सिद्धि, सुख परागति की असम्भवता, अतएव कार्य और अकार्यमें शास्त्रविधिकी प्रामाणिकता को द्योतित करनेवाला २३,२४ श्लोक हिन्दी अनुवाद सहित **'नवरत्न'** में सन्निहित थे।

स्वामीजी का आहार और निद्रापर पूर्ण नियन्त्रण था। जीप या कार में यात्रा की दशामें उन्हें झपकी भले ही आ जाती; परन्तु लेटनेपर

दो घण्टेसे अधिक वे निद्रालाभ नहीं करते । रुग्णावस्था में शाहजहाँपुरके एक चिकित्सकने उनका नैमिषारण्य में कायाकल्प करना प्रारम्भ किया । उनकी मूर्च्छनाकी दशामें भक्तोंके द्वारा कोसे जाने और प्रताडित होनेपर चिकित्सकने मध्यदशामें ही कल्पक्रमको स्थगित किया । उसके फलस्वरूप शीतका प्रकोप उन्हें सह्य नहीं था । तथापि शरीरकी कोमलता, अल्प निद्रा, अद्भुत स्फूर्ति आदि सिद्धियाँ उन्हें सुलभ थीं । वे कनिष्ठिका और अनामिकाके मध्य दोनोंके मूलसे अङ्गुष्ठको दबाये हुए ही शयन करते थे । यह शान्तिमुद्रा शयनदशामें भी परिलक्षित होती थी । यद्यपि यह रहस्य उन्होंने किसीको बताया नहीं । तथापि ध्रुवने इसी मुद्रामें उन्हें सदा शयनदशामें पाया । परन्तु उन्होंने भी इस तथ्यको सुगुप्त ही रखा ।

ध्रुव जी ने श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी द्वारा विरचित और गीताप्रेस से प्रकाशित 'चैतन्य चरितावली', शाङ्करभाष्यसहित माण्डूक्यकारिका, अपरोक्षानुभूति, विवेकचूडामणि, योगवाशिष्ठ, एकादश स्कन्ध भागवत, हिन्दी दासबोध, वाल्मीकीय रामायण, विनयपत्रिका आदि ग्रन्थों का तथा छान्दोग्योपनिषद् एवं स्वामी रामतीर्थ जी के साहित्यों का अध्ययन एवं अनुशीलन किया । 'गौरव पत्रिका' का सह-सम्पादन किया तथा श्रीविवेकानन्द जी के पृथक् से प्रचार करने पर चार वर्षों तक पत्राचार आदि विविध दायित्वों का निर्वाह किया ।

❋

१५. स्वामी आत्मानन्द

श्री स्वामी आत्मानन्द जी हिमालय के उत्कृष्ट सन्त थे । चातुर्मास्य में नैमिषारण्य बुलाये जाते थे । नाटे कद के गौरवर्ण के थे । कलकत्ता में उन्होंने एल.एल.बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की थी । पटना हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करते थे । आचार्य कृपलानी जी ने हिन्दू विश्वविद्यालय में परतन्त्र भारत में विवाह न करने की प्रेरणा विद्यार्थियों को दी । इन्होंने

परतन्त्र भारत में विवाह न करने का व्रत लिया । भारत स्वतन्त्र हुआ । उन्होंने विवाह करना उचित नहीं समझा । प्रैक्टिस खूब चलती थी । मोतीलाल सरीखे प्रसिद्ध वकील होने की भावना थी । एक दिन स्नानघर में विचार उदित हुआ- नित्य ही शरीर मलमलकर स्नान करता हूँ, फिर भी शरीर से इतना मैल कैसे निकलता है ?

उत्तर मिला- 'शुक्रशोणित स्वयं ही मल है ।'

प्रश्न उठा- कहाँ तक इसे स्वच्छ रखोगे ?समाधान क्या है ?

उत्तर मिला- 'पुनः माता के गर्भ में न आना ।'

प्रश्न उठा- उपाय क्या है ?

उत्तर मिला- 'अध्यात्मज्ञान' ।

गर्मी की छुट्टी थी । अग्रज से कहा- भारतभ्रमण की इच्छा है । समय पर आ जाऊँगा ।

अनुमति लेकर चल पड़े । भूमिहार कुल के थे । मिथिला क्षेत्र के थे । तेजस्वी कई भोले-भाले सन्त तो इनके गूढ़ अभिप्राय को समझ ही नहीं पाये । एक ने कहा- 'मन को संयमित करो तब अध्यात्म पथ में अग्रसर हो सकोगे ।' घूमते-घूमते एक सिद्ध सन्त के पास पहुँचे । उनसे कहा- 'सद्गुरु के मिलने का साधन बताइये । 'उन्होंने कहा- 'प्रयाग के सङ्गम तट पर पहुँचो । पीपल वृक्ष के नीचे बैठकर अमुक मन्त्र का जप करो । उत्तम साधक को इस मन्त्र से छः महीने में सद्गुरु की प्राप्ति होती है ।'

उन्होंने सोचा हूँ तो उत्तम साधक ही परन्तु एक वर्ष का व्रत लूँ । छह महीना व्यतीत होते ही एक सिद्ध सन्त आये । उन्होंने- पीपल की परिक्रमा की । मौन धारण किए साधक से कहा- 'व्रत पूर्ण हो जाने पर अमुक स्थल पर मेरे पास आ जाना ।'

साधक को प्रसन्नता हुई । व्रत पूर्ण होने पर सन्त के आश्रम में

पहुँचे । अपना मनोभाव लिखकर प्रस्तुत किया । सन्त तो पढ़े लिखे नहीं थे । उन्होंने किसी से पढ़वाया । सन्त ने कहा- 'दिया सलाई लगने की देर है ।'

साधक का मुख-कमल मुरझा गया । पहला कष्ट था कि मैं पढ़ा लिखा वकील और गुरु निरक्षर । दूसरा कष्ट इतनी श्रद्धा भक्ति से अपना मनोभाव लिखा, परन्तु इन्हें पसन्द नहीं आया, तभी तो पत्र में आग लगा देने की बात कही ।

वस्तुत: सन्त ने कहा था- 'उत्तम साधक है, बस उपदेश प्राप्त होते ही ज्ञानाग्नि से अज्ञान के नष्ट होने की देर है ।'

आत्मानन्द जी से सन्त ने कहा- 'आश्रम में निवास करो । कुछ समय बाद उपयुक्त अवसर पर मैं ज्ञानोपदेश कर दूँगा ।'

सन्त के इस वचन से साधक को अतीव आनन्द हुआ । आतुरता से समय की प्रतीक्षा की । एक दिन एकान्त में सन्त जी ने आत्मानन्द को बुलाया । कहा- ''मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में था । तुम्हें उपदेश देकर कुछ समय बाद देहत्याग कर दूँगा । तुम जीवन-मृत्यु, हानि-लाभ, शीत-उष्ण, मान-अपमान, सुख-दु:खादि समस्त द्वन्द्वों के और पृथ्वी आदि भूतों के तथा देहेन्द्रियादिके भी अलिप्त सर्वथा असङ्ग विभु साक्षी हो ।''

अन्त:करण साधन से परिष्कृत हो चुका था । त्याग का बल था । माता के गर्भ में पुन: प्रविष्ट न होने का दृढ़ निश्चय था । प्राप्त बोध स्थिर हो गया । गुरु कुछ समय बाद चल बसे । आश्रम में निवास करने वाले परस्पर धन, मान तथा मकान के लिए कलह करने लगे । आत्मानन्द जी आश्रम छोड़कर विचरण करने लगे । भूमिदान योजना के प्रसङ्ग में श्री विनोबा जी के साथ भी कुछ समय रहे 'विनोबा जी उन्हें' बहुत ही पसन्द आये ।

ऋषिकेश में दर्शन महाविद्यालय के संस्थापक श्रीराघवाचार्य

जी से भी सम्पर्क हुआ । एक-दूसरे से प्रभावित हुए और एक-दूसरे के सखा बन गये । प्रयाग कुम्भ में पूज्य दण्डी स्वामी नारदानन्दसरस्वती जी से सम्पर्क हुआ । उनसे भी प्रभावित हुए और उन्हें राम तथा स्वयं को लक्ष्मण मानकर उनका अनुगमन करने लगे । ऋषिकेश में नैमिष की शाखा मोक्षाश्रम में निवास करने लगे । प्राय: चातुर्मास्य में आत्मानन्द जी पूज्य दण्डी स्वामी के बुलाने पर नैमिषारण्य आते । दो महीने नैमिषारण्य, कुछ समय शुक्लागंज (उन्नाव) में निवासकर हिमालय में पहुँच जाते । उन्हें कर्ण प्रयाग, देव प्रयाग, ऋषिकेश आदि हिमालय के स्थान अतिप्रिय थे । यद्यपि नैमिषारण्य का आश्रम स्वच्छता, शुद्धि, शान्ति आदि गुणों से मण्डित था, तथापि वे हिमालय को स्वर्ग और मैदान को मर्त्यलोक मानकर पत्र के द्वारा पर्याप्त अनुनय-विनय करने पर ही आते थे । ध्रुव यदा-कदा आत्मानन्द जी के समीप बैठ जाते । शुक्लागंज से शौनकजी भी चातुर्मास्य में नैमिषारण्य आ जाते । शौनक जी समाजवादी, साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित थे । सामने वाला यदि प्रभावशाली हो तो उसके विचार में अपने विचार को विलीन करके सामने वाले को प्रसन्न कर लेते । साथ ही गिने-चुने व्यक्ति यह भी जान गये थे कि शौनक जी और आत्मानन्द जी दोनों भूमिहार वंश के ही हैं । इन सब कारणों से दोनों में बड़ी घनिष्टता हो गई । ध्रुव चैतन्य में सुशीलता तथा सहृदयता का भाव तो था ; परन्तु वे विशुद्ध सनातनी परम्परा के थे । वे किसी को प्रसन्न करने के लिए कृत्रिम उपायों का आलम्बन नहीं लेते थे । आत्मानन्द जी ध्रुव पर कभी चिढ़ते तो कभी रीझते । परन्तु ध्रुव की विनम्रता, हरिरुरु में आस्था आदि से वे प्रमुदित अवश्य होते ।

शौनक जी, उमेश जी जैसे कुछ साम्यवादी विचारधारा के व्यक्तियों को तथा रामप्यारे तिवारी जैसे आधुनिक व्यक्तियों को दण्डी स्वामी जी ने कुछ सोच समझकर ही रखा था । पं. नेहरू के शासन काल में ऐसा

स्वामी जी ने कुछ सोच समझकर ही रखा था । पं. नेहरू के शासन काल में ऐसा लगता था कि पूरे भारत को कम्युनिज्म निगल लेगा । कम्युनिष्टों की दृष्टि में भी सादगी, शोषणरहित जीवन आदि गुणों से श्रेष्ठ सिद्ध हों तथा कम्युनिष्ट भी मुझे अपना मार्गदर्शक समझें, इसी भावना से शौनक जी जैसे कुछ सुधारक पूज्य दण्डी स्वामी जी के सम्पर्क में थे । उन्हें वे समय भी पर्याप्त देते थे तथा पढ़ने आदि के लिए धन भी पर्याप्त देते थे । ये कहीं विरोधी न बन जायें, इस भावना से सुविधा और सम्मान के द्वारा इन्हें कालेज में पढ़ाने, आश्रम में सुविधापूर्वक रहने आदि का यथासम्भव ध्यान रखा जाता था ।

एक बार शौनक जी ने अपने हृदय के गुप्त भावों को गोमती तट पर नैमिषारण्य में ध्रुव से कहा भी था– 'तुम भविष्य में रोओगे । न तो गुरुदेव से रुपये लेकर सुखपूर्वक रहते हो । न कॉलेज में नाम लिखा कर पढ़ते हो । बिना डिग्री के केवल अध्यात्म के नाम पर समाज सम्मान देगा, यह सम्भव नहीं । हाँ, तामझाम वाले गुरुजी के समान महात्मा हो गए तो बात दूसरी है । परन्तु तुम्हारे भोलेपन से लगता है, तुम ऐसा नहीं कर पाओगे । मेरी राय है, तुम मेरी तरह बाबाजी को सन्तुष्ट रखते हुए पढ़ लिखकर योग्य बनो । अपना जीवन बनाओ ।'

ध्रुव ने कहा– 'दिल्ली की साइन्स की पढ़ाई, प्रथम श्रेणी से उत्तीर्णता और सर्वत्र पर्याप्त प्रशंसा एवं स्वजनों का स्नेह छोड़कर अब पुनः उसी मार्ग पर जाऊँ, यह उचित नहीं । क्या धर्म, ईश्वर और अध्यात्म के प्रति समर्पित व्यक्ति अनाथ के समान रो–रो कर जीवन व्यतीत करता है ? क्या इनका आलम्बन व्यक्ति के उत्कर्ष के लिए पर्याप्त नहीं है ?'

हिमालय के सन्त का आत्मानन्द नाम भी स्वयं का रखा हुआ था । वे श्वेतवस्त्र में रहते । गैरिक वस्त्र उन्हें अच्छा नहीं लगता था । जब

नैमिष के दण्डी स्वामी जी ने समझाया कि इसके शरीर से संलग्न रहने पर चर्मरोग नहीं होता, तो वे गैरिक वस्त्र पहनने के लिए राजी हो गये । ध्रुव ने आत्मानन्द जी को गैरिक वस्त्र में ही देखा था ।

आत्मानन्द जी व्यावहारिक धरातल के सन्त नहीं थे । वे भावराज्य में विचरण करने वाले थे । उनका आदर्श धरातल पर सहसा उतर पाना कठिन था । व्यवहार का उन्हें अनुभव भी नहीं था । इनसे नैमिष के प्रबुद्ध वानप्रस्थी, साधक बचते ही रहते । अवकाश प्राप्त तहसीलदार, डिप्टी कॉलेक्टर, डी.एस.पी. आदि जो नैमिषारण्य में निवास करते प्राय: शिष्टाचार तक ही सीमित रहते । वे हिन्दूविश्वविद्यालयके प्रथम वैचके स्नातक थे । श्रीमालवीयजी को वे आदर्श ब्राह्मण मानते थे । हिन्दुत्वके पक्षधर और राष्ट्रभक्त अवश्य थे ।

❋

१६. राजाजी का चरित्र

आध्यात्म विद्यापीठ नैमिषारण्य का एक नियम था । कोई भी वानप्रस्थी नौकर से सेवा नहीं लेंगे । वे अपने धन से भी नौकर नहीं रख सकेंगे । साधक ही उनकी सेवा करेंगे । इस आदर्श के निर्वाह में सेवक न मिलने पर वानप्रस्थियों को पर्याप्त तितीक्षा करनी पड़ती और साधकों को पर्याप्त यातना सहनी पड़ती । परन्तु यह नियम दृढ़तापूर्वक क्रियान्वित किया जाता । इस नियम के कारण साधकों को देखते ही गृहस्थ से वानप्रस्थ बने व्यक्ति उसे अपना सेवक मानकर उससे सेवा लेने का प्रयास प्रारम्भ कर देते । साधक सोचते मेरा घर छोड़ना व्यर्थ हुआ । वे वानप्रस्थियों से दूर भागने का प्रयास करते ।

मैनपुरी (उ.प्र.) जिला के एक जमीदार क्षत्रिय थे । उनका एक लौता बेटा, ब्राह्मण रसोइये से विष दिलवाकर सगे-सम्बन्धियों द्वारा मरवाया गया । परम्परा के क्षत्रिय होने से वे ब्राह्मणभक्त थे । परन्तु

ब्राह्मण रसोइये के कृत्य ने हृदय से उन्हें ब्राह्मणद्रोही बना दिया था । वे राजपाट छोड़कर कुछ आभूषण और धन अपने पास लेकर पत्नी सहित नैमिषारँण्य आ गये । दीक्षा ली । अपने उपयुक्त भवन बनवाकर वानप्रस्थी बनकर रहने लगे । नैमिष में एक कटार या छड़ी हाथ में लेकर परिचित शिष्य क्षत्रिय गुरुदेव को प्रणाम करते तब प्रणाम वैध माना जाता । गुरुदेव प्राचीन शास्त्रसम्मत राजतन्त्र में आस्था रखते थे । वे प्रतिवर्ष उन जमीदार क्षत्रिय को सम्मान पूर्वक एक पुण्य अवसर पर एक उच्चासन पर बिठाकर विधिवत् आश्रम का राजा घोषित करते । स्वयं को वशिष्ठ तुल्य समझकर राजा का तिलक करते और ब्राह्मणों से तिलक करवाकर आशीर्वाद दिलवाते तथा अन्यों से प्रणाम करवाते ।

आश्रम में सभी उनको राजा जी जानते । बाल-दाढ़ी गौरवर्ण स्थूल शरीर के कारण वे - राजर्षि-सरीखे भव्य लगते । वे शुद्धता के नाम पर ब्राह्मण साधक से ही सेवा लेते और उसके ब्राह्मणत्व का बिलकुल ध्यान नहीं रखते । रानी प्रायः बीमार रहतीं । ब्राह्मण साधक उनकी मालिस करते । घर की मोरी (नाली) साफ करते । नंगे पांव गर्मी के दिनों में भी ब्रह्मचर्याश्रम के भोजनालय से भोजन मंगवाते । ३-४ घण्टे की सेवा विचित्र होती तथा बीच-बीच में मङ्गलाचरण भी बड़ा विकट ही होता । 'अरे तुम्हें सेवा करनी हो तो मन लगाकर करो । नहीं तो गुरुदेव से शिकायत कर दूंगा । मैं तो एक कौन कहे चार-चार नौकर रख लूँ, परन्तु कोई रखने दे तब तो, तुम्ही बताओ नौकर नहीं रख सकता। तुम ठीक से सेवा कर पाते नहीं, अब मैं करूँ तो क्या करूँ ? जाऊँ तो कहाँ जाऊँ ?'

राजा के पास सेवक भेजने का दायित्व ध्रुव जी पर ही था । साधक रोते-रोते आते ध्रुव जी से कहते- 'मैं ब्राह्मण हूँ, न करने योग्य

सेवा भी मुझसे राजा साहब लेते हैं । मैं आपकी साधुता के कारण सह लेता हूँ, नहीं तो कुछ और भी काण्ड राजा के साथ हो सकता है ?'

ध्रुवजी कहते- 'बात खटकने वाली है । जो कुछ हमारे साथ व्यवहार होता है, वह अनुचित और असह्य है, मैंने सुना है, पहले कई साधक इसी राजा के कारण यहाँ से भाग चुके हैं । अब इस समस्या का शीघ्र ही समाधान होने वाला है, ऐसा लगता है ।'

एक दिन राजा साहब शौनक कुटी के सत्सङ्ग में विद्यमान थे । उन्होंने भरी सभा में गुरुदेव भगवान् से कहा- 'महाराज ! कोई भी सेवक ठीक नहीं है । अब एक ही उपाय है, ध्रुव जी को आप मेरी सेवा में भेज दीजिए ।' सभा में सन्नाटा छा गया । सब मन-ही-मन राजा को कोसने लगे । विश्वमित्र पूजन जो अवकाश प्राप्त डी.एस.पी. थे, जिन्हें 'डिप्टी साहब' कहा जाता था, वे तो कुछ जोर से ही बोलने लगे- 'लाज नहीं आती, ध्रुव चैतन्य सेवा में चाहिए ।'

गुरुजी ने कहा- 'तो ध्रुव जी ! अब मैं आपको ही इनकी सेवा में सौंपना चाहता हूँ ।'

ध्रुव जी ने खड़े होकर कहा- 'ये क्षत्रिय हैं, मैं ब्राह्मण हूँ, नैष्ठिक ब्रह्मचारी हूँ, मैं सेवा कर सकता हूँ । परन्तु क्या इनमें वह शक्ति है कि मेरे तेज को सह सकें ! यदि नहीं तो इनका कुछ भी हो सकता है ।' ध्रुव के उत्तर सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो गये । सभा में सन्नाटा छा गया । राजा को इस प्रश्न का उत्तर देते नहीं बना । राजा काँप गये । गुरुजी का धैर्य डगमगा गया । इस सत्य के आगे वे स्तब्ध हो गये । उन्होंने कहा ध्रुवजी आप बैठ जाइये । इनकी सेवा की व्यवस्था बड़े आश्रम से कर दी जायेगी । क्यों डिप्टी साहव ? फिर क्या था, डिप्टी साहब बोले- 'यह भी कोई बात है, ब्राह्मण ही सेवा में चाहिए और कोई नहीं चाहिए । नौकर नहीं चाहिए, जब ये घर में थे क्या शूद्र से सेवा नहीं लेते थे ?

जब सायंकाल से सुबह आठ बजे तक इन साधकों के सामने में स्त्रियां नहीं आ सकतीं, तब साधक स्त्रियों के बीच में बड़े आश्रम में जाकर राजा और रानी की सेवा करें, इसकी क्या आवश्यकता है ? भोजनालय में इतने नौकर हैं । वे सब क्या साधक हैं ? उनकी सेवा ली जाती है या नहीं ? उन्हीं में कोई भोजन पहुँचा देगा । कोई दो-चार वाल्टी पानी पहुँचा देगा । वानप्रस्थी हैं, तो अपने हाथों से सेवा करने में क्या आपत्ति है ?'

अब तो राजा जी लज्जित हो गये और गुरुजी ने अपने आपको अपमानित मान लिया । सभा का विसर्जन हो गया ध्रुव और डिप्टी साहब की बात सब के मुँह पर छा गई किसी ने राजा की बात का समर्थन नहीं किया ।

❋

१७. ऋषीकेश गमन

चातुर्मास बीतने वाला था । आत्मानन्दजी लखनऊ में कोहली जी के घर दो-चार दिन रुककर ऋषीकेश जाने वाले थे । उन्होंने भी ऋषीकेश पहुँचाने के लिए किसी योग्य सेवक की इच्छा व्यक्त की । गुरुजी ने मन-ही-मन सोचा । आत्मानन्द जी तो राजाजी से भी भयङ्कर हैं । ये तो साधक को गाली भी दे देते हैं । पीट भी सकते हैं, किसको भेजुँ ! उन्हें ध्रुव का स्मरण आया मन-ही-मन उन्होंने उस दिन अपना अपमान भी माना था । राजा क्षत्रिय तो आत्मानन्द भूमिहार । उन्होंने एकान्त में अपने मनोभाव को छिपाते हुए कहा- 'ध्रुवजी आप आत्मानन्द जी में आस्था भी रखते हैं। वे कोई गृहस्थ भी नहीं हैं । आपके अतिरिक्त उनकी सेवा में कोई टिक भी नहीं सकता है । न चाहते हुए भी मैं आपको ही उनकी सेवा में सौंपना चाहता हूँ । फिर मैं जल्दी ही आपको बुला भी लूँगा । गर्मी में प्रतिवर्ष ऋषिकेश में आता ही हूँ । आपको सब पता ही है ।

ध्रुव जी ने धीरे से कहा – जो आज्ञा ।

श्रद्धापूजन जी आदि को पता चला। सबने कहा– 'अरे वह दुर्वासा है, जल्लाद है । वह तुम्हें सेवा के नाम पर मार डालेगा । नहीं जाओ, हम धरना देकर भूखे रहकर शरीर छोड़ देंगे । गुरुजी को मना लेंगे । तुम वहाँ मत जाओ । आखिर, स्वामी जी को ऋषीकेश ही पहुँचाना है, वहाँ तक प्रतिवर्ष की भाँति और कोई पहुँचा देगा । ऋषिकेश में नारायण तो रहता ही है । वह उन्हें भोजन बनाके देता ही है ।'

ध्रुव जी ने कहा– 'एक सन्त के नाम पर यह आज्ञा मिली है । इसमें आप लोग आशीर्वाद दीजिए । संयोग होगा तो पुनः मिलेंगे ।'

सायंकाल नैमिषारण्य स्टेशन के लिए प्रस्थान किया । आश्रम का एक व्यक्ति सामान ढोनेवाला साथ कर दिया गया । श्री विज्ञान पूजन 'चाचाजी' वयोवृद्ध और प्रतिष्ठित ब्राह्मण थे । उन्होंने मिडिल स्कूल के प्रधानाचार्य पद को त्याग कर गुरुदेव का साथ दिया था । श्रीविवेकानन्दजी और सर्वदानन्दजी भी उनके विद्यार्थी रह चुके थे । आश्रम में वही सर्वोत्कृष्ट वानप्रस्थी माने जाते थे । वे लेखक और कवि दोनों ही थे । वे आश्रम की ओर से श्री आत्मानन्द जी को स्टेशन पहुँचाने गये । मार्ग में ही सामान छूट ना जाय, खो न जाय, चोरी न हो जाय आदि के नाम पर स्वामीजी कुपित होने लगे और मङ्गल गान आलापने लगे । चाचाजी ने ध्रुवजी से एकान्त में कहा– आश्रम के बाहर आते ही ये प्रचण्ड हो रहे हैं । इनकी सेवा करके जीवित रहना, सकुशल रहना तो सचमुच में बहुत कठिन है । हो न हो, तुम इनके पास आते जाते थे । इन्होंने ही गुरुदेव से तुम्हारा नाम लिया हो । नहीं तो तुम जैसे प्रिय को गुरुदेव अपनी ओर से इनके पास नहीं भेजते ।'

ध्रुवजी ने कहा– 'बिना कारण के कुपित होने का स्वभाव है,

वह कैसे चुरा लेगा ? बात समझ में नहीं आती ।'

लखनऊ पहुँचे । कोहली परिवार पूज्य नारदानन्द सरस्वती का प्रिय शिष्य था । कोहली जी अमरीकी कम्पनी में दवा के विक्रय और प्रचार-प्रचार का कार्य देखते थे । पत्नी बहुत योग्य चिकित्सक थी, परन्तु सर्विस नहीं करती थी । कोहली जी तो शान्त थे ही उनकी पत्नी शान्ता भी बहुत सुशीला थी । कोहली जी के भाँजे, बहिन सभी ध्रुवजी को पहचानते थे और सभी उनसे प्रभावित थे । चार-पाँच दिनों तक वहाँ आत्मानन्दजी शान्तिपूर्वक रहे । वहाँ से ऋषिकेश पहुँचे मोक्षाश्रम में 'नारायण' नामक सेवक भी ध्रुवजी का बड़ा सम्मान करता था ।

प्रश्न उठा- भोजन का । ध्रुव से नारायण ने कहा- 'आप जानते ही हो मैं अहीर हूँ । मेरी और स्वामी जी की चिन्ता मत करो । परन्तु आप क्या करोगे ?'

ध्रुवजी ने कहा- आप बाहर से सहयोग कर देना, मैं भात और दाल तो बनाना जानता हूँ । परन्तु यहाँ रोटी दाल बनाने की बात है । मैं किसी तरह तीनों के लिए दाल या सब्जी तथा दोनों के लिये रोटी बनाकर रख लूँगा । तुम अपने लिए रोटी सेंक लो । ऐसा ही हुआ । परन्तु स्वामी जी ने कहा- बीस पच्चीस मिनट में रोटी, सब्जी सब बनके तैयार हो जाय ! उन्होंने यह नहीं सोचा कि जिसे भोजन बनाने का अभ्यास नहीं है, वह दो-तीन व्यक्तियों का भोजन अल्प समय में कैसे बना देगा ? नारायण से वे मन ही मन डरते थे । परन्तु ध्रुव चैतन्य को डराके रखने का प्रयास वे करने लगे । असल में स्वामी जी बहुत ऊँचे सन्त थे । कभी परम्परा प्राप्त सन्तों के बीच में नहीं रहे । भिक्षा आदि मांगने में भी यातना नहीं सहे ।

शनैः-शनैः बात फैल गयी कि ऋषीकेश में स्वामी जी के पास

शनैः-शनैः बात फैल गयी कि ऋषीकेश में स्वामी जी के पास ध्रुव चैतन्य रहने लगे हैं । निर्मल नामक साधक नैमिषारण्य में प्रायः ध्रुव के वियोग में मरणासन्न हो गये । उन्हें भी मोक्षाश्रम भेजा गया । केरल के कृपाशङ्कर नामक साधक भी घूमते-घूमते आ गए । ऋषि आश्रम (देहरादून) से मोक्षाश्रम का प्रबन्ध होता था । जब वहाँ के प्रबन्धक को पता चला तो वे भी ५/६ व्यक्तियों के भोजन का व्यय नारायण के पास भेजने लगे । ध्रुव ने कभी किसी को सूचना नहीं दी । हिमालय के कई साधक भी वहाँ आने लगे । ध्रुव जी अकेले ही पाँच-सात व्यक्तियों का भोजन बनाते, जो रोटी जलती जाती, अपने लिए रख लेते । १५ रोटी बनाने पर ५/६ अच्छी बन पाती । स्वामी जी की डांट भी सुननी पड़ती । जली रोटी पाते-पाते ध्रुवजी का पेट खराब हो गया ।

एक दिन स्वामी जी ने नाई को बुलाया और कहा इसके बाल बनाओ । नाई ने बनाया । रुपये ध्रुवजी के पास जो नैमिषारण्य में आठ-दस दिये गये होंगे, उन्हें उन्होंने स्वामी जी को रखने के लिए दे दिया । अपने पास एक भी रुपया नहीं रखा । नाई ने जितना माँगा, उसकी अपेक्षा आधा देना स्वामीजी ने स्वीकार किया । नाई दुःखी होकर बिना कुछ लिए चला गया । वह ध्रुवजी को अपना शत्रु मानने लग गया ।

❋

१८. निर्मल को दण्ड

निर्मल हरियाणा के वैश्य कुल के थे । उनके पितामह रोहतक में रहते थे । पितादि लखनऊ में रहते थे । निर्मल के घर का नाम सागरमल था । वे हठी थे । मनमाने ढंग से सेवा करने वाले थे । ध्रुव के अतिरिक्त कोई और उन्हें सम्हाल नहीं पाता था । ध्रुव उन्हें आत्मानन्द जी की सेवा में उक्त हेतु से नहीं लगाते थे । निर्मल ध्रुव की सेवा करते । आत्मानन्दजी के मन में निर्मल को निकट लाने का भाव आया ।

वे उससे स्वयं ही स्नेह देकर सेवा लेने लगे । ध्रुव सावधान रहते । कहीं दोनों में भयङ्कर संघर्ष न हो जाए । एक दिन रात्रि में आत्मानन्द जी ध्रुव जी से धर्म, अध्यात्म, राष्ट्रादि विविध विषयों पर चर्चा कर रहे थे । कृपाशङ्कर जी ने दक्षिणभारत का भोजन इडली, दोसादि बनाया । वे बड़े चाव से गर्म-गर्म इडली आदि स्वामी जी को खवाना चाहते थे । निर्मल को उन्होंने एक बार भेजा । निर्मल ने खिड़की से झाँककर सूचना दी । उन्होंने कहा- 'अभी नहीं कुछ देर बाद ।' स्वामी जी पुनः बात करने में मस्त हो गये । कृपाशङ्कर ने पुनः निर्मल को भेजा । उसे खिड़की से देखते ही स्वामी जी अति वेगपूर्वक उठे, उन्होंने किवाड़ खोला । ध्रुव को आज्ञा दी लालटेन लाओ । निर्मल को पटक दिया । उसकी कमर में रस्सी बाँध दी । कंकड़ीली-पथरीली भूमिपर उसे घसीटने लगे। ध्रुव के मित्रवत्-शिष्यवत् सेवक की दुर्दशा हो रही थी । मन-ही-मन ध्रुव निर्मल का मङ्गल मना रहे थे । स्वामी कहते, इधर से लालटेन दिखाओ। ध्रुव डरे । स्वामीजी थक गये हैं । निर्मल युवक है । कहीं उठकर उसने इन्हें पीट दिया तो क्या होगा ? अथवा इन्होंने मुझे निर्मल को घसीटने या पीटने की आज्ञा दी तो मैं क्या करूँगा ? स्वामी जी रूठकर कमरे में चले गए । ध्रुव ने निर्मल को बन्धनमुक्त किया । शरीर को पोछा । सान्त्वना दी और कृपाशङ्कर जी को भेजने के लिए कहा- झटपट लालटेन लेकर स्वामीजी के कमरे में आये । कृपाशङ्कर ने स्वामी जी को अनुनय विनय करके मनाया और भोजन कराया ।

दूसरे दिन निर्मल कहीं भाग गये । स्वामी जी डरे, कि कहीं आत्महत्या न कर ले । ध्रुव को ढूंढने के लिए भेजा । बदरीनाथ के बस मार्ग में कई किलोमीटर दूर जाकर निर्मल मिले । ध्रुव उन्हें मोक्षाश्रम ले आये ।

❋

१९. गोपेश्वर की मनोव्यथा

गोपेश्वर पूजन जी गृहस्थ आश्रम में अलीगढ़ विश्वविद्यालय में कुछ समय अर्थशास्त्र के अध्यापक थे । पुनः स्काउट कमिशनर पद से अवकाश प्राप्त कर नैमिषारण्य में अकेले ही वानप्रस्थ हुए । बड़े ही मिलनसार थे । उन्हें पता चला ध्रुव ऋषिकेश में है । वे भी दो चार दिन के लिए मिलने आ गये ।

स्वामी जी ने कहा– 'ध्रुव देखो एक अवधूत कैसे स्नान करता है ? मैं स्नान करता हूँ । तुम सावधान होकर देखो ।'

तपोवन के एक झरने का जल सरोवर में आता था । उसी के जल से नीचे बैठकर स्वामी जी स्नान करने लगे । गोपेश्वर पूजन छत पर घूम रहे थे । उन्होंने यह दृश्य देखा । उनसे रहा नहीं गया । स्नेह वश उन्होंने ऊपर से दो-तीन बार कहा– 'अरे ध्रुव जी ! ध्रुवजी ! ध्रुवजी!' ध्रुवजी समझ गये, कोई अमङ्गल घटना अब घटे बिना नहीं रह सकती । स्वामी जी ने तिरछी दृष्टि से ध्रुव की ओर देखा । ध्रुव पूर्ववत् अडिग थे। न तो उन्होंने गोपेश्वर पूजन की ओर निहारा, न उनसे बोले । फिर क्या था । स्वामीजी ने गोपेश्वर पूजन को डाँटना प्रारम्भ किया । लगभग आधे घण्टे तक यह काण्ड चला । स्वामी जी बोलते जा रहे थे– 'तुम स्काउट कमिशनर रहे हो । अनुशासन क्या चीज है, नहीं जानते ? यह मेरी सेवा में नियुक्त था । फिर कैसे साहस हुआ कि तुमने इसे टोक दिया ।'

गोपेश्वर जी काँपते हुए वहीं खड़े रहे । स्वामी जी गाली देते-देते थक गये । स्नान किया । कमरे में पहुँचे । गोपेश्वर जी ने ध्रुवजी से कहा– 'हम तो एक दिन भी ऐसे भयङ्कर की सेवा में जीवित नहीं रह सकते । तुम कहाँ सबके लाड़ले प्यारे और ये कहाँ दुर्वासा-सरीखे क्रोधावतार । गुरुदेव भगवान् को क्या सूझा कि इनकी सेवा में तुम्हें

पटक दिया ? भगवान् से प्रार्थना है कि तुम कल कुशल इनकी सेवा से शीघ्र ही मुक्त हो सको । हम स्काउट कमिशनर, सब प्रकार से अनुशासित कुशल और आयु में भी इनसे कम नहीं, फिर मेरी यह दशा छोटी-सी बात में कर दी तो तुम कैसे इस देवता का निर्वाह करते हो ?' ऐसा कहकर गोपेश्वर जी बच्चों के समान ध्रुव जी को हृदय से लगाकर फूट-फूट कर रोने लग गये ।

❀

२०. आत्मनन्द-स्वभाव

स्वामी जी कहा करते- 'आइ एम द बर्निंग फायर' मैं जलती हुई आग हूँ । एक दिन सरोवर के नीचे दूब के मैदान में ध्रुव ने झाड़ू देना प्रारम्भ किया । स्वामी जी ने ऊपर से देख लिया । वे कहने लगे- 'ऐसे नहीं, अरे ! ऐसे नहीं, हाँ ऐसे, अरे सुनते हो या नहीं ? ऐसे नहीं ! अरे ! उधर से नहीं, इधर से, सुनते हो कि नहीं ? अरे ! तुम कौन हो झाड़ू भी नहीं देना जानते ?' पाँच मिनट में ही ध्रुव जी को तङ्ग कर दिया । ध्रुव जी ने झाड़ू नीचे रखकर हाथ जोड़कर कहा- 'आप मेरे धैर्य की परीक्षा ले रहे हों तब तो ठीक है । कदाचित् आप इस स्थान को स्वच्छ देखना चाहते हैं, तो मेरी प्रार्थना पर थोड़ी देर कमरे में जाकर पुनः देखिए ।' स्वामी जी ने कहा- 'हाँ प्रेमी ?' और वे कमरे में चले गये । वे अपने से छोटों को 'प्रेमी' कहकर सम्बोधित करते थे । ध्रुव जी झाड़ू देने पर्ण कुटी बनाने, चबूतरा बनाने, कुञ्ज बनाने, गुफा बनाने, मार्ग बनाने आदि में कुशल थे । १५ मिनट में स्वामी जी ने कमरे से बाहर आकर देखा तो पूरे मैदान को अति स्वच्छ देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए ।

एक दिन किसी प्रसङ्ग में स्वामी जी ने ध्रुव से कहा- मैंने सुना है तुम मैथिल हो । सुनो- 'मैं भूमिहार हूँ । तुम्हारे पूर्वजों को दो रुपये देकर महीने भर अनुष्ठान हमारे पूर्वजों ने कराया है ।' ध्रुव जी यह

असम्भावित सन्देश सुनकर चौंक गये । धीरे से बोले– 'मैंने आपको भूमिहार और स्वयं को कुछ और मानकर आप के पास नैमिषारण्य में आना प्रारम्भ नहीं किया । यहाँ प्रान्त आदि का कोई पक्षपात नहीं है । आप सन्त हैं, विद्वान् हैं । बस, इस दृष्टि से आपके समीप हूँ । कदाचित् मैं आपको भूमिहार और स्वयं को उच्च कुलोत्पन्न राजपण्डित का पुत्र ब्राह्मण मानकर देखूँ, तब तो आपके समीप रहना भी पसन्द न करूँ ।' युक्तियुक्त उत्तर सुनकर स्वामी जी गम्भीर हो गये । उसके बाद उन्होंने अपना उग्ररूप अन्तर्हित कर लिया ।

स्वामी जी सन्त–स्वभाव के सन्त थे । व्यवहार से विमुखता ही व्यावहारिक धरातल पर उन्हें दुर्वासा सिद्ध करती थी । व्यावहारिक धरातल पर कुछ समय कार्य करने पर उनका आवेश स्वतः शान्त हो सकता है, इस बात को ध्रुव जी जानते थे ।

स्वामी जी प्रातः ३ से ६ बजे तक ध्यानावस्था में रहते । ६ से ७ तक वाल्मीकीय रामायण, भागवत आदि आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन करते । ७ के बाद किवाड़ खोलते, कुछ देर समाचार पत्र पढ़ते । १०/१५ मिनट ध्रुव जी से बात करते । पुनः स्नानादि से निवृत्त हो, भिक्षा पाकर विश्राम करते । कभी ध्रुव को साथ लेकर दर्शन महाविद्यलय के संस्थापक स्वामी राघवाचार्य के पास जाते । कभी ध्रुव को साथ लेकर हिमालय में वद्रीनाथ की ओर घूमने चले जाते ।

ध्रुव जी रात्रि में अकेले रहते । दिन में भिक्षा के बाद चुपके से अकेले पहाड़ी से एक मार्ग ढूँढकर शिवानन्द आश्रम के समीप पीछे जङ्गल में एक बिल्व वृक्ष के नीचे चबूतरे के ऊपर चार फिट के मन्दिर में प्रतिष्ठित दत्तात्रेय की मूर्ति के समीप एक डेढ़ घण्टे बैठे रहते । चत्वर के नीचे गुफा को देखकर ऐसा लगता था कि किसी दत्तात्रेय के भक्त

सन्त ने गुफा और मन्दिर का निर्माण किया होगा । ध्रुव जी के इस गुप्त कार्यक्रम की सूचना किसी को नहीं थी ।

श्रीशिवानन्द और दर्शन महाविद्यालय के बीच नैमिषारण्य की एक शाखा का नाम रामाश्रय था । श्रीस्वामी शङ्करानन्द जी ने उसे सौंपा था, वहाँ वे स्वयं निवास करते थे । वे प्रयागराज के वैश्यकुल के सौम्य सन्त थे । सूर्य चिकित्सा और होम्योपैथिक के प्रतिष्ठित यशस्वी चिकित्सक थे । वहाँ का पुस्तकालय भी प्रसिद्ध था । स्वामी रामतीर्थ जी के साहित्य, अवधूत गीता और योगवाशिष्ठ पुस्तकालय से लाकर ध्रुव जी सेवा, शयनादि के अतिरिक्त समय में अध्ययन करते ।

❀

२१. विचित्र-उपदेश

एक दिन स्वामी जी ध्यान और आर्षग्रन्थावलोकन सम्पन्न कर, समाचार पत्र पढ़ रहे थे । समय पर ध्रुव उनके पास पहुँचे । कमरे में घुसते ही स्वामीजी ने कहा– 'तुम यहीं खड़े रहो । आज तुम्हें मारे विना, फाँसी की सजा दिये बिना नहीं रहूँगा । तुम देशद्रोही हो । गद्दार हो ।' लगभग आधे घण्टे तक स्वामी जी अवाच्य वचन बोलते रहे । जब थक-से गये तब ध्रुव जी ने मुस्कुराते हुए कहा– 'भगवन् ! मुझे यह नहीं पता चला कि मुझसे आपके प्रति क्या अपराध बना है ? कल रात में आप मुझसे परम सन्तुष्ट थे । आज प्रातःकाल समय पर समुपस्थित हुआ ही, बीच में ऐसी कौन-सी घटना घट गई कि आपको मेरे कारण क्लेश हुआ और कुपित होना पड़ा ?'

स्वामी जी ने युक्तियुक्त बातों को सुनकर कहा– 'हाँ प्रेमी । यह तो मैंने तुमसे बताया ही नहीं कि भूल तुमसे क्या हुई । सुनो ! इस समाचार पत्र में एक नेता का वक्तव्य छपा है । सुनो– इन पङ्क्तियों का

हिन्दी में यह अनुवाद है । इस नेता ने क्या देशद्रोही – जैसा वक्तव्य नहीं दिया है ?'

ध्रुवजीने धीरे से कहा– निःसन्देह, इसने ऐसा वक्तव्य देकर देशद्रोह का कार्य किया है । परन्तु मैं तो वह नेता नहीं हूँ ।' बस क्या था ? स्वामी जी का शरीर काँपने लगा । वे सोलह साल के युवक की तरह तख्त पर हाथ आदि चलाने लगे, और ध्रुवजी से कहा– 'अब तो मैं तुम्हें मारे बिना नहीं रहूँगा । राम–राम, तुम इतने संकीर्ण मनोवृत्ति के हो ! सुनो– **तुम भारत हो, तुम भारत हो ! जब तक एक भी अपराधी भारत में है, तब तक तुम स्वयं को दण्ड और फाँसी का अधिकारी समझो । क्या तुम स्वयं को हाड़मांस का शरीर मात्र समझते हो ?'**

ध्रुव जी ने नतमस्तक होकर कहा– 'आपने मुझे दिव्यज्ञान दिया है । आपके इस अनुग्रहपूर्ण उपदेश के कारण मैं यावज्जीवन आपका कृतज्ञ रहूँगा ।' ध्रुव के वचन सुनकर स्वामी जी परम प्रसन्न हुए । हाँ प्रेमी ! मैंने जैसा बताया, तुम स्वयं को वैसा ही समझो । स्नेहावेश में स्वामी जी ने कहा– 'पण्डित जी समझे कि नहीं ?'

ध्रुवजी ने मन–ही–मन सोचा– ये व्यावहारिक धरातल पर काम करनेवाले सन्त नहीं हैं । ये भावराज्य में रमे रहने वाले हैं । इनकी किसी बात पर रुष्ट होना सर्वथा अनुचित है ।

स्वामी जी मेहर बाबा, रामदास बाबा के यहाँ से प्रकाशित इंग्लिश पत्रिकाओं को पढ़ते और ध्रुव से कहते– 'मेहर बाबा जब बोलेंगे तब संसार का ३/४ भाग नष्ट हो जायेगा । मेहर बाबा की तरह तुम तेजस्वी बनोगे ? या जन सामान्य की तरह ही जीवन–यापन करोगे ?' एक दिन बोले– 'मेहर बाबा ने मौन खोलने की अवधि बढ़ा दी है ।' स्वामी आत्मानन्द जी का जीवन सीधा सादा था । कुटिलता और दम्भ

न होने से बाहर से वे उग्र परन्तु स्वभावतः सौम्य थे । ध्रुवजी ने उनके स्वभाव का अध्ययन किया हर काम समय पर हो और व्यवस्थित ढंग से इस आग्रह की पूर्त्ति हो जाने से उन्होंने अपना सौम्य रूप प्रकट किया ।

❀

२२. ज्ञानदान की इच्छा

एक दिन आत्मानन्द जी ने कहा– 'मैं शौनक से प्रेम करता हूँ । वह व्यवहारकुशल और नीतिनिपुण है । परन्तु तुम भोलेभाले हो । साधु प्रवृत्ति के कुलीन पण्डित घराने के ब्राह्मण हो । तुम्हारी साधुता और सेवा को देखकर मेरा मन तुम पर लोट-पोट हो गया है । मैं तुम्हें दुर्लभ बोध जो मेरे गुरुदेव ने प्रयाग में दिया था, देना चाहता हूँ । शरीर का क्या भरोसा है ? ज्ञान-परम्परा चलती रहे, ऐसी भावना है । मैंने एक अनधिकारी को त्रिवेणी सङ्गम में उस दुर्लभ ज्ञान का उपदेश अनुग्रहवश कर दिया, परन्तु वह विषयी और उन्मत हो गया । तुम तो अत्युत्तम अधिकारी हो । परन्तु सङ्कोच यह है कि तुम्हारे गुरुजी को मैं राम तथा स्वयं को लक्ष्मण मानता हूँ । मैं तुम पर अपना नहीं, उन्हीं का अधिकार मानता हूँ । अवश्य ही उन्होंने आज तक किसी को तत्त्वज्ञान का उपदेश नहीं किया है । वे कर्मयोग की परम्परा चलाना चाहते हैं । अब तुम जैसा उपयुक्त समझो । जो धर्मदृष्टि से अनुचित न हो, वही तुम मुझसे कहो । ध्रुव जी ने सङ्कोचपूर्वक किन्तु सत्य-सत्य सङ्केत में बता दिया कि दिल्ली में भगवान् सूर्यदेव के अनुग्रह से मुझे ब्रह्मात्मतत्त्व के एकत्व का विज्ञान हो चुका है । सुनिये–

"एक बार फर्रुखाबाद में मियाँगंज के पास वैकुण्ठ आश्रम के समीप गङ्गातट पर नैमिषारण्य का उत्सव था । श्रीगुरुदेव को सुलाकर मैं रात्रि में अकेले ही गङ्गा तट पर चला जाता । मन में अद्भुत जिज्ञासा

हुई कि सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा प्रत्यगात्मा है तथा प्रत्यगात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप ही है । यह तथ्य भुवनभास्कर की कृपा से उपदेश काल में ही हृदयङ्गम हो गया । परन्तु यह जगत् अद्वयब्रह्मात्मतत्त्व में द्वैत का आधान किये बिना किस प्रकार परिलक्षित हो रहा है ? इस उत्कण्ठा ने मुझे दो रात्रि तक बेसुध बना दिया । तीसरी रात्रि में ऐसा लगा कि इस रहस्य का विज्ञान हृदयङ्गम हुए बिना जीवन निरर्थक है । दिव्यवाणी सुनाई दी– 'मरु में जल तुल्य तुझ में जगत् प्रतिष्ठित और परिलक्षित है । बोध सुस्थिर हुआ । निष्ठा परिपक्व हुंई ।' तत्काल प्रश्न उठा वह बोध देने वाले महर्षि कौन हैं ? उत्तर मिला– **'वशिष्ठ'** । मेरा हृदय आनन्दविभोर हो गया । वाणी कम्पित हो उठी । गला अवरुद्ध हो गया ।''

स्वामी आत्मानन्द जी ध्रुव के सत्यनिष्ठ वाणी को सुनकर आनन्द विभोर हो गये । उन्होंने कहा– 'मैं पहले भी अपना सखा ही तुम्हें मानता था । तभी तो अपने मित्र स्वामी जी के शिष्य स्वामी शिवानन्दसरस्वती को और तुमको साथ बिठाकर नैमिषारण्य के कुञ्ज में अध्यात्म की चर्चा करता था । परन्तु आज तो सब रहस्य विदित हो गया । अब मेरी एक जिज्ञासा का उत्तर दो – ''तुम तो साक्षात् सूर्य और वशिष्ठ के शिष्य हो, फिर प्राकृत पुरुष के तुल्य इस नीचे स्तर के वातावरण में क्यों अपने को छिपाये रखते हो ?'

ध्रुव जी ने कहा– ''मेरे इष्ट देव भगवान् श्रीकृष्ण की मुझे ऐसी ही प्रेरणा है । मेरे द्वारा श्रीकृष्ण इस जगत् का कोई और, कई अद्भुत कार्य कराना चाहते हैं । इसके लिए कई व्यक्तियों से कई प्रकार की शिक्षा अपेक्षित है । वह शिक्षा तत्त्वज्ञ या सिद्ध बनकर नहीं ग्रहण की जा सकती ।''

श्रीस्वामीजी ने कहा– 'ये सब गुप्त बातें यहीं तक सीमित रहें। अब तो मेरे हृदय में तुम्हारी रक्षा की चिन्ता हो गई। कहीं तुम तत्त्वज्ञ हो, यह बात यहाँ फैल गई तो, शौनकादि तुम से लाग–डांट रखते हैं, वे अनिष्ट किये बिना नहीं रहेंगे।

'सुनो, मैं मालवीय जी का कृपापात्र हूँ। मैं भारत को स्वतन्त्र देखना चाहता था अब अखण्ड और आध्यात्मिक धरातल पर भी सम्पन्न देखना चाहता हूँ। परन्तु मुझ में वह तपोबल नहीं है, कि अपने लक्ष्य को अपने बल पर साकार कर सकूँ या अपनी आँखों से साकार देख सकूँ।'

'मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ की मेरे स्वप्नों को साकार करो और अपने लक्ष्य को पूर्ण करो।'

❋

२३. शौनक का आक्रोश

ज्येष्ठ में प्रतिवर्ष १५ दिनों तक मोक्षाश्रम में सत्सङ्ग का आयोजन होता। उस वर्ष भी पूज्य गुरुदेव और उनके परिकर पधारे। कानपुर आदि के भक्त, शिष्य और सत्संगी भी आने लगे।

शौनक के मन में चटपटी थी कि स्वामी आत्मानन्द जी को मैं फुसला लेता हूँ। परन्तु ध्रुव किसी को फुसलाना पसन्द नहीं करता। ऐसी स्थिति में दोनों की पटरी खाती है, या नहीं ?

ध्रुव स्वामी जी से कुछ सीख रहा है या नहीं ? एकान्त में शौनक जी पूज्य स्वामी जी से मिले। वार्तालाप के प्रसङ्ग में स्वामी गम्भीर और गद्‌गद्‌वाणी से बोले 'ध्रुव तो तत्त्वज्ञ है। उसे तुम सामान्य व्यक्ति मत समझो।' बस क्या था, शौनक बेचैन हो गये – अरे मैं यों ही रह गया और ध्रुव तत्त्वज्ञ हो गया, कहते हुए गुरुदेव भगवान् के पास दौड़े आये।

गुरुदेव को सारी बातें सुना दी । गुरुदेव ने मनोविज्ञान का प्रयोग करते हुए कहा– चिन्ता मत करो । दिल्ली के राजसी वातावरण में पला ध्रुव अभी कहाँ तत्त्वज्ञ हो सकेगा ? वह घोर रजोगुणी है । वर्षों हमारी सेवा में रहेगा फिर सत्त्वगुणी होगा । फिर कहीं जीवन में गुणातीत हो सकेगा, या नहीं, कहा नहीं जा सकता । स्वामीजी ने उसकी सेवा से प्रसन्न हो यों ही कह दिया होगा ।' शौनक जी ने कहा– 'आप मुझे सत्य सत्य बताइये । कहीं मनोविज्ञान का प्रयोग तो नहीं कर रहे हैं ? यदि सचमुच में ध्रुव को उन्होंने तत्त्वज्ञान करा दिया है, तो आप मुझे अभी तत्त्वज्ञ बना दीजिए ।'

उन्होंने गम्भीर स्वर में कहा– 'तुम मेरी बात पर विश्वास करो ।'

शौनकजी दुविधा में पड़ गये । स्वामी जी को फुसला लेना और बात है । सेवा से द्रवित कर देना और बात है । ध्रुव ने उन्हें सेवा से द्रवित कर अपना प्रशंसक बना दिया है । इतना ही नहीं, अपना मित्र बना लिया है । यह कार्य तो बहुत ही अनुचित हुआ । स्वामी जी झूठ नहीं बोल सकते । ध्रुव के सम्बन्ध में जब दोनों दो ढंग की बातें करते हैं, तब ध्रुव से पूछ ही लूँ ।

ध्रुव मोक्षाश्रम में सत्सङ्गभवन की छत पर बैठे थे । बड़े ताव और आवेश में शौनकजी ने व्यङ्ग भरी भाषा में पूछा– 'अरे, अब क्या कहना ? तुम तो तत्त्वज्ञ हो गये हो । हम तो पन्ना ही पलटते रहे और तुम यों ही तत्त्वज्ञ हो गये । अच्छा सत्य–सत्य बताओ– क्या तुम जीवन्मुक्त–तत्त्वज्ञ हो ?'

ध्रुव जी ने कहा– 'बात क्या हुई' ?

शौनकजी ने सारी बातें बता दी ।

ध्रुव जी ने कहा– 'आप गुरुदेव भगवान् की बातों को ही प्रमाण मानिए, इसी में आपका हित है ।'

शौनक जी ने कहा- 'मेरे हित की बात छोड़ो । तुम दो टूक बताओ कि तत्त्वज्ञ हो या नहीं ?'

ध्रुव जी ने महर्षि-याज्ञवल्क्य की शैली में कहा- 'मैं ब्रह्मनिष्ठ तत्त्वज्ञों को नमस्कार करता हूँ । मैं तो सन्तसेवा और देशसेवा की कामना करता हूँ ।'

ध्रुव की अटपटी बातों से शौनक जी और भ्रमित हो गये । मन-ही-मन सोचा- 'ध्रुव घोर रजोगुणी तो नहीं लगता । इसकी निःस्पृहता, सुशीलता, विरक्तता आदि किसी से छिपी नहीं । गुरुदेव भगवान् तो लोकसंग्रहवाले सन्त हैं । ये अवसर के अनुसार भी बातें कह देते हैं । हो, न हो ध्रुव तत्त्वज्ञ हो गया हो । यह अपने मुँह से यह नहीं कहता कि मैं तत्त्वज्ञ नहीं हूँ ।

बेचैन होकर शौनक जी- 'आत्मानन्द जी के पास गये । उनको उन्होंने सब कुछ बता दिया । आत्मानन्द जी गम्भीर हो गये ।' उन्होंने कहा- 'मैं तुम्हें कर्मयोगी अर्जुन और ध्रुव को निवृत्तिपारायण उद्धव के रूप से देखता हूँ ।'

शौनकजी की बेचैनी बढ़ती गई । विवेकानन्द जी तक बात पहुँची । वे भी बेचैन हो गये । आत्मानन्द जी ने ध्रुव से कहा- 'स्वामी जी ने दक्षतापूर्वक शौनक को समझा दिया । कहीं वे नीतिनिपुणता का परिचय न देकर तुम्हें तत्त्वज्ञ बता देते, तो तुम्हारे लिए बहुत सङ्कट की स्थिति उत्पन्न हो जाती ।'

❋

२४. बदरीनाथ यात्रा

ध्रुव कभी-कभी शेषधारा जो कि गङ्गातट के ऊपर और मोक्षाश्रम से नीचे थी, वहीं स्नान करने तथा पीने के लिए पानी लाने चले जाते । वहाँ रहनेवाले वैष्णव सन्त ध्रुव से बड़ा स्नेह करते थे ।

३. नैमिषारण्यवास

एक दिन ध्रुव ने आत्मनन्द जी से कहा– ''मैं गङ्गास्नान करने जा रहा हूँ ।''

गङ्गातट पर पहुँचते ही गङ्गा के दर्शन से ध्रुव परम प्रमुदित हुए । लंगोटी पहनकर स्नान किया । कटि वस्त्र पहनकर मोक्षाश्रम की ओर जाने के लिए उद्यत हुए । परन्तु हृदय ने उत्तराखण्ड की यात्रा करने के लिए शरीर को विवश कर दिया । स्वामी आत्मानन्द जी आदि को हृदय से नमस्कार कर लक्ष्मण झूला तक पहुँचे । गङ्गा पार कर पैदल मार्ग से बदरीनाथ की ओर चल पड़े । बस मार्ग बन जाने से पैदल मार्ग भङ्ग हो गया था । यात्रियों को सुविधा देनेवाली चट्टियाँ भी नष्ट हो गई थीं । कहीं–कहीं दोनों मार्ग एक हो जाते थे । देवप्रयाग के सन्निकट पहुँचने पर मन में भाव आया । भूखे–प्यासे वन में भटकते रहने से क्या होगा ? हिमालय सिद्धभूमि है जब तक सिद्ध सन्त का दर्शन नहीं होगा तब तक यात्रा की सफलता कैसे मानी जाएगी ? मन अन्तर्मुख हो गया। अवधूत गीता का प्रियश्लोक **'निर्मूलमूलरहितो हि सदोदितोऽहं, निर्धूमधूमरहितो हि सदोदितोऽहम् । निर्दीपदीपरहितोऽहि सदोदितोऽहं, ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ।।'** बड़े चाव और भाव से गाने लगे । गाते–गाते मन अत्यन्त आह्लादपूर्ण और अन्तर्मुख हो गया । शरीर की स्थिति विचित्र हो गयी । सामने से षोडशवर्षीय दिव्य महापुरुष आते हुए दर्शन देने लगे, वे आत्मभाव से ध्रुव को कुछ नतमस्तक होकर मुस्कुराकर अभिनन्दन–से करते हुए परिलक्षित हुए । ध्रुव ने उनका अभिनन्दन किया उन्हें नमस्कार किया । उन्होंने प्रणवोच्चार से ध्रुव के हृदय को झकझोर दिया । देखते–देखते वे अदृश्य हो गये । ध्रुव उन्मत्त–से हो गये । हिमालय के उच्च शिखर से गङ्गा की धारा की ओर नीचे वेग पूर्वक विकट पथ से चलने लगे । गङ्गातट पर पहुँचकर उन्हें एक चाकू दिखा । प्रणवोच्चारण पूर्वक उससे शिखा उच्छिन्नकर

सद्योजात होकर शरीर गङ्गा में विसर्जित किया । गङ्गा के वेग ने उन्हें किनारे कर दिया । गङ्गा तट पर एक पर्वत की गुम्फा में लगभग तीन घंटे तक आनन्द निमग्न बैठे रहे । पुनः पत्ते की लंगोटी लगाकर पुलिया के संहारे गङ्गा के उस पार आ गये । एक ब्राह्मण युवक ने भवन के ऊपरी कक्ष से देखा । वे द्रुतगति से नीचे उतरे । उन्होंने आरती उतारी । लंगोटी के लिए नया वस्त्र दिया । खादी भण्डार का एक लम्बा सा अङ्गोछा पहनाया । अपने हाथ से रोटी सब्जी बनाकर भिक्षा पवाई । ध्रुव एक दिन बदरीनाथ की ओर बड़े ही वेग से जा रहे थे । उन्हें भी आश्चर्य होता । कभी-कभी धरती पर पाँव पड़ता । लगता धरती से चार अंगुल ऊपर चले जा रहे हैं । मार्ग में पथ परिष्कार में नियुक्त मजदूर लोग आश्चर्यपूर्वक प्रणाम करने लगे ।

दसवें दिन सायं श्रीबदरीनाथ मन्दिर में भगवान् बदरीनाथ का दर्शन लाभ किया । मन्दिर की परिक्रमा के समय स्वर्गाश्रम गङ्गा टीला में रहनेवाले अवधूत मस्तराम जी का दर्शन हुआ, अभिवादन किया ।

❋

२५. श्रीमस्तराम चरित्र

एक बार मस्तराम जी ने ऋषिकेश में मोक्षाश्रम पहुँचकर भिक्षा की भावना व्यक्त की । श्री आत्मानन्द जी ने उन्हें बड़े भाव से भिक्षा पवाई । एक बार स्वामी जी ध्रुव को लेकर स्वर्गाश्रम गङ्गा तट पर पधारे और बाबा मस्तराम जी का दर्शन कर प्रमुदित हुए । बाबा ध्रुव को भूल गये थे । थोड़ी देर की बातचीत ने दोनों को मित्र बना दिया । परन्तु शीलवश ध्रुवजी ने उन्हें श्रद्धेय सखा माना । मस्तराम जी तप्त कुण्ड के आस-पास ही रात्रि में मात्र एक कटिवस्त्र पहने रहते । ध्रुव जी भी गङ्गा तट पर इधर-उधर मात्र एक अंगोछे में रहते । ध्रुव जी ने अपने लिए एकान्त स्थान ढूंढना प्रारम्भ किया । बिरला धर्मशाला का ऊपरी भाग

हिमपात से ध्वस्त हो गया था । नीचे के कमरों को बन्द कर चौकीदार चाबी अपने घर रखने लगा था । तीन चार रात्रि तक सीढ़ी के नीचे वाले एक संकीर्ण स्थान में रात्रि भर ध्रुव जी बैठकर काँपते । प्रतिक्षण मृत्यु का योग शीत के कारण परिलक्षित होता । एक दिन ध्रुव जी ने रसोईघर को वहीं की टीन आदि सामग्रियों से रहने योग्य बना दिया, दैवयोग से रसोइघर की छत नहीं टूटी थी । खण्डहर से लंबा टीन उठाकर ध्रुव जी ने उसे किवाड़ का रूप देकर वहाँ रहना प्रारम्भ किया । गङ्गातट पर घूमते समय एक सीमेंट की नयी छोटी बोरी मिल गई । उसको परिष्कृत कर साथ ले आये । एक डेढ़ फुट चौड़ी काष्ठ की बनी हुई जालीदार सामग्री मिल गई । उसे भी जल से परिष्कृत कर कमरे में रख दी । रात को उस बोरी को बिछाकर उसपर बैठकर रात बिताने में कुछ पूर्वापेक्षा सर्दी कम लगी ।

मस्तराम जी ने ध्रुव जी को बताया कि क्या ही अच्छा हो कि पाँच आवृत्ति भगवद्गीता आप एक आसन से बैठकर भगवान् बदरीनाथ को सुनाओ । ध्रुव जी ने आज्ञा स्वीकार कर गीता पाठ करना प्रारम्भ किया और २१६ पाठ बदरीनाथ को सुनाया ।

पाठ करते-करते लगभग बारह बज जाता । तब ध्रुवजी अन्न क्षेत्रों में जाते । तीन दिन से अधिक भिक्षा देने का क्षेत्रों में विधान नहीं था । बिलम्ब से पहुँचना भी अनिवार्य था । तीन-चार क्षेत्रों में कभी तीन और कभी चार पीपल पत्ते जैसी चौड़ी और पतली रोटी पाकर ही ध्रुवजी चौबीस घण्टे व्यतीत करते । फिर भी शरीर स्थूल हो गया ।

मस्तराम जी के भक्तलोग बस से स्वर्गाश्रम ऋषीकेश से बदरीनाथ पहुँच चुके थे । गङ्गा, यमुना दो विधवा माताएं थीं और हरि आदि एक-दो भक्त थे । दो नेपाल की बाल विधवा माताएँ भी बाबा की बहुत घनिष्ट बन गयी थीं । बद्रीनाथ ट्रष्ट की ओर से बाबा को एक थाल

चावल दाल सब्जी का प्रसाद मिल जाता । भक्त लोग दूध आदि पिला देते ।

बदरीनाथ ट्रष्ट के प्रबन्धक श्रीयमुना प्रसाद त्रिपाठी जी ने ध्रुव जी को ट्रस्ट की ओर से रहने आदि की व्यवस्था का अनुरोध किया । ध्रुव जी ने मना कर दिया । शनैः-शनैः दो महीने व्यतीत हुए । भाद्र महीना प्रारम्भ हुआ । सर्दी अधिक पड़ने लग गयी । श्रीमस्तराम जी के सभी भक्त अपने-अपने स्थान को लौट आये । एक दिन बाबा को जलपान आदि में असुविधा के कारण बदरीनाथ पर क्रोध आया । उन्होंने **'नासादिशून्यवदनं खलु कीर्त्तिमन्तं'** यह श्लोक चिढ़कर बनाकर भगवान् को सुना दिया । श्लोक का आशय था- आप के नाक, कान आदि अवयव तो स्पष्ट दिखते नहीं, लोक में नाक, कान-विहीन व्यक्ति तिरस्कृत होता है, जबकि आप प्रतिष्ठित हैं । दशों दिशाओं में आपकी कीर्त्ति छाई हुई है । आप देखने में बिल्कुल काले हैं, परन्तु गौरवर्ण विश्वसुन्दर की छवि को भी आपकी सुन्दरता तिरस्कृत करती है, आप लक्ष्मी विहीन होने पर भी अपने भक्तों को श्रीसम्पन्न रखते हैं ।' बालसुलभ स्वभाव के कारण बाबा ने ध्रुव को पूरा श्लोक याद करा दिया और भाव भी बता दिया । रात्रि में स्वप्न में बदरीनाथ जी ने एक परमहंस के रूप में प्रकट होकर ध्रुव को बताया- 'मुझे उलाहना देने वाले उस बाबा से कह देना श्रुतियाँ **'मेरा अपाणिपादो जीवनो गृहीता'** (श्वेताश्वतरोपनिषत् ३.१९) आदि उक्तियों से यशोगान करती हैं । जब मुझे गन्ध के ग्रहण के लिए नासिका और शब्द के ग्रहण के लिए श्रोत्र की अपेक्षा ही नहीं, तब मेरे विग्रह में ये स्पष्ट परिलक्षित नहीं होते तो, यह मेरे रूप के अनुरूप ही है । न कि मेरे लिये निन्दनीय.... ।'

प्रातःकाल बदरीनाथ के मन्दिर में जब ध्रुव और मस्तराम बाबा का मिलन हुआ, तब ध्रुवजी ने बाबा को बदरीनाथ का सन्देश सुना

दिया। बाबा बड़े प्रसन्न हुए । उस दिन से बाबा की व्यवस्था भी ठीक-ठाक होने लगी ।

एक दिन बाबा ध्रुव जी को साथ ले उद्धवजी की पादुका का दर्शन करते हुए सुदूर पर्वतमाला तक पहुँच गये । पर्वतीय तुलसी तथा पुष्पराशि देखकर दोनों अति प्रमुदित हुए । नैसर्गिक बगीचे से ही नित्य प्रति माली लोग बदरीनाथ के लिए पुष्प चयन कर ले जाते । दोनों ने एक स्वाभाविक गुफा जैसा स्थान देखा । आस-पास के पाषाण खण्ड को इकट्ठा करके दो-तीन घंटे गुफा को सजाते रहे । फिर सूर्यास्त की आशङ्का से मन्दिर की ओर लौटने लगे । मस्तराम जी अपने कटिवस्त्र में सञ्चित पुष्प भरते गये । १०८ पद्मपुष्प लाकर दोनों ने बदरीनाथ की पूजा के लिए पुजारी को समर्पित किया ।

❀

२६. सिद्ध बाबा

एक दिन मस्तराम बाबा ने तप्त सरोवर के उद्गमस्थान की ओर स्वाभाविक गुफा में रहने वाले एक सिद्ध बाबा के दर्शन के लिए ध्रुव को प्रेरित किया । ध्रुव जी बाबा के पास पहुँचे । बाबा की प्रसिद्धि थी की वे पूरे वर्ष गुफा में रहते थे । भक्तलोग काजू आदि पर्याप्त मात्रा में रख जाते । उनके एक सेवक बदरीनाथ के पट बन्द होने पर नीचे चले जाते और पट खुलने पर बाबा की सेवा में आ जाते । ध्रुव जी गये । सेवक बाबा के लिए रोटी बनाने का उद्यम कर रहे थे । सेवक का व्यवहार शील तथा विद्यासम्पन्न साधक के समान नहीं था । ध्रुव जी को बाबा के सेवक का व्यवहार बुरा लगा । बाबा के समीप ध्रुवजी पहुँच गये । बाबा ने कहना प्रारम्भ किया- 'दुनिया पगली है । पत्थर की पूजा करती है और सचमुच के भगवान् मेरे पास नहीं आती है । भला पत्थर की पूजा से लोगों का उद्धार होगा ?'

ध्रुवजी ने कहा– 'उस दिन आप मन्दिर में गये । मन्दिर के पण्डित पुरोहितों ने उच्च आसन पर आपको बिठाया, आपने क्या पत्थर का दर्शन किया और पत्थर को उस दिन हाथ जोड़ा । यदि ५–६ दिन पूर्व बदरीनाथ भगवान् थे तो आज क्या हो गया कि वे पत्थर हो गए ? आपके दम्भ का भी अन्त है क्या ? जब तक आपने पण्डों का पोषण किया तब तक पण्डों ने भगवान् के समान आपको पुजवाया । आपने पण्डों की उपेक्षा कर दी तो पण्डों ने आपको पुजवाना बन्दकर दिया । इसमें बदरीनाथ का क्या अपराध ?'

बाबा और ध्रुव में पर्याप्त कहा सुनी हुई । ध्रुव जी नीचे आये । मन्दिर में मस्तराम बाबा जी से मिले ।

बाबा ने कहा– 'सिद्ध सन्त के दर्शन कर आये ?' ध्रुव ने पूरी राम–कहानी सुना दी ।

बाबा ने कहा– 'ब्रह्मचारी बाबा आपने भूल की । वे सिद्ध हैं । कुपित होकर शाप भी दे सकते हैं ।'

ध्रुवजी ने कहा– 'वे कपटी हैं । चीन के एजेण्ट लगते हैं । कुछ समय बाद इनका भण्डाफोड़ होगा । उस समय आप समझ पायेंगे कि वो सिद्ध हैं या और कोई ।'

बाबा ने कहा– 'हम तो आपको भोले–भाले समझते थे । परन्तु आज तो आप बड़े उग्र दिख रहे हैं ।'

ध्रुवजी ने कहा– 'करोड़ों हिन्दुके वर्षों से पूज्य शास्त्रसिद्ध युक्तियुक्त भगवान् के सहारे पुजकर फिर उन्हें गाली देने वाला सिद्ध कैसे हो सकता है ?'

कुछ समय बाद वे सिद्ध भारत के विरोध में विदेशी षड्यन्त्र को क्रियान्वित करने के कारण शासनतन्त्र के द्वारा दण्डित किये गये ।

❋

२७. विद्याभिरुचि

बदरीनाथ के लिए जो पार्सल सामग्रियाँ आतीं, उनमें नये एक-एक हाथ के लम्बे और तीन-तीन, चार-चार अङ्गुल चौड़े कागज भी होते । उन्हें मन्दिर के बाहर फैंक दिया जाता । उनको ध्रुव सङ्कलित कर बबूल के काँटे से नत्थी कर हाथों में लिए हुए थे ।

बाबाजी ने पूछा- इनका क्या होगा ?

ध्रुवजी ने कहा- 'कहीं कलम मिल गई तो, जो भाव मन में अध्यात्मसम्बन्धी उदित होगा । लिखते जायेंगे ।'

बाबा बड़े प्रमुदित हुए । उन्होंने अपने एक भक्त पण्डाजी से कहकर एक बालपेन मँगाकर ध्रुवजी को दे दी । गीता गुह्य नाम से मस्तरामजी ने गीता का सार ग्यारह श्लोकों में लिखा था । उसे वे **'बच्ची-सी गीता'** भी कहते थे । कभी वह कल्याण के मासिक अङ्क में प्रकाशित भी हुआ था । बाबा ने ध्रुवजी को ग्यारह श्लोकों को बता दिया । ध्रुवजी उन श्लोकों का भाव भी अपने शब्दों में कभी-कभी लिखते और बाबा को सुनाते । बाबा बड़े प्रमुदित होते । एक दिन बदरीनाथ की हिमवृष्टि पर बाबा ने श्लोक बनाया ।

सर्दी कुछ असह्य होने लगी । बाबा ने एक दिन ध्रुवजी से कहा- नीचे चलना चाहिए । परन्तु मेरा नियम है कि मैं अकेले ही पैदल चलता हूँ। मेरी भावना है कि आप पहले यहाँ से प्रस्थान करें । मेरी गुफा तो आप जानते ही हैं । उसके पास एक छोटी-सी गुफा गङ्गा तट पर और है । उसमें आप निवास करें । गीताभवन/स्वर्गाश्रम में गङ्गा-यमुना माताएँ रहती हैं । हरि भी स्वर्गाश्रम में ही रहता है । आप उनसे मिल लें । वे लोग आपको गुफा दिखा देंगे । कुछ दिनों बाद मैं भी आ जाऊँगा ।' नित्य का तीन महीने तक पन्द्रह घण्टे का सान्निध्य । ध्रुवजी

ने बाबा जी की बात मान ली । बाबा ध्रुव जी को ब्रह्मचारी कहते थे । बाबा के परिसर में ध्रुव जी को इसी नाम से जाना जाता था ।

❀

२८. अद्भुत तृष्णा

एक दिन मार्ग में ध्रुवजी को बहुत प्यास लगी थी । उन्हें उसी मार्ग से बदरीनाथ जाने के कारण पता था कि लगभग पाँच किलोमीटर उतरने के बाद झरना मिलेगा । परन्तु प्यास के कारण अब तब की हालत हो गयी । सहसा प्यास के आवेश में ध्रुव जी को कल-कल ध्वनि सुनाई दी । वे गङ्गा की ओर नीचे बीहड़ वनमार्ग से वेगपूर्वक उतरने लगे । कुछ दूर की यात्रा करने पर वह झाड़ी दिखी, जिसमें पानी का अनुमान था । बड़े वेग से ध्रुव जी उसमें घुस गये । घुसकर देखा तो एक बूँद भी जल नहीं था । आशा पर पानी फिर गया । शरीर पर ध्यान गया । कई जगह से रक्त गिर रहा था । काँटों के कुञ्ज में हठपूर्वक बैठ गये । लगभग तीन घण्टे बैठे रहे । उन्होंने मन को समझाया- 'आत्मा भूख-प्यास से अतीत है । अमर है । मन में अध्यास के कारण ही 'मैं भूखा, मैं प्यासा' इस प्रकार का भाव उदित होता है । मन प्रसन्न हुआ, ध्रुव जी ने देखा प्यासके वेग में काँटों की झाड़ी में घुस तो गया, परन्तु अब निकल पाना कठिन है । काँटों के झाड़ फिर एक हो चुके हैं । अब बल और वेगपूर्वक बाहर जाना अनुचित है । विवेकपूर्वक बाहर जाना ही युक्त है । उन्होंने झाड़ी से मोटा-सा मजबूत काष्ठ तोड़ा । उससे हरे भरे झाड़ों को हटाकर लगभग बीस मिनटों में बाहर निकलने योग्य मार्ग बन पाया । फिर मत्त गजेन्द्र की तरह ध्रुव जी शनैः-शनैः गन्तव्य की ओर चलने लगे अभीष्ट झरने तक पहुँचकर भी पानी न पीकर वहाँ लगभग सवा घण्टे (७५ मिनट) बैठे रहे । मन ने क्षमा माँग ली । अब आप चाहो तो पानी दो न चाहो तो पानी मत दो, मानो मन ने जब ऐसा

कहा, तब धीरे-धीरे जलपान कर मार्ग की ओर आगे बढ़े । जाते समय दस दिनों में दो बार भोजन और दो बार अल्पाहार मिल पाया था । लौटते समय भी चौदह दिनों में चार-पाँच बार ही अल्पाहार का योग सधा होगा । पद्रहवें दिन स्वर्गाश्रम पहुँचे । बाबा के परिकर से मिले । बदरीनाथ जाते समय एक चट्टी पर एक दिन श्रीलक्ष्मणदास अवधूत जो कि बहुत ही प्रतिष्ठित थे, उनसे परिचय हो गया था । वे ध्रुवजी को बहुत मानने लगे थे । ध्रुव जी उनसे भी मिले । उनका आश्रम सम्पन्न था । वे स्वयं उदार थे । परन्तु उनके आग्रह पर भी ध्रुवजी वहाँ न रुककर बाबा के निर्दिष्ट स्थान पर ही रुके । श्रीलक्ष्मणदास जी ने एकान्त में ध्रुव जी को मस्तराम बाबा से सावधान रहने को कहा । 'उनकी लोक वितृष्णा अब लोकवासना के रूप में प्रकट हो रही है ।' कुछ ऐसा कहा । परन्तु ध्रुव जी ने कहा- 'हमें तो मधुकर सरिस गुणग्राही होना है । हम तो रमते राम हैं । आज यहाँ कल वहाँ । जब तक यहाँ का दाना पानी है, तब तक यहाँ हैं ।

उसके बाद फिर आगे बढ़ना है । अवधूत जी ! मैं तीन महीने तक बाबा के सम्पर्क में रहा हूँ । सूत्र रूप में सब कुछ समझ गया हूँ । श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में सन्निहित अवधूतोपाख्यान के आधार पर मैंने तो यह शिक्षा ग्रहण की है कि किसी के जीवन में जो अंश शास्त्र के अनुरूप हो वह विधिमुख से ग्रहण करना चाहिए, जो अंश लोक-वेद के विरुद्ध हो, निषेधमुख से अर्थात् अकर्त्तव्य रूप से ग्रहण करना चाहिये । आपने मुझे सम्मान दिया मित्र के रूप में अपनाया और हितैषी रूप में समझाया । आपकी वाणी भी द्वेषादि से आच्छादित नहीं परिलक्षित होती है । अतएव मैं आपका कृतज्ञ हूँ ।

अवधूत जी ने कहा- मैं बाबा का प्रशंसक रहा हूँ, पूर्व त्यागमय जीवन से इस समय का जीवन सर्वथा भिन्न परिलक्षित होता है । इसलिए

मैंने एकान्त में समझाया वह भी आपके प्रति विचित्र आकर्षण के कारण आपके हित में, आप प्रबुद्ध हैं, मुझे प्रसन्नता है ।

❀

२९. मस्तराम-स्वभाव

बाबा दस दिन बाद अपने स्थान पर आये । उन दिनों इन्दिरा गाँधी भारत का शासन सम्हाल रही थी । सन्त सद्गृहस्थ सात नवम्बर १९६६ को गोवंश रक्षा के लिए दिल्ली में लालकिला से पार्लियामेन्ट तक पैदल चलकर भारत सरकार से गोरक्षा के लिए अनुरोध का अभियान चला रहे थे । मस्तराम बाबा पर सन्तों का दबाब पड़ने लगा । उनके भक्त लोग अधिक प्रबुद्ध नहीं थे । दो-चार माताएँ और एक दो युवक ही उनके भक्त थे । हाँ परमार्थ आदि में आनेवाले प्रबुद्ध यात्री उनका दर्शन अवश्य करते । गिने-चुने भक्तों को जब बाबा ने सन्तों के द्वारा गोरक्षार्थ विवश करने की बात कही, तब सब अधीर हो गये । सचमुच में बाबा बाल-स्वभाव के अभ्यासी थे । वे गङ्गा के मध्य टीले पर भी एक स्थल पर एक रात से अधिक नहीं रहते । कटोरी में दाइयाँ कुछ आहार लातीं और बालक की तरह नखरे करके खवातीं, चार ग्रास दस-पद्रह मिनटों में बाबा पाते । यह काण्ड दिन में कभी-कभी ६०/७० बार हो जाता । बाबा सायंकाल ध्रुवजी को बताते- देखो आज मैंने ८० बार भोजन किया । लंगोटी कहीं खिसक कर गिर पड़ती, बिना लंगोटी के ही रह लेते । या कटिवस्त्र को फाड़ लेते । बाबा ने इस प्रकार अपने को खिलौना और बाल-गोपाल बना लिया था । वे गोरक्षा राष्ट्र रक्षा आदि कार्यों में स्वयं को सम्मिलित कदापि नहीं कर सकते थे । ऐसा नहीं कि, उनसे आध्यात्मिक लाभ हर कोई ले सके । वे दिनभर दाइयों-माइयों प्रशंसकों से घिरे रहते थे । कोई इनसे आध्यात्मिक प्रश्न करता तो वे कह देते- 'न कोई मरेगा, न कोई बचेगा ।' पुनः हँसी खेल में लग

जाते । साधक ऊबकर चला जाता । वे ध्रुवजी से कहते- 'जब रात्रि हो जाती है । सब चले जाते हैं , तब तक उसे मेरी प्रतीक्षा करनी चाहिए थी । वह ऊबकर चला गया । ऐसे कोई ज्ञानी होता है क्या ?'

ध्रुव जी ने स्वयं को भाग्यशाली समझा । बदरीनाथ में बाबाके दो-चार परिकर ही हो पाये थे । भोजनकाण्ड भी दिन में दो-तीन बार ही हो पाता था । बारह-तेरह घण्टे ध्रुवजी को उनसे और उनको ध्रुवजी से बात करने का अवसर सध जाता । ध्रुवजी ने अपना कोई अनुभव उन्हें नहीं बताया । वे अपना कई संस्मरण ध्रुव जी को सुनाते । असल में वे ध्रुव को उत्तराधिकारी के रूप में अपनाना चाहते थे । इसके लिए उन्हें एकान्त में यह भी सङ्केत करना पड़ा कि आप दण्डी स्वामी के शिष्य हो, मैं भी हृदय से वर्णव्यवस्था मानता हूँ । भले ही मेरा खान-पान जाति-पात के आधार पर नहीं है । मैं मध्यमा तक काशी में पढ़ा हूँ । ज्योतिष का भी मैंने अभ्यास किया है । बंगला लिपि भी मैं जानता हूँ । वाराणसी से पूर्व की ओर ब्राह्मण कुल का ही मेरा शरीर है । मैं स्वामी करपात्री जी के त्याग और वैदुष्य से प्रभावित रहा हूँ । यदि वे रामराज्य बनाकर राजनीति में न आते तो मेरी दृष्टि में बहुत ही अच्छा होता । परन्तु उन्होंने लोक पर करुणा करके लोकसंग्रह की भावना से राष्ट्ररक्षा की दृष्टि से ही ऐसा किया । मैं काशी छोड़कर एक कमण्डलु मात्र हाथ में लेकर चला । वर्षा के दिन थे । सर्वत्र पानी उपलब्ध था । मैंने वह कमण्डलु भी गङ्गा में फेंका । तब से मैं बिना पात्र के ही रहता हूँ । लोग मेरी निन्दा भी करते हैं । गङ्गा में ही गुदा धोता है । पर मैं गङ्गा को माता मानता हूँ । बच्चे के मलमूत्र से माँ को परहेज नहीं ।

एक बार मैं प्रयाग पहुँचा । श्री प्रभुदत्त जी के यहाँ उत्सव था । मैं तो सबके लिए अनजान था । मात्र एक कटिवस्त्र पहनकर सो गया । प्रात:काल लोग चिल्लाने लगे । यह साधु नहीं चोर है । मेरी नींद

खुली । एक ने मुझे पीटने का भी प्रयास किया । मैंने देखा मेरे शरीर पर कम्बल कैसा ? तब तक एक ने झपट कर कम्बल ले लिया, और बोला– 'मैं कम्बल ओढ़े रात में सोया था । देखो यह साधु मेरे शरीर के ऊपर से कम्बल उठाकर स्वयं ओढ़कर सो गया । निःसन्देह यह चोर नहीं है । चोर होता तो कम्बल लेकर चम्पत हो जाता । यहीं क्यों सोता। परन्तु इसे मुझे जगाकर कहना चाहिए था । मैं भण्डारघर से या और कहीं से इसके लिए कम्बल की व्यवस्था करता, रहने दो, इसे मारो मत । अच्छा बाबा ! प्रणाम । बहुत ठंड लगी, तभी तुमने देह की रक्षा के लिए ऐसा किया होगा । तुम्हारी शकल चोर या डाकू जैसी दीखती नहीं, अच्छा तू ही यह कम्बल ले जा । तेरा ओढ़ा हुआ कम्बल मैं गृहस्थ कैसे ओढ़ लूँगा ?' ... इतने में श्रीब्रह्मचारी जी आये । सबने उन्हें प्रणाम करना प्रारम्भ किया । उन्होंने बाबा को हृदय से लगाया । भक्तों को समझाया– बाबा को प्राणाम करो । "श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव !" मैंने रात्रि में इस बाबा को ठंड के मारे सिकुड़े हुए सोते देखकर तुम्हारे शरीर से कम्बल उठाकर इस सोये हुए बाबा के शरीर पर डाल दिया । सबको आश्चर्य हुआ । भीड़ छंटी । मैं भागा । तब से मैंने कटिवस्त्र के अतिरिक्त और किसी वस्त्र का उपयोग न करने का व्रत ले लिया है ।'

'मैंने गङ्गा, यमुना, नर्मदा की दो–दो बार परिक्रमा की है । इन नदियों में मेरी बड़ी आस्था है । मैं दार्शनिक धरातल पर अद्वैत और साधनपथ पर संकीर्तन दोनों को मानता हूँ । देखो मेरी गुफा के पास गङ्गाजी कल–कल कर पहाड़ी क्षेत्र से मधुर कीर्त्तन करती हुई आकर फिर शान्त होकर आगे की ओर बढ़ रही है । यही चैतन्य महाप्रभु और शङ्कराचार्य के सिद्धान्तों का समन्वय है ।'

बाबा ने बता दिया कि 'मैं ब्राह्मण हूँ । तुम लघुसिद्धान्त कौमुदी

पढ़ लो । ईश, केन, कठ इन उपनिषदों को याद कर लो । ग्रन्थ में सन्निहित विद्या जड़ नहीं चैतन्य है, अतः ग्रन्थ का सम्मान करना चाहिए। जो इनको चेतन समझकर विद्याभ्यास करता है, ग्रन्थ अपना अर्थ उसके प्रति प्रकट करना प्रारम्भ करते हैं ।' ध्रुवजी ने ननुनच किये बिना संज्ञाप्रकरण कण्ठस्थ किया । ईशोपनिषद् और केनोपनिषद् कण्ठस्थ किया ।

एक दिन बाबा एकान्त में अकेले ही ध्रुवजी के पास आ गये । उन्होंने कहा– 'सन्त लोग आकर गोरक्षार्थ दिल्ली चलने के लिए बाध्य कर रहे हैं । तरह-तरह की युक्तियाँ प्रकट कर रहे हैं । ऐसा लगता है कि उनकी बात अनसुनी कर दें तो यहाँ रहना भी सम्भव न हो । आपको मैं अपना ही प्रतिरूप मानता हूँ । यद्यपि दिल्ली पहुँचने के लिए लोग मार्गव्यय देना भी चाहते हैं, परन्तु आप आज ही पैदल दिल्ली प्रस्थान करें । कदाचित् वहाँ आपके अग्रज मिल जाँय तो वैराग्य के नाम पर उनका तिरस्कार न करें । भले ही कुछ व्यवधान भी उपस्थित हो । भगवान् की कृपा से आप अपने मार्ग से च्युत नहीं होंगे ।'

❀

३०. गोरक्षार्थ प्रयाण

ध्रुवजी ने कहा– 'आज एक नवम्बर है । पैदल ही जाना है । तो अभी चल देना उपयुक्त है । तभी सात नवम्बर को दिल्ली के गोरक्षा कार्यक्रम में सम्मिलित हो पाना सम्भव होगा ।'

ध्रुवजी के उत्तर को सुनकर बाबा का कण्ठ भर आया । वे विह्वल हो गये । ध्रुवजी तत्काल वहाँ से लक्ष्मण झूला पार कर मोक्षाश्रम के समीप से हरिद्वार की ओर चल पड़े । मोक्षाश्रम को मन-ही-मन प्रणाम किया । रात्रिविश्राम हरिद्वार के पार्क में किया । दिन में ब्राह्मणों के यहाँ रोटी माँग लेते । पाँचवें दिन मेरठ पहुँचे । कम समय में इतनी

यात्रा के कारण पाँव सूजने लगे। मेरठ में एक आम के बगीचे में जाकर लेट गये। एक मन्दिर था। जहाँ पुजारी के पास एक मुसलमान थानेदार चिलम चटकाने आये। ध्रुवजी कुछ दूर अंधेरे में चुपचाप लेटे थे। इस तथ्य का ज्ञान उन दोनों को नहीं था। मुसलमान ने कहना प्रारम्भ किया– 'बाबा कल सात नवम्बर है। सुवह चार बजे ही दिल्ली के लिए प्रस्थान करना है। दिल्ली पुलिस ने गोरक्षक हिन्दुओं पर लाठी-गोली चलाना मना कर दिया है। इन्दिरागाँधी ने कांग्रेस अध्यक्ष कामराज से मिलकर दक्षिण से सेना बुलाई है। गृहमन्त्री गुलजारीलालनन्दा को कुछ भी पता नहीं है। मेरठ आदि से हम मुसलमानों को विशेषकर बुलाया गया है। कल गोरक्षकों पर अश्रुगैस, लाठी, गोली आदि का प्रयोग होना है। बाबा सम्भव है कल देर से लौटने के कारण तुम्हारे पास न आ सकूँ।'

अर्धरात्रि के बाद ही ध्रुवजी उठे और दिल्ली की ओर चल पड़े। पैर में सूजन होने पर भी गोवंश के प्रति भक्ति के कारण बल और वेगपूर्वक लक्ष्य की ओर बढ़ते गये। प्रातःकाल लालकिला पहुँच गये। पूरा मैदान गोभक्तों से भरा हुआ था। गुजरात तक के व्यक्ति आये हुए थे। गोदी में छोटे-छोटे बच्चे को लेकर भी हजारों माताएँ आयी हुई थीं। प्रशिक्षक महानुभाव प्रान्त के क्रम से गो भक्तों को खड़ा कर रहे थे।

आदेश हुआ। लालकिला से लोकसभा की ओर गोरक्षा सम्बन्धी जयघोष करते हुए भक्तवृन्द चल पड़े। स्थान-स्थान पर प्याऊ की व्यवस्था थी। दिल्ली वासियों ने भी अपने दिव्यभावों को बिछाकर गोभक्तों का स्वागत करने में किसी सङ्कोच का परिचय नहीं दिया। लालकिले से लोकसभा तक माईक की व्यवस्था थी। कल्याण के सम्पादक श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार जी की प्रेरणा से समृद्ध वर्ग ने भी

खुलकर साथ दिया था । ध्रुवजी मञ्च के समीप ही जाकर बैठ गये । मञ्च पर पूज्य धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज, पूज्य श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य ज्योतिषपीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रम जी महाराज, पूज्य श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिरञ्जनदेव-तीर्थजी महाराज, पूज्य श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज, प्रसिद्ध जैन मुनि श्रद्धेय श्रीसुशील कुमारजी महाभाग आदि प्रमुख तथा प्रसिद्ध सन्त विराजमान थे । सिर झुकाकर सबका मन-ही-मन अभिनन्दन किया । हृदय में सन्निहित सद्गुरुदेव स्वामी श्रीकरपात्री जी महाराज का दर्शन कर ध्रुव जी अत्यन्त आह्लादित हुए ।

उस विशाल कार्यक्रम में दो महानुभावों की अनुपस्थिति गोभक्तों को सन्तप्त करनेवाली और गोघातकों को प्रसन्न करनेवाली थी । आचार्य-बिनोबा जी और राष्ट्रिय स्वयंसेवक संघ के संघचालक गुरु गोलवलकर जी सभामञ्च पर अनुपस्थित थे । कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ । महावीरप्रसाद त्यागी सांसद का भी उद्बोधन मिला । गोभक्त शान्तिपूर्वक लोकसभा के पथ से लालकिले के समीप तक बैठे थे । सुशील मुनि जी, पुरी पीठ के शङ्कराचार्य जी, स्वामी श्रीकरपात्री जी आदि महानुभावों ने अपने-अपने युक्तियुक्त शान्तिपूर्ण भाव व्यक्त किये ।

ध्रुवजी का ध्यान सभामञ्च के नीचे की ओर गया । छुपाकर रखी गयी बाँस की कई टोकरियों को ध्रुव ने देखा । सोचा हो-न-हो पुलिस इन्पेक्टर के कथनानुसार गोभक्तों के विनाश का कोई उपक्रम हो । एक तो मञ्च तक मलिन वस्त्र आदि से सन्तप्त मुझको पहुँचने दिया जाय, यह भी सम्भव नहीं । बीच में खड़ा होकर कुछ कहने दिया जाए, यह भी सम्भव नहीं । कदाचित् कुछ कह भी दिया जाए तो भीड, के कारण भगदड़ में ही हजारों गो भक्तों का नाश सम्भव है । किसी वरिष्ठ मञ्चस्थ सन्त से भी परिचय नहीं कि सङ्केत करके अपने पास ही उन्हें

बुलाकर कान में कुछ कह दिया जाए । सरकार के प्रति विश्वस्त और भावुकता के वशीभूत संरक्षक वृन्द मञ्चसुरक्षा का ध्यान नहीं रख पाये हैं । मञ्च के आस-पास खड़े व्यक्तियों के हाव-भाव भी ध्रुवजी को विपरीत ही परिलक्षित हुए ।

पथ के दोनों ओर भवनों पर बाबा वेष में कुछ अराजक तत्त्व ही ध्रुव जी को परिलक्षित हुए । विनाश की आशङ्का और हर तरह से अपनी असमर्थता के कारण मन-ही-मन गोविन्द को प्रणाम कर मौन रहे ।

लोकसभा का सत्र प्रारम्भ था । गोभक्तों को ऐसा लगता था कि अपनी सरकार है । स्त्रियों का हृदय सुकोमल होता है । लोगों की आस्था को परखकर इन्दिरा जी स्वयं सभामञ्च पर आकर आश्वासन देने ही वाली हैं, या गृहमन्त्री श्रीनन्दाजी अथवा अपने अन्य किसी प्रतिनिधि को भेजकर ऐसा आश्वासन दिलाने ही वाली हैं । इस आशय को एक-दो वक्ताओं ने मञ्च से प्रस्तावित भी किया । इतने में पगड़ी बाँधे सांसद श्रीरामेश्वरानन्द सरस्वती जी मञ्च पर आ गये । उन्होंने बड़े चाव और भाव से कुछ कहने की भावना व्यक्त की । आशान्वित मञ्चस्थ सन्तों ने आह्लादपूर्वक उन्हें माइक पकड़ा दिया । वे भावुकता में बोल पड़े । गोभक्तों की बात सरकार नहीं सुनना चाहती । "गोभक्तों, नागासन्तों घेर लो पार्लियामेंट को, किसी भी सांसद को तब तक मत निकलने दो, जब तक सदन गोरक्षा की घोषणा न करे ।"

कतिपय नागा सन्तों में और सरकार के द्वारा नियुक्त साधुवेष में तैनात उपद्रवी व्यक्तियों में चहल-पहल मच गयी । अध्यक्ष श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी ने उपस्थित जनसमुदाय को गोभक्ति की शपथ दिलाई । मञ्चस्थ श्रीअटलविहारी वाजपेयी जी को प्रवचन करने को कहा गया । फिर क्या था, लाइन काट दी गयी । तैनात अराजकतत्त्वों में एक-दो ने

मञ्च के नीचे टोकड़ियों में रखी ज्वलनशील वस्तुओं में आग लगाना प्रारम्भ किया । अश्रु गैस छोड़े गये । लाठियाँ बरसने लगीं भगदड़ मची । लोग मरने लगे, बहुत से घायल होकर गिरने लगे । मञ्चस्थ सन्त कूदकर भागने लगे ।

ज्योतिष पीठाधीश्वर जगद्गुरु-शङ्कराचार्यजी स्वनामधन्य श्रीकृष्णबोधाश्रम जी मञ्च पर अडिग बने रहे । समीपस्थ स्वामी करपात्री ने धर्मसङ्घ और धर्मवीर दल के सदस्यों को आज्ञा देकर उन्हें मञ्च से उठाकर सुरक्षित स्थल पर ले जाने की आज्ञा दी । दोनों जगद्गुरु और श्रीकरपात्रीजी गोभक्तों की दुर्दशा देखकर व्याकुल हो गये । भावी रणनीति तैयार करने के लिए धर्मसङ्घ की ओर चल पड़े ।

श्रीरामेश्वरानन्द की पुलिस ने पर्याप्त पिटाई की । ध्रुव जी भी अश्रुगैस से बेहोस होने लगे । एक सन्त ने उठाकर समीपस्थ पार्क में उन्हें डाल दिया । कुछ ही मिनटों में ध्रुवजी सचेत हुए और आगे की ओर बढ़ने लगे । सभी ओर भगदड़ । पहुँचते-पहुँचते यमुनातट पर धर्मसङ्घ महाविद्यालय पहुँचे । वहाँ प्रसाद पाकर निगम बोध घाट श्मशान के बाँधपर सो गये । वहाँ एक विचित्र दृश्य देखा । एक औघड़ बाबा रहता था । वह चिता की अग्नि में चाय, भोजन तैयार करता । श्मशान में मुर्दों के शरीर पर स्थित वस्त्र आदि लेने वाली देवी को भी चाय आदि पिलाता और विषयवार्ता में ही मस्त रहता ।

दूसरे दिन स्नानादि कृत्यों से निवृत्त होकर धर्मसङ्घ में ध्रुवजी प्रसाद पाने गये, मन्त्री स्वामी भोजन करनेवाले सन्तों को विचित्र ढंग से बोल रहे थे । स्वामी करपात्री जी १४४ धारा तोड़कर आज गोरक्षा के लिए अरेस्ट हो गये । तुम लोगों को मुफ्त भोजन मिल रहा है । ऐसा समझकर भोजन मत करते रहो, जेल भरो । अच्छा बोलो आज कौन कौन सत्याग्रह करेगा ? वे सब बातें चुभने वाली थीं । ध्रुवजी के पाँव

पर्याप्त सूज गये थे । पैदल ही चलने का व्रत था । आठ नवम्बर को यमुना तट पर ही विश्राम किया ।

❀

३१. जेल में

९ नवम्बर १९६६ को वे सत्याग्रह के लिए चल पड़े । एक दिन मजिस्ट्रेट के सामने तिहाड़ जेल में प्रस्तुत किये गये । ३० दिन की सजा सुनाई गई । सात दिन तिहाड़ जेल राऊटी में रह रहे थे । सत्याग्रहियों के लिए अपने-अपने ग्रुप के लिए राशन पृथक्-पृथक् लेकर भोजन बनाने की अनुमति दिल्ली के उपराज्यपाल झा जी से मिल चुकी थी । कुल बियालिस दिनों तक जेल में रहे । जेल में बी.क्लास की सुविधा मिली थी । स्वामी करपात्री जी को ए-क्लास की सुविधा मिली थी । स्वामी करपात्री जी ने ए-क्लास की सुविधा न स्वीकार कर बी-क्लास की सुविधा स्वीकार की थी । कहीं मानस का अखण्डपाठ होता, तो कहीं अखण्ड संकीर्त्तन, तो कहीं नागा लोग धुनी रमाकर चिलम चटकाते । अलख-अलख, राम-राम की रट लगाते । अद्भुत आनन्द था । कुम्भ जैसा दृश्य था । नित्य ही तिहाड़ जेल के पार्क में सायं ४ से ६ तक सत्सङ्ग होता । मुख्य वक्ता श्रीकरपात्रीजी महाराज थे । वे प्रायः पूजनोपरान्त पं. दिवाकर आदि को श्रीमद्भागवत की श्रीधरी टीका भी पढ़ाते । ध्रुवजी इन सभी कार्यक्रमों में समयानुसार सम्मिलित होते । ध्रुवजी के साथ राजस्थानी भक्त लोग थे । वे लोग भी ध्रुवजी से धर्म और अध्यात्म सम्बन्धी विषयों पर चर्चा करते ।

जेल से छुट्टी होने पर गेट के बाहर आते ही दिल्ली के नागरिक सत्याग्रहियों का स्वागत करते और उन्हें गन्तव्य तक वाहन से पहुँचाने के लिए तत्पर थे । परन्तु ध्रुवजी का पैदल चलने का ही उन दिनों नियम

था । वे पैदल चलकर पुनः यमुना तट पर पहुँचे । धर्मसंघ में भिक्षा पाये । मन्त्री स्वामी जी की पूर्वशैली में भोजन के समय चुभनेवाली भाषा सुनने को मिली । एक दिन बाद ही पुनः सत्याग्रह में सम्मिलित हुए तिहाड़ जेल पहुँचाये गये ।

'एक बार पूज्य धर्मसम्राट् से एकान्त में मिल लेने में क्या आपत्ति है ।' ऐसा सोचकर ध्रुवजी उनसे मिलनेकी भावना से अकेले ही चले । पूज्य चरणों के लिए वृक्ष की छाया में उनके एक शिष्य और सचिव ब्रह्मचारी भिक्षा बना रहे थे । उन्होंने जिस ढंग से आधे घण्टे तक ध्रुवजी को लताड़ा वह सर्वथा अशोभनीय था । वे सन्त चाहते तो यही थे कि ध्रुव धर्मसम्राट् का शिष्यत्व स्वीकार कर वेदान्ती जी का अनुगमन करें । परन्तु उनके कथन की शैली ने ध्रुवजी को पूज्यपाद से मिले बिना ही लौटने के लिए बाध्य कर दिया । प्रवचन और पाठादि में पूज्यपाद अधिकांश बात ध्रुवजी को निहारते हुए ही करते थे । परन्तु न तो उन्होंने कुछ पूछा, न तो ध्रुवजी कुछ कह पाये ।

पद्रह दिनों की सजा सुनाई गई । पूज्यचरणों के शिष्य गङ्गानगर राजस्थान निवासी श्रीविहारीलाल टाटिया जी से एक दिन ध्रुवजी मिले । टाटिया जी ने बहुत ही विनम्रता पूर्वक व्यवहार किया । पूज्य चरणों द्वारा विरचित **'मार्क्सवाद और रामराज्य'** तथा **'भक्तिसुधा'** भेंट की । ध्रुवजी एकान्त में जेल के किसी वृक्ष या मैदान में उन ग्रन्थों को पढ़ते । इस बार हरियाणा के आर्यसमाजियों के साथ ध्रुवजी अरेस्ट हुए थे । वे सभी गोभक्त थे । उनसे शुष्क विवाद करना ध्रुवजी उपयुक्त नहीं समझते थे । अतएव अधिकांश समय एकान्त में रहते ।

❋

३२. जेल से घर में

जब जेल में मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत हुए तब अग्रज शुकदेव झाजी के एक मित्र आर.एस.एस.के कार्यकर्ता वहाँ मिले । वे नीलाम्बर से भी पूर्व और पूर्ण परिचित थे ही । नीलाम्बर (ध्रुवजी) को देख प्रमुदिते और व्यथित दोनों ही हुए । उन्होंने अग्रज महोदय को जाकर कहा– 'नीलाम्बर की कोई सूचना है क्या ?'

अग्रज ने कहा– 'नहीं' ।

मित्र ने कहा– मेरा मुँह मीठा करो तो, मैं उससे मिला दूँ । पुनः जेल की बात सुना दी । 'अरे नीलाम्बर जेल में' सहसा अग्रज महोदय ने कहा ।

मित्र ने कहा– 'गोरक्षा के सन्दर्भ में, न कि और किसी अभियोग में । तब नीलाम्बर को घर लाने की योजना बनने लगी, उन दिनों तलवारजी केन्द्रीय तिहाड़ जेल के सुपरिंटेण्डेन्ट थे । उनकी पत्नी अस्वस्थ रहती थीं, उनकी चिकित्सा श्रीझाजी ही कर रहे थे । साथ ही आर्य समाजी प्रसिद्ध सन्त आनन्द स्वामी जी झाजी के सुपरिचित ही थे । आनन्द स्वामी को लेकर झाजी जेल पहुँचे । जेलर महोदय ने नीलाम्बर नाम से तथा ध्रुव चैतन्य नाम से ढुंढ़वाना प्रारम्भ किया । अन्तमें झाजी स्वयं सत्याग्रही कैदियों के बीच जाकर नीलाम्बर को ढूंढ़ने लगे । परन्तु नीलाम्बर ने श्रीमस्तराम बाबा की ओर से भेजे जाने के कारण अपना नाम 'ब्रह्मचारी बाबा' लिखवाया था । अन्त में निराश होकर आनन्द स्वामी के साथ झाजी लौट जाने का मन बना रहे थे । दैवयोग से नीलाम्बर जेल के एक छोटे से पार्क में अकेले ही अध्ययन कर रहे थे । उन्होंने अपने अग्रज को देख लिया । पहले तो मन में यह आशङ्का हुई कि अग्रज ने उन्हें अवश्य ही देख लिया है । परन्तु थोड़ी देर में ही वे समझ गये कि उन्होंने नहीं देखा है । श्रीमस्तराम बाबा की बात

याद आयी, 'कदाचित् बड़े भाई मिल जायें तो वैराग्य के आवेश में उनकी उपेक्षा या उनका तिरस्कार मत करना । भले ही कुछ समय का प्रतिरोध प्राप्त हो ।'

नीलाम्बर ने द्रुतगति से पार्क से निकलकर, अग्रज को प्रणाम किया । अग्रज के कहने पर आनन्द स्वामीजी का अभिवादन किया । नीलाम्बर (ध्रुवजी) के इस शील से दोनों ही बहुत प्रभावित हुए । झाजी ने जेलर को सूचना दी, गेट के समीप जेलर भी आ गये । जेलर ने कहा– 'तुम किसके बहकाने में भागे–भागे फिरते हुए यहाँ आ गये ।' जेलर के हृदय में अपनत्व था । वाणी में जेलर–जैसा स्वर था । भावना यह भी थी कि यह बच्चा है डराने से डर जायेगा, अभी झाजी के साथ चल पड़ेगा ।

नीलाम्बर ने कहा– **'मैं कोई चोरी–जारी करने वाला कैदी नहीं हूँ । सरकारी दृष्टि में गोरक्षा का समर्थन पाप है । उसके उपलक्ष्य में मुझे जेल भेजा गया है । इस बार पन्द्रह दिनों की सजा सुनाई गई है । मैं भारत हृदय सम्राट् साधु वेष में साधुजीवन से मण्डित हूँ । आपको भारतीय संविधान और आस्तिकता दोनों के आधार पर मुझे इस प्रकार डाँटने का अधिकार नहीं होता ।'** तीनों ध्रुवजी के युक्ति–युक्त तथा निर्भीकता पूर्ण उत्तर को सुनकर अवाक् रह गये । आनन्द स्वामी भले ही आर्य समाजी थे, परन्तु गोरक्षा के प्रबल पक्षधर होने से नीलाम्बर के उत्तर से अत्यन्त प्रभावित होकर पीठ थपथपाने लगे । बड़े भाई ने कहा– 'ये जेलर के रूप में आपको कैदी समझकर डाँट रहे हैं, ऐसा आप क्यों मानते हैं ? अपनत्व के कारण ही उन्होंने सब कुछ कहा है ।' पुनः नीलाम्बर से तीनों ने स्नेह पूर्वक घर चलने का प्रबल आग्रह किया । ध्रुवजी ने कहा– **'आप रजिस्टर में यही लिखेंगे कि किसी के बहकावे में आकर सत्याग्रह में सम्मिलित हो गया,**

क्षमा माँगने के कारण बीच में ही छोड़ दिया गया । मैं अपने गोरक्षा अभियान को इस प्रकार दुर्बल और कलङ्कित नहीं करना चाहता तथा इस साधुवेष को भी निष्कलङ्क रखना चाहता हूँ ।'

ध्रुवजी के इस उत्तर से भी तीनों बड़े प्रभावित हुए । ध्रुवजी के चलने और बोलने की शैली अच्छी प्रकार परखकर श्री आनन्द स्वामी ने कहा– 'इसके पीछे पड़ना व्यर्थ है । यह ईश्वर के घर से बना बनाया साधु है । इसकी उन्मुक्त मस्तानी चाल निर्भीक वाणी, धर्म में आस्था, वैदिक मानबिन्दुओं की रक्षा के लिए कष्ट सहने की क्षमता को देखकर मुझे नहीं लगता कि यह गृहस्थ बनेगा ।'

जेलर ने पूछा कि कितने दिनों की सजा सुनायी गयी थी । अब कितने दिन शेष रह गये । ध्रुवजी ने सब कुछ बता दिया । जेलर ने झाजी से कहा– 'कोई बात नहीं, अगले सोमवार को आप सुबह ८ बजे के लगभग आ जाना और इसे ले जाना ।'

नीलाम्बर (ध्रुवजी) से आनन्द स्वामी ने कहा कि कदाचित् इनके आने में किसी कारण देर हो जाये और जेल से मुक्ति जल्दी मिल जाये तो गेट के बाहर इनकी प्रतीक्षा करना, भाग मत जाना । नीलाम्बर ने कहा– 'अच्छा' । अग्रज ने कहा– 'ये हठी अवश्य हैं, परन्तु प्रतिज्ञा के निर्वाह में बड़े ही दृढ हैं ।'

तीनों अपने-अपने स्थान को चले गये । जेल में सत्याग्रहियों की भीड़ बढ़ने लगी । अतिरिक्त बनाये गये टैंट भी भर गये थे । रविवार की छुट्टी काटकर एक दिन पहले ही जेल से मुक्ति मिल गयी । ध्रुवजी कारागार के बाहर आये । मन में कुछ क्षणों के लिए विचित्र द्वन्द्व छा गया । अच्छा अवसर है, दिल्ली छोड़कर भागने का । मन का एक पक्ष यह था । सत्य की रक्षा के लिए भाई के पास जाना ही युक्त है ।

दूसरा पक्ष यह था । ध्रुव ने प्रथम पक्ष का अनादर और द्वितीय पक्ष का समादर किया । फिर भी समस्या विकट थी । दिल्ली बहुत बड़ी है । परिवार सहित अग्रज कहाँ रह रहे हैं, यह तो विदित ही नहीं है । फिर जाऊँ तो कहाँ जाऊँ ! अन्त में सोचा– 'अग्रज के मित्र के यहाँ पहले जहाँ रहता था, वहीं तिब्बिया कालेज में चलूँ, वे यदि वहाँ होंगे तो भाई के पास पहुँचा दिये जायेंगे। नहीं होंगे तो तिब्बिया कॉलेज में उनके किसी न किसी मित्र से उनका पता मिल जायेगा । पुनः मन में विकल्प उठा– 'जब प्रवृत्ति मार्ग मुझे न अपनाना है, न मुझसे सधना ही है । तब बड़े भाई की आज्ञा के वशीभूत होकर किसी अनर्थ को बुलाना तो उपयुक्त नहीं ।' उत्तर मिला– **'सर्वेश्वर के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित जीवन दिशाहीन हो सके, सम्भव नहीं ।'**

पैदल ही तिहाड़ जेल से तिब्बिया कॉलेज की ओर चले । लगभग ४ बजे तिब्बिया कॉलेज पहुँच गये । मन में ग्लानि थी । इस ब्लाक में सभी जानते हैं । सब क्या कहेंगे, पढ़ाई छोड़कर भागा । भाई को रुलाया । फिर जेल गया । अब पुनः तीन साल बाद लौट आया । अजमल खाँ पार्क में जाकर एक स्थल पर बैठ गये ।

ध्रुवजी को यह पार्क बहुत ही प्यारा था । वे सायंकाल विद्यार्थी जीवन में इसी पार्क में भ्रमण करते । जगह-जगह कथा होती । कहीं दुर्गा सप्तशती की, कहीं वाल्मीकीय रामायण की, कहीं श्रीमद्भागवत की, कहीं हंस सम्प्रदाय की, कहीं गुरुग्रन्थसाहब की । नीलाम्बर कहीं ५ मिनट कहीं १० मिनट, कहीं आधा घंटे खड़ा होकर कथा सुनते । उन्हें वाल्मीकीय रामायण और श्रीमद्भागवत की कथा बहुत अच्छी लगती । एक बार पार्क की उत्तर दिशा में श्रीगङ्गेश्वरधाम में कृष्ण जन्माष्टमी के दिन सायंकाल जोरों से 'जय हो, जय हो' की आवाज गूँजने लगी । नीलाम्बर ने एक व्यक्ति से पूछा– 'यह कैसी आवाज है ?' उत्तर

मिला- 'आज श्रीकृष्णजन्माष्टमी है, भारत के प्रधानमन्त्री श्री नेहरूजी महोत्सव में सम्मिलित होने आये हैं । उन्हीं के स्वागत में यह जयघोष है ।' नीलाम्बर ने सोचा- जिनके कारण देश का विभाजन हुआ, उनका प्रवचन सुनने या मुँह देखने से क्या लाभ ? फिर क्या था गङ्गेश्वर धाम की ओर मुँह फेरकर अन्यत्र चले गये ।

अजमल खाँ पार्क में प्रतिवर्ष अजमेर से कायस्थकुलभूषण आर्यसमाजी सन्त स्वामी विद्यानन्द विदेह जी भी आते । नीलाम्बर (ध्रुवजी) खड़े-खड़े उनका प्रवचन भी कभी-कभी सुन लेते । नैतिकता सम्बन्धी उनका प्रवचन ध्रुवजी को अच्छा लगता ।

एक बार परीक्षा के दिनों में पार्क में घास पर नीलाम्बर पढ़ रहे थे । 'किसी ने काटा है' इतना पता चला । पन्द्रह मिनटों में नीलाम्बर अचेतन-से होने लगे । लोहे के घेरे को शीघ्रतापूर्वक लाँघकर अपने निवासस्थान तक किसी तरह पहुँचे । विषहरा भगवती का स्मरण किया । उनके अनुग्रह से विष दूर हुआ । दैवयोग से अग्रज उसी समय मिलने आये । उन्हें नीलाम्बर को सर्प ने डस लिया । यह सूचना उनके एक गढ़वाली मित्र ने दी । वे टैक्सी करके अर्विन हस्पताल ले गये । डॉक्टरों ने कहा सचमुच विष उतर चुका है ।

उसी अजमल खाँ पार्क में नीलाम्बर ने दो-तीन घंटे व्यतीत किये । सूर्यास्त हुआ धीरेसे उस कमरे की ओर प्रस्थान किया । जहाँ तीन वर्ष पूर्व अग्रज के मित्र रहते थे । बरामदे में गये । किवाड़ का कुछ अंश खुला था । छेद से झाँका, देखा भाभी माला बना रही थीं । कह रही थीं , कल तिहाड़ जेल के द्वार पर स्वागत करके देवर को लाना है । भाई भी प्रमुदित थे । मानो खोया हुआ रत्न फिर मिलने वाला हो । दैवयोग से नीलाम्बर भाभी को दिखे, 'अरे-अरे लाल बाबू आ गये', कहती हुई उन्होंने किवाड़ खोला । मिथिला में किसी भी विवाहित स्त्री को उसके

मायके का नाम लेकर नहीं पुकारते । ससुराल वाले उसका नामकरण करते हैं । भाभी देवर को नाम लेकर नहीं पुकारती । अपनी ओर से नामकरण करती है । इसी सन्दर्भ में नीलाम्बर को भाभियाँ 'लालबाबू' कहकर पुकारती थीं ।

झाजी के मित्र ने शकूर बस्ती में मकान बनवाकर वहाँ निवास करना प्रारम्भ किया था । तिब्बिया कॉलेज का रिसर्च विभाग पुन: चालू हो गया था । झाजी के उपयुक्त कमरे का प्रबन्ध करने के पूर्व कॉलेज ने वह स्थान झाजी को दिया था । किवाड़ खुला, बड़े भाई भी दौड़े । नीलाम्बर ने दोनों को प्रणाम किया । कमरे से लोकानन्द भी निकले । भाई और भाभी ने नीलाम्बर की स्मृति में उनके मित्र लोकानन्द झाजी को अपने यहाँ रखकर तिब्बिया कॉलेज में एक नौकरी दिलवा दी थी ।

'दोनों दिलवर मिले' ।

❀

३३. ध्रुवसे पुनः नीलाम्बर

अग्रज झाजी ने कहा– 'छुट्टी कल न मिलकर एक दिन पूर्व ही कैसे मिल गई ?' नीलाम्बर ने कारण बताया । सबने नीलाम्बर (ध्रुवजी) की वचनबद्धता की सराहना की । मिथिला की परिपाटी के अनुसार छोटे भाई यावज्जीवन बड़े भाई को पितृतुल्य मानकर उनसे बोल-चाल में सङ्कोच का परिचय देते हैं । डॉ. शुकदेवजी अपने अनुजसे कभी घुल-मिल नहीं पाये । अत: उनके द्वारा प्रशिक्षित लोकानन्द ने आयु में श्रेष्ठ नीलाम्बर को समझाना और मनाना प्रारम्भ किया । 'जीवन अन्धकारमय न हो जाये, इतने वर्ष हो गये, भटकते रहे । बाबाओं का क्या है ? स्वयं आनन्द पूर्वक रहते हैं । नवयुवकों को चेला बनाकर उनसे सेवा लेते रहते हैं, और उनका जीवन बेकार कर देते हैं । इतना समय बीत गया । मैट्रिक पास भी तो नहीं कर पाये !'

३. नैमिषारण्यवास

नीलाम्बर ने कहा– 'मैंने सत्यनिष्ठा का परिचय दिया है । अब मेरे जीवन को प्रवृत्ति मार्ग की ओर ले जाकर दिशाहीन न किया जाए इसका दायित्व आप लोगों का है । बड़े भाई पूर्व निर्धारित प्रशिक्षण के आधार पर गोष्ठी में कभी भाभी से तो कभी लोकानन्द से कोई ऐसा प्रश्न करवा देते जिसके द्वारा नीलाम्बर (ध्रुवजी) के तीन वर्षों का अनुभव सामने आवे और भावी भावना भी गुप्त न रह सके । एक दिन ऐसा युवक नीलाम्बर (ध्रुवजी) के पास लाया गया जो पहले घर छोड़कर भागकर पुनः प्रवृत्तिपथ पर अग्रसर हुआ था । उसने नीलाम्बर को एकान्त में समझाना प्रारम्भ किया । भाई, भाभी कुछ दूर पर अन्य कार्यों में व्यस्तता का अभिनय कर रहे थे । कान इधर थे कि नीलाम्बर (ध्रुवजी) क्या मनोभाव व्यक्त करता है । उस युवक ने कहा– 'एक बार आपकी तरह मेरा दिमाग भी विकृत हो गया था । मैं भी कई बाबाओं के चपेंट में आ गया । भगवान् ने कृपा की । उन बाबाओं के चपेट से मुक्त होकर अब मैं ठीक हूँ । कामकाज करने लगा हूँ ।' नीलाम्बर ने जब अपना मनोभाव नहीं व्यक्त किया । तब उसने कहा– 'चरकसंहिता में संन्यास नामक एक रोग का वर्णन किया गया है । वही रोग आपको हो गया है । उसकी चिकित्सा शीघ्र ही करा लेनी चाहिए ।'

नीलाम्बर को कीमती कोट एवं अन्य वस्त्रादि से युक्त रखा जाता । ताकि शील के कारण नीलाम्बर घर से बाहर किसी कार्य से जाने पर भग न जाए । साथ ही नीलाम्बर का मन ऊब न जाय, इसके लिए पूज्य जगद्गुरु श्रीकृष्णबोधाश्रम महाराज के कृपापात्र सत्सङ्गी ब्राह्मण को साथ कर दिया जाता । वे अजमल खाँ पार्क में घूमते समय एक प्रकार से नीलाम्बर की रखवाली करते, सत्सङ्ग की बात सुनाकर नीलाम्बर को प्रमुदित करते, नीलाम्बर के मन की बात उगलवाकर भैया को

सूचना देते । गुप्त और गुप्तभाव यह भी था कि कदाचित् नीलाम्बर प्रवृत्ति मार्ग पर चलना बिलकुल पसन्द न करें तो ज्योतिष पीठाधीश्वर श्रीकृष्णबोधाश्रम जी के चरणारविन्दों में इसे विधिवत् सौंपकर इसके कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया जाय ।

नीलाम्बर की गतिविधि वे सज्जन पूज्य शङ्कराचार्य जी को बताते । वे प्रमुदित होकर कहते, ऐसा व्यक्ति योगभ्रष्ट होता है, मायाजाल में अधिक समय ऐसे व्यक्ति को उलझापाना असम्भव होता है । नीलाम्बर ने जीवन में सर्वप्रथम यतिश्रेष्ठ पूज्य करपात्री महाराज एवं श्रीकृष्णबोधाश्रम जी का ही दर्शन किया था । परन्तु वे श्रीकृष्ण बोधाश्रम जी के प्रति अपनी आस्था को भी प्रकट नहीं होने देते थे । दर्शन और समर्पण का सुयोग होने पर भी कालकृत योग की प्रतीक्षा में नीलाम्बर ने उनके दर्शनादि का कोई भाव नहीं व्यक्त किया ।

इससे पूर्व आर्थिक स्थिति की दुर्बलता के कारण झाजी न तो नीलाम्बर को अपने पास रख पाये थे । और नहीं अधिक सुविधा की व्यवस्था कर पाये थे । उन दिनों नीलाम्बर की भाभी भी गाँव में थीं । कोई पुराना मित्र भी दिल्ली में नहीं था । इन सबके अभाव में ही नीलाम्बर पढ़ाई छोड़कर कहीं भग तो नहीं गया ! ऐसी आशङ्का झाजी के मन में थी । इस बार भाभी जी नीलाम्बर को मानती थी, वह सुलभ थी, भाई का सान्निध्य भी सुलभ था ।

धीरे-धीरे नीलाम्बर को पुनः नवमी कक्षा में प्रवेश पाने के लिए बाध्य किया गया । शकूर बस्ती के हायर सेकेण्डरी स्कूल में नाम लिखाया गया । साइन्स वाले भी संस्कृत ले सकते हैं । इस नये नियम ने नीलाम्बर को आह्लादित किया । नीलाम्बर की कठिनाई को वहाँ कोई समझने वाला नहीं था । जिसे अध्यात्मबोध साक्षात् सूर्यदेव से सुलभ

हो, समाधि का उत्तम अभ्यास हो । शुकदेव जी से विद्वत् संन्यास सुलभ हो, विविध शास्त्रों का अध्ययन सुलभ हो, जिसने भगवन्नाम-रूप के प्रति पर्याप्त निष्ठा सुलभ की हो, उसे नवमी की पढ़ाई पढ़नी पड़ रही हो, जो वह नौ वर्ष पूर्व ही पूरा कर चुका हो । दैव की विचित्र विडम्बना नहीं तो और क्या ?

नीलाम्बर भी हर प्रकार से अपने मनोभाव को गुप्त रखकर बड़े भाई की प्रसन्नता का ध्यान रखते । बड़े भाई ने भी नीलाम्बर को नजदीक से परखा । वे मन-ही-मन समझ गये कि सुविधा या असुविधा संन्यासी बनाने में हेतु नहीं है । यह संन्यास पथ पर प्रयाण करने के लिए ही उत्पन्न हुआ है । अभिप्राय यह है कि घर की असुविधा इसे बाबा बनाने वाली नहीं । घर की सुविधा इसे घर में रमाने वाली नहीं । संन्यासियों का वैभव भी इसे बाबा बनाने वाला नहीं फिर भी किन्हीं विश्ववन्द्य श्रीकृष्ण बोधाश्रम जी और श्री करपात्रीजी जैसे संन्यासी का शिष्य हो, ऐसी भावना उनके मन मे अवश्य थी । तथापि सम्बन्ध सुलभ अपनत्व के कारण यह भावना भी थी कि पढ़ने में तेज है ही हायर सेकेण्डरी भी उत्तीर्ण हो जाए तो सर्विस दिलाने में सुलभता होगी ।

ध्रुवजी को किसी ने आद्य शङ्कराचार्य भगवत्पाद का एक चित्र दिया । ध्रुवजी ने कुतूहलवश रिक्त स्थान पर लिख दिया - 'मुझे यहाँ तक पहुँचना है ।' ध्रुवजी यह बात लिखकर भूल गये । परन्तु .....

❀

३४. बालक की दृष्टि

एक दिन नीलाम्बर किशन गञ्ज किसी काम से जा रहे थे । मार्ग में एक नन्हा-सा बालक नीलाम्बर को देखकर चिल्ला उठा- 'बाबा, बाबा !' उसके सचमुच के बाबा (पितामह) दौड़े । अरे ! यहाँ कहाँ बाबा है ? यह बाबा, बाबा कहकर क्यों चिल्लाता है । वृद्ध ने कहा-

'यहाँ कहाँ है बाबा ।' उसने नीलाम्बर (ध्रुवजी) की ओर ऊंगली करके कहा– 'बाबा, बाबा' नीलाम्बर उसकी ओर देखकर मुस्कराये ! वृद्ध ने कहा– 'यह बच्चा है । बाबू जी को बाबा क्यों कह रहा है ? आपको देखकर पहले चिल्लाया क्यों और अब हँसा क्यों ?

नीलाम्बर (ध्रुवजी) बिना कुछ बोले आगे बढ़े ! मन–ही–मन नीलाम्बर ने उस वृद्ध को समझाया– 'अरे वृद्ध ! तुम मुझे नहीं पहचान पा रहे हो, इसने तो मुझे ठीक ही पहचाना है । बाबूपने को विदीर्ण कर बालक की दृष्टि ने मुझे पहचाना है । नि:सन्देह श्रीकृष्ण ने इस घटना के माध्यम से मुझे शिक्षा दी है । अब प्रतिबन्ध समाप्तप्राय है । आगे की तैयारी करनी चाहिए । अर्द्धवार्षिक परीक्षा में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होने के बाद आगे की योजना क्रियान्वित करनी चाहिए ।' अर्द्धवार्षिकी परीक्षा में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुए । छ: महीने में ही पूरे विद्यालय पर नीलाम्बर का अद्भुत प्रभाव छा गया । नीलाम्बर के प्रवचन ने भी नीलाम्बर को प्रतियोगिता में सर्वोत्कृष्ट सिद्ध किया ।

नीलाम्बर जब तिहाड़ जेल से आये थे, तब भाभी गर्भवती थीं । विनोद में भाभी ने कहा– 'अच्छा बताइए कि भतीजा होगा या भतीजी होगी ?'

नीलाम्बर ने कहा– 'भतीजा होगा और उसका नाम मैंने पहले ही रख दिया है– **प्रमोद** ।'

समय पर भाभी को हस्पताल में भर्ती कराने और उसकी सेवा–सुरक्षादि का पूरा प्रबन्ध करने में जो भूमिका नीलाम्बर ने प्रस्तुत की, वह आशातीत थी । प्रमोद चार महीने के हो गये । वे स्वभाव से चाचा नीलाम्बर को देखकर बड़े प्रसन्न होते। नीलाम्बर जब कुर्सी पर बैठकर कुछ पढ़ते होते, प्रमोद माँ की गोदी का आश्रय ले हाथों से कुर्सी पकड़कर हिला देते । आश्चर्य होता की कुल चार महीने का शिशु चाचा

से इतना स्नेह करे । और माँ की गोदी का आश्रय ले चाचा की कुर्सी को हिला दे । यह तो अद्भुत ही कोई तथ्य है ।

❀

३५. श्रीकृष्णलीला

एक दिन एक सांवला षोडश वर्षीय युवकने सामने के मार्ग पर लोगों से छेड़छाड़ करता हुआ, श्रीकृष्ण का अभिनय करता हुआ नीलाम्बर को देखा । उसने नीलाम्बर का मन हर लिया । भाभी सावधान हुई । हाथ पकड़कर भाभी ने देवर को घर की ओर लाने का प्रयास किया । भाभी की एक पड़ोसिन सहेली भी उनकी सहायता के लिये आ गई । वह भी नीलाम्बर को घर की ओर खींचने लगी । इतने में वह मुख्य मार्ग को छोड़कर गन्तव्य नीलाम्बर के समीप तक आने का उपक्रम किया । कहीं यह नीलाम्बर को लेकर भाग न जाए, ऐसा सोचकर दोनों देवियों ने उस पागल को हाथ उठाकर मना किया, और जोरों से डाँटा । उस पागल ने तो अपना काम बना लिया पहले तो उसने एक-दो बार नीलाम्बर के पास आने का कृत्रिम प्रयास किया । बाद में कहीं उसे देवियों की मीठी चपत न लग जाए, इस आशय से नीलाम्बर ने कटाक्ष के द्वारा यह बता दिया कि चन्द दिनों में मैं यहाँ से चलने वाला ही हूँ । बस क्या था, वह वहाँ से चम्पत हो गया ।

यह घटना अपने पतिदेव को भाभी ने बता दी । नीलाम्बर की अधिक सावधानी से देखरेख की जाने लगी ।

❀

३६. व्यवस्था में दक्षता

एक दिन बड़े भाई ने नीलाम्बर को सुनाकर नीलाम्बर की भाभी से कहा- 'कहीं अपव्यय न होने पर भी घर का खर्चा बहुत बढ़ रहा

है ।' नीलाम्बर ने बड़े भाई को सुनाकर भाभी से कहा- 'एक महीने घर की व्यवस्था मुझे सौंप दी जाए । सम्भव है खर्चा सीमा में आ जाए !' ऐसा ही हुआ । घर की व्यवस्था नीलाम्बर को सौंप दी गयी । पूर्वापेक्षा अधिक सुविधा सबको मिली और व्यय भी कम हुआ । सबने समझ लिया, इसने तो तीन साल बाबा रहकर भी व्यवस्था में दक्षता प्राप्त कर ली । तब नीलाम्बर ने बताया कि **व्यवस्था, अनुशासन, अध्ययन, अध्यापन आदि की दृष्टि से भी बाबा का प्रशिक्षण गृहस्थों की अपेक्षा उत्कृष्ट होता है ।**

❀

३७. पुनः ध्रुवचैतन्य

दीपावली का त्योहार सन्निकट था । नीलाम्बर सन्ध्यावन्दनादि कृत्यों से निवृत्त हुए । भाभी और भाई घर लीपने-पोछने आदि में संलग्न थे ।

भाभी ने कहा- 'मैंने भोजन बनाके रसोई घर में रख दिया है, आप भोजन परोस कर पालें ।'

नीलाम्बर भोजन घर में घुसे । चुपके से बाहर आये । रस्सी में एक चादर लगभग सूख गयी थी, उसी को उठाया और चुपके से चम्पत हो गये । राजमार्ग को छोड़ कर गली पकड़ ली । मुख्य मार्ग पार कर वही पुराना बिरला मन्दिर से पीछेवाला तीन-चार किलोमीटर वाला वनमार्ग पकड़कर मथुरा रोड़ को छोड़कर बुलन्दशहर की ओर चल पड़े । मार्ग में गङ्गनहर का दर्शन कर उसी के सहारे कानपुर की ओर चलने लगे ।

❀

३८. विचित्र रूप दर्शन

मार्ग में एक विचित्र घटना घटी थी। बुलन्दशहर जिला नहर के सहारे पारकर मैनपुरी जिला में ध्रुव ने प्रवेश किया। सूर्यास्त के समय दायीं ओर एक पीपल का वृक्ष और एक कमरा एवं उसके आगे गाँव दिखाई पड़ा। ध्रुव ने हनुमान्जी का मन्दिर देखा। सूर्यास्त होते ही कुछ बच्चे और युवक पहुँचे। एक-दो वृद्ध भी थे। सबने हनुमान्जी की आरती की। वृद्धों ने ध्रुवजी से भोजन की बात पूछी। ध्रुव ने कहा- 'मैं रात्रि में गाँव में नहीं जाता। यदि ब्राह्मण घर की भिक्षा यहीं मिल जाए तो ले सकता हूँ।'

गाँववालों ने कई बार आग्रह किया- 'आप विश्वास कीजिए। हम अधम नहीं हैं। थोड़ी देर में ही यह बालक ब्राह्मण के घर से रोटी ले आकर आपको दे देगा।' गाँववालों ने यह भी कहा- 'सर्दी पड़ रही है। इस कमरे में पुआल डलवा देते हैं। उस पर आपको ठंड नहीं लगेगी। कमरे में जो तखत है, उस पर एक बाबा लेटते हैं। वे भिक्षा करके थोड़ी देर में लौटेंगे।'

गाँववाले पुआल कमरे में डलवाकर चले गये। थोड़ी देर बाद एक युवक रोटी और सब्जी ले आया। ध्रुवजी हाथ पर लेकर खाने लगे। युवक गाँव चला गया। हाथ धोकर, पानी पीकर ध्रुव निवृत्त हुए। पर्याप्त थके थे। सोने का उपक्रम कर रहे थे। बाबा आये। बाबा ने कुशल मङ्गल पूछा। सो जाने का सङ्केत किया। ध्रुवजी पुआल पर लेट गये। धीरे-धीरे बाबा की मुखाकृति विकृत होने लगी। उसका शरीर सिमटने और फैलने लगा। वह तखत से नीचे कूदकर कमरे के भीतर चारों ओर नाचने-चिल्लाने और थूकने लगा। यह क्रम घंटों चलता रहा। यद्यपि ध्रुव के लिए विछाये गये पुआल पर वह नहीं आता और न उस पर या ध्रुव पर थूकता; परन्तु उसका चिल्लाना और विचित्र

अभिनय तथा उपद्रव असह्य था। ध्रुवजी ने मुँह खोला। उन्होंने कहा– 'यद्यपि गम्भीर रात है, मार्ग अटपटा है। फिर भी तुम्हें कष्ट होता हो तो मैं यहाँ से चला जाऊँ।' उसने हाथ से सङ्केत किया, नहीं। कुछ देर वह तखत पर बैठा।

फिर वही, ताण्डव नृत्य। शनैः–शनैः रात बीतने लगी। चिड़ियाँ चहचहाने लगीं। बाबा का आवेश शान्त होने लगा। बाबा आवेश छोड़कर बेहोश के तुल्य तखत पर सो गये। ध्रुवजी अंधेरे में ही चल पड़े। सङ्कट की स्थिति में गिरते–पड़ते नहर तक आये। धीरे–धीरे अरुणोदय हुआ, मार्ग स्पष्ट दिखने लगा। ध्रुव का ध्यान अपने शरीर पर आ गया। रात्रि के भोजन और बाबा के विकराल प्रदर्शन का यह प्रभाव था कि सारा शरीर काला हो गया था। उसी काले शरीर से ध्रुव कानपुर जिलाके सकरवाँ गाँव के सरोवर तक पहुँचे। जिधर लोग स्नान कर रहे थे, उधर स्नान करना ध्रुव ने उचित नहीं समझा। एक पीपल का वृक्ष तट पर था। आधा मूल सरोवर में था। उसी पर खड़े होकर ध्रुवजी सरोवर में छलांग लगाकर तैरते हुए दो डुबकी लगाकर पुनः किनारे पर आ गये। आश्चर्य! सारा शरीर गोरा हो गया। तिल भर काला अंश लंगोटी के पास रह गया। लंगोटी से समावृत होने से वहाँ पानी का प्रवेश नहीं हो पाया था। कालान्तर में तीर्थस्नान से वह भी पूर्ववत् गौरवर्ण का हो गया।

❃

३९. सन्तोषीमिलन

कानपुर जिला में मार्ग में चिर परिचित नैमिष के कथावाचक सन्तोषी रामायणी मिल गये। वे ध्रुवजी को अच्छी तरह पहचानते थे। बड़ा स्नेह करते थे। अधिक समय बाद मिलने के कारण उनका गला भर आया। उन्होंने हठपूर्वक ध्रुवजी को सायकल पर बैठाकर गाँव में ले

जाने तथा कुछ दिनों घर पर रहने का आग्रह किया । ध्रुवजी चैतन्य महाप्रभु की जन्मभूमि 'नवद्वीप' जाने का भाव बना रहे थे । सन्तोषी जी के अत्यन्त आग्रह को देखकर ध्रुवजी ने कहा– 'मैं पैदल ही चलने का व्रत लिए हुए हूँ ।' तब सन्तोषी जी ने कहा– मैं साइकल से घर पहुँचता हूँ । आपके उपयुक्त निवासादि की व्यवस्था करता हूँ । आप पैदल मेरे गाँव आ जाओ । मेरे गाँव का नाम सकरवाँ है । अच्छा, वैसे नहीं मानूँगा। तुम वचन दो, शपथ खाओ कि मैं आऊँगा । वैसा ही हुआ ।

मस्तानी चाल । चलते-चलते अध्यात्म चिन्तन की बाढ़ । ध्रुवजी को गाँव का नाम भूल गया । पर्याप्त भटकना पड़ा । प्रबुद्ध व्यक्तियों ने कहा– सन्तोषी रामायणी का गाँव सकरवाँ है । लगभग तीन घन्टे पैदल चलकर सन्तोषी जी. के घर आये । सन्तोषी जी ने कहा– बहुत बिलम्ब हो गया । कई दिनों से भूखे होओगे । जल्दी हमारे साथ भोजन करो । ध्रुवजी ने कहा– 'स्नान कर लूँ । सन्ध्यादि कृत्यों को शीघ्र सम्पन्न कर लूँ ।' सन्तोषी जी ने कहा– 'आपके स्वभाव को मैं जानता हूँ । आप सरोवर में स्नान करना पसन्द करोगे । चलो, गाँव के ठीक बाहर एक आश्रम है । वहाँ के सन्त जी से परिचय करा देता हूँ । सरोवर में स्नान कर, आराम से नित्यकर्म कर शीघ्र ही लौटकर भोजन कर लो ।

सन्तोषी जी ने सन्त से परिचय कराया । वे घर लौट आये ।

ध्रुवजी नित्य प्रात:स्नानादि कृत्यों से निवृत्त होकर तटवर्ती आश्रम के प्राङ्गण में मूलसहित श्रीमद्भागवत का अध्ययन करते । चार दिनों में श्रीमद्भागवत की एक आवृत्ति हो गयी । ध्रुव ने आगे प्रस्थान का मन बनाया । सन्तोषी जी से अपना मनोभाव व्यक्त किया । उन्होंने दस-पन्द्रह दिन रुककर थकान और दुर्बलता दूरकर आगे बढ़ने का प्रबल

अनुरोध किया । ध्रुवजी ने लक्ष्य की ओर अग्रसर होना ही उपयुक्त समझा, तब सन्तोषी जी ने अपना मनोभाव व्यक्त किया- 'आपको गुरुदेव भगवान् ने स्वामी आत्मानन्द जी के पास ऋषिकेश भेज दिया । सुनकर बहुत दुःख हुआ । सोचा इतने कठोर महात्माके चपेट में ध्रुव-जैसा सौम्य कैसे सुरक्षित रहेगा ? जब सुना कि ध्रुव तो लापता हो गये तब हम सभी हितैषियों को ऐसा ही लगा कि विकट यातना से तङ्ग होकर अगत्या ध्रुव ने गङ्गा में शरीर विसर्जित कर दिया । अब मेरी भावना है कि कानपुर जिला में झींझक के पास विवेकानन्द जी जिन्होंने गुरुदेव भगवान् से संन्यास ले लिया है, उनके गाँव में यज्ञोत्सव है । उसमें श्रीमद्भागवत कथा और प्रवचनादि का कार्यक्रम है । .... तारिख को पूज्य गुरुदेव भगवान् आ जायेंगे । एक बार आप उनका दर्शन कर लो। सभी तुम्हारे दर्शन से प्रसन्न हो जायेंगे । आत्मानन्द स्वामी के कलङ्क का निवारण हो जायेगा । तब वे तुम्हें सुरक्षित सुनेंगे, तब बहुत ही प्रसन्न होंगे । सकुटुम्ब सन्तोषी जी के अधिक आग्रह को, युक्ति-युक्त भावों को, सुनकर ध्रुवजी ने सोचा शिष्टाचार की दृष्टि से यह उचित है, परन्तु साधनपथ में प्रबल प्रतिबन्ध ही है । कालयोग का अनुकरण कर ध्रुव जी पैदल ही झींझक की ओर अग्रसर हुए ।

❋

४०. बालक का खेल

एक दिन मस्तानी चाल में ध्रुवजी आगे की ओर बढ़ रहे थे । सूर्यदेव अस्ताचल की ओर अग्रसर हो रहे थे । एक गाँव के समीप मेड़ की दायीं ओर खाई थी, बायीं ओर ज्वार बाजरे की खेती थी । बबूल के काँटें से बाड़ बनाकर सुरक्षित की गयी थी । एक नौ-दस साल का बच्चा अकेले ही धूल से भोजनालय और भोजन बनाने में व्यस्त था । उसने ज्यों ही ध्रुवजी को देखा सहम गया और आर्त स्वर में बोला-

'बाबा ! मेरा घर मत बिगाड़ना ।' ध्रुवजी ने सोचा, हम बाबाओं ने तो अपना घर बिगाड़ ही लिया है, अब इस बच्चे का घर न बिगाड़ना ही उचित है । बायीं ओर खायी, दायीं ओर तीक्ष्ण काँटे, पूरे मार्ग में इसके चूल्हे–चौके पाँव बिलकुल नंगे, फिर भी ध्रुव उसके घर से अपने पाँव को बचाते हुए उसके चूल्हे–चौके से आगे उसके गाँव की ओर पहुँच गये । पीछे की ओर मुस्कुराते हुए देखने लगे । बच्चा कुछ सयाना तो था ही । वह जोरों से हँसा और ताली पीटकर अपने हाथों अपना घर बिगाड़कर जोरों से गाँव की ओर भागा । ध्रुव जी ने सोचा– 'मैंने तो इसका घर नहीं बिगाड़ा, परन्तु मेरे दर्शन से इसमें यह बल और ज्ञान, तो आ ही गया कि अपने हाथों से अपने कृत्रिम घर को बिगाड़कर वास्तविक घर में पहुँच गया ।'

ध्रुवजी एक दिन सायंकाल यज्ञमहोत्सव में पहुँच गये । गुरुदेव भगवान् को प्रणाम किया । परिचित सभी सन्तों, भक्तों और सेवकों ने ध्रुवजी का अभिनन्दन किया । ध्रुवजी भी सबको देखकर परम प्रमुदित हुए । ध्रुवजी पूर्ववत् गुरुजी की निजी सेवा में ही रख लिये गये ।

❋

४१. स्वामी एकरसानन्द

शनैः–शनैः आषाढ़ महीना आया । गुरुपूर्णिमा के अवसर पर मैनपुरी का कार्यक्रम प्रतिवर्ष रहता था । पूज्य स्वामीजी अपने आध्यात्मिक गुरुदेव स्वामी एकरसानन्द सरस्वती जी महाराज की समाधि स्थली पर गुरुपूर्णिमा के दिन पूजन करने जाते थे । स्वामी एकरसानन्द जी महाराष्ट्र के पालीवाल–परम्पराके ब्राह्मण कुल के सन्त थे । प्रयाग कुम्भ से उन्हें शाहजहाँ पुर के लाला लोग उनके शील और साधना के उत्कर्ष आदि से प्रभावित होकर इस क्षेत्र में ले आये थे । वे त्यागी, तपस्वी सन्त थे। दासबोध और योगवासिष्ठ के अध्ययन पर बल देते थे । पहले वे

श्वेतवस्त्र में थे । शिष्यों के अनुरोध से उन्होंने गैरिक वस्त्र धारण किया था । वे मराठी, अंग्रेजी और हिन्दी तीनों भाषाओं में प्रवचन करते थे ।

एक दिन श्रीस्वामीजी ने सेवा में संलग्न श्री जवाहरलाल गोयल से कुछ विचार-विमर्श कर ध्रुवजी को गैरिक (भगवा) वस्त्र पहने के लिए दे दिया । स्वामीजी का अन्तर्निहित भाव यही था कि यह कहीं भटक न जाए, किसी अन्य संन्यासी का शिष्य न हो जाए ।

❋

४२. विचित्र दैवयोग

एक दिन मैंनपुरी में दैवापहारक महाभाग जङ्गल में शौचक्रिया से निवृत्त होने चले । उनके कमण्डलु में जल भरकर ध्रुवजी तथा पीछे-पीछे एक-दो व्यक्ति और भी चले । कुछ दूर जाकर स्वामीजी ने ध्रुव के अतिरिक्त अन्य सभी को लौट जाने के लिए कहा । कुछ दूर आगे चलकर वे बोले- 'ध्रुवजी ! मुझे लोग भगवान् कहते हैं ।'

ध्रुवजी ने कहा- 'प्रत्येक शीलवान् भारतीय शिष्य अपने गुरुदेव को भगवान् ही जानते, मानते और कहते भी हैं । इसमें क्या सन्देह है ?'

स्वामीजी ने कहा- 'यह बात दूसरी है । मैं वह सर्वसामान्य स्वामीजी नहीं जो अपने शिष्यों के द्वारा भगवान् बनाया गया हूँ । ऐसा गुरु तो कोई भी हो सकता है । शास्त्रसम्मत भगवान् के अवतार वाला भगवान् मैं हूँ ।' ध्रुवजी समझ गये । मुझे अन्यों का शिष्य होने से बचाने के लिए भगवा वस्त्र दिया गया। अब लोकोत्तर प्रभाव डालने के लिए यह प्रयोग है । कालप्रेरित देवयोग से ध्रुवजी के मुँह से अत्यन्त कटु बात आवेश पूर्वक निकली- 'आपके देखा-देखी भारत में सैकड़ों व्यक्ति स्वयं को भगवान् कहने लगे हैं । अब आप अकेले ही नहीं, सैकड़ों भगवानों में एक हैं । वस्तुस्थिति यह है कि आप लोगों में कोई भी

सचमुच का भगवान् नहीं है । यदि होते तो असली भगवान् श्रीकृष्ण ने जैसे नकली वासुदेव को मार डाला था ; वैसे ही आप लोगों में जो असली भगवान् होता वह अन्य सभी नकलियों को मार डालता ।'

स्वामीजी को बात असह्य लगी । उन्होंने झटका देकर अनादर पूर्वक ध्रुव के हाथ से कमण्डलु छीनकर शौचक्रिया से निवृत्त होने के लिए आगे बढ़ना प्रारम्भ किया । ध्रुवजी कुछ दूर पैदल चलकर स्वामीजी के लौटने की प्रतीक्षा में खड़े रहे । मन–ही–मन ध्रुवजी ने सोचा जो बात मैंने कह दी है, यह सत्य होने पर भी उनके लिए असह्य है । परन्तु न तो मैं किसी को कह सकता हूँ, और न वे ही । फिर भी इसका बदला तो मुझसे अवश्य लिया जाएगा । अपनी सत्यनिष्ठा और प्रभु की करुणा पर विश्वास कर ध्रुवजी अडिग बने रहे । स्वामीजी लौटे । ध्रुव ने नतमस्तक होकर प्रणाम किया । किञ्चित् हाथ कमण्डलु लेने के लिए बढ़ाया । उन्होंने भी कुछ सोच–समझकर कमण्डलु पकड़ा दिया । ध्रुवजी की निश्छल निरन्तर और निःस्पृहतापूर्ण सेवा से स्वामीजी के घाव भरने लगे । वे पूर्ववत् ध्रुवजी के प्रति स्नेहिल दिखने लगे ।

चातुर्मास्य के पश्चात् विविध कार्यक्रमों को सम्पन्न कर मेरठ पहुँचे । पिलौखड़ी मन्दिर में कार्यक्रम था । एक दिन श्रीविज्ञानपूजन 'चाचाजी' विल्व वृक्ष के समीप खड़े होकर ध्रुवजी से आध्यात्मिक चर्चा कर रहे थे । ध्रुवजी का शरीर सन् ६३–६४ में नैमिषारण्य के प्रथम चातुर्मास्य में ही विस्तर और वस्त्रादि की व्यवस्था न होने से आपाद–मस्तक ठंड से जकड़ गया था । पुनः बदरीनाथ आदि की ठंड ने उस रोग को और पुष्ट किया । फिर भी ध्रुव अद्भुत ओज, तेज से सम्पन्न होकर धरती से उछल–उछलकर बात कर रहे थे । चाचाजी को विस्मय हुआ । उनसे नहीं रहा गया । उन्होंने ध्रुव जी का ध्यान आकस्मिक दिव्यता की ओर आकृष्ट किया । फिर क्या था, ध्रुवजी पछाड़ खाकर

धडाम-से नीचे गिरे । चाचाजी ने उन्हें सम्हाला । ध्रुवजी ने कहा – 'किसी कारण से शरीर की अत्यन्त विस्मृति की दशा में शरीर की यह स्थिति कभी-कभी हो जाती है ।'

एक दिन मेरठ में जवाहरलाल गोयल महाभाग को भिक्षा पवा रहे थे, ध्रुवजी बैठे थे । एक गृहस्थ कोटि के नैमिप में निवास करनेवाले कथावाचक का स्वास्थ्य एकाएक बिगड़ने लगा । लखनऊ आदि के डॉक्टर रोग पकड़ नहीं पाये । एकान्त में भयभीत होना, विचित्र भयङ्कर स्वप्न देखना आदि उपद्रव से वे युवक कथावाचक अत्यन्त खिन्न थे । उनके बारे में गोयल ने जिस साङ्केतिक भाषा में स्वामीजी से बात की, और स्वामीजी ने जो टिप्पणी की वह रोमाञ्चकण्टकित करने वाली थी । गोयल बुलन्दशहर जिला के वैश्य व्यापारी थे । लखनऊ में उनका निवास था । वे योग्य चिकित्सक थे । महाभाग की सेवा में वे रहने लगे थे । वे सेवा करके स्त्रियों की तरह अपनी बात समझा लेने में निपुण थे । उनके सङ्ग से कई परिवर्तन या सुधार महोदय में आने लगा था । विरक्ति का अभिनय करनेवाले समाजवादी और समाजशास्त्री उस गृहस्थ को महोदय का पूर्णभक्त बनाने या जीवन लीला को क्षीणता की ओर अग्रसर करने की भावना से कुछ ऐसा प्रयोग किया गया था, जिसे न कथावाचक समझ रहे थे, न उनके चिकित्सक ही ।

गुप्तजी– डाक्टर भी उसके रोगों को समझ नहीं पाये ।

महोदय– समझ भी नहीं पायेंगे ।

गुप्तजी– प्रयोग शत-प्रतिशत सफल रहा ।

महोदय– तुम्हारे गुरुदेव के चरणों से जो दूर जाने का प्रयास करता है । उसकी यही दशा हो जाती है । ध्रुव के लिए प्रकारान्तर से यह शिक्षा भी थी और चुनौती भी ।

❋

४३. अद्भुत करुणा

श्रीगुरुदेव भगवान् के ध्रुव बहुत ही लाड़ले-प्यारे थे । श्री विमलेश जी आदि महानुभावों का तो आज भी यही कथन है कि जगदाचार्य पूज्य गुरुदेव ने ध्रुव को हृदयरूपी सिंहासन पर बैठाया था ।

स्वामी आत्मानन्द जी को जब से पता चला कि ध्रुव सुरक्षित हैं और गुरुदेव की सेवा में पूर्ववत् संलग्न हैं । तब से वे उनके मोक्षाश्रम आने की प्रतीक्षा करने लगे । मोक्षाश्रम पहुँचने पर ध्रुवजी को एक अभिन्न सखा समझकर उन्होंने हृदय से लगाया । विह्वल होकर एकान्त में कहने लग गये-

"वेदव्यास को जिस प्रकार अनाथ छोड़कर शुकदेव चले गये, उसी प्रकार मुझसे क्या अपराध बना कि तुम मुझे छोड़कर बिना सूचना दिये ही भाग गये ।"

ध्रुवजी ने कहा- 'अपराध तो मुझसे ही बना है । न कि आपसे ।'

आत्मानन्द जी ने कहा- 'मैंने तुम्हारे वियोग से सन्तप्त होकर शौनक को पत्र लिखा- 'अपने रामज़ी की धरोहर को मैंने नष्ट कर दिया', मुझे पर्याप्त खेद था । अच्छा हुआ, तुम आ गये । मैं तो मुँह दिखाने योग्य नहीं रह गया था ।

एक दिन रात्रि के लगभग आठ बजे नैमिषारण्य में शौनककुटी पर ध्रुव को विष खोपड़ा ने काट लिया । ध्रुवजी अचेत होने लगे । युगलजी आदि मित्रों ने ध्रुवजी को प्राङ्गण में बिठाकर गुरुदेव को सूचना दी । गुरुदेव ने उपस्थित साधकों को कहा- 'इनके कानों में उच्च स्वर से जय सच्चिदानन्द कहते रहो और शरीर को हिलाकर सावधान करते रहो, ताकि चेतना लुप्त न हो जाय । वे स्वयं ही 'जय सच्चिदानन्द' उच्च स्वर से कहने लगे । शिष्यगण उनकी उक्ति को दुहराने लगे । बड़े आश्रम तक गुरुदेव की आवाज पहुँचने लगी । सब आश्चर्य चकित

होकर लालटेन, दिया आदि लेकर शौनक कुटी तक दौड़ने लगे । दैवयोग से चातुर्मास्य के दिन थे । पूज्य गुरुदेव के प्रसिद्ध शिष्य कसमण्डा वाले वानप्रस्थी रमलाचार्य भी सूर्यकुण्ड में निवास कर रहे थे । वे भी दौड़े आये । ध्रुवजी सबके प्यारे थे, फिर स्वयं गुरुदेव जिनकी रक्षा में हृदय से संलग्न हैं, उसकी उपेक्षा कौन कर सकता था ? वानप्रस्थी रमलविद्या के तो निष्णात विद्वान् थे ही, मन्त्रविद्या के भी अच्छे जानकार थे । उन्होंने थाली मँगवाई और चूहे के बिल की मिट्टी । थाली विष के प्रभाव से पीठ से चिपक गई । वे उपांशु शैली में मन्त्र पढ़कर थाली पर मिट्टी फेंकते जाते । यह क्रम लगभग सवा घण्टे (७५ मिनटों) तक चला । शरीर निर्विष हो गया । थाली नीचे गिर गयी । इस प्रकार भगवत्प्रेरित गुरुदेव और श्री रमलाचार्य के अनुग्रह से ध्रुवजी बच गये ।

ध्रुवजी यद्यपि जीवन और मृत्यु में समचित्त थे, तथापि पूज्य गुरुदेव के इस अनुग्रह के प्रति पूर्ण कृतज्ञ रहे ।

ध्रुवजी ने सूझबूझ सहित अहर्निश अपनी सेवा से गुरुदेव का हृदय जीत लिया था । ध्रुवजी की प्रतिभा से हतप्रभ और गुरुदेव के ध्रुव के प्रति असाधारण अपनत्व से स्वयं को तिरस्कृत मानने वाले एक-दो व्यक्ति को छोड़कर सभी ध्रुव के प्रति आस्थान्वित थे ।

❀

४४. विवेकानन्द की विकलता

स्वामी विवेकानन्दजी का हृदय विविध आशङ्काओं से भरपूर रहने लगा । वे सोचने और कहने लगे– सभी ध्रुव के प्रति आशान्वित हैं। यह अपने व्यवहार से सबका मन मोह लेता है । इसके प्रवचन से भी सभी प्रभावित हैं । यद्यपि यह हमारी तरह वेदान्ताचार्य और साहित्यरत्न नहीं है । हमारी तरह इसके पास वेद-वेदान्तादि शास्त्र भी नहीं हैं,

जिसका यह अध्ययन कर सके । अहर्निश सेवा के कारण इसके पास अध्ययन के लिए समय भी नहीं । गुरुदेव भगवान् स्वयं विद्वान् न होने के कारण इसको अध्ययन के लिए भी प्रेरित नहीं करते, परन्तु इसके प्रवचन को सुनकर हमें विश्वास नहीं होता कि यह नवीं–दशमी तक ही पढ़ा है । युगल ने तो जनिगाँव में एकान्त में प्रवचन करते सुनकर गुरुदेव भगवान् को और हमको पहले ही बता दिया था कि यह हाईस्कूल शिक्षा प्राप्त व्यक्ति नहीं है, यह उच्च शिक्षा प्राप्त कोई प्राध्यापक लगता है । अपना कोई प्रयोजन साधने के लिए यह स्वयं को कम पढ़ा–लिखा बताता है । सबसे बड़ी बात यह है कि इसके त्याग, शील, सेवा और सबके प्रति सद्भाव से गुरुदेव स्वयं इस पर मुग्ध हैं । इतना ही नहीं, जिस अध्यात्मविद्या के कारण दूसरी–तीसरी कक्षा तक पढ़नेवाले गुरुदेव हम लोगों के भी पूज्य हो गये, और शास्त्रार्थ महारथी माधवाचार्य जैसे विद्वान् के भी श्रद्धास्पद हो गये, उस अध्यात्मविद्या को इसने तोते की तरह रट ली है, और आत्मसात् भी कर ली है । ब्राह्मण तो है ही, हो न हो, महाराज इसी को उत्तराधिकारी न बना दें ! असाध्य रोग होने से पहले ही उसकी चिकित्सा उपयुक्त मानी जाती है ।

❋

४५. चपेटा प्रहार

शौनकजी स्वामी विवेकानन्द के प्रतिद्वन्द्वी थे, परन्तु उन्हें विवेकानन्दजी ने अनुकूल कर लिया । ध्रुव से लोहा लेने के नाम पर वे भी सहमत हो गये । हरियाणा के श्री हरभजनलाल शास्त्री जी को दो सौ रुपये मासिक योगक्षेम पर युगल और ध्रुव जी ने ही रखवाया था और सन्तों, महन्तों तथा राजनेताओं से सम्पर्क का दायित्व भी सौंपा था । वे ध्रुव जी का सम्मान करते थे, परन्तु धनहीन और अधिकारहीन ध्रुव का विरोध करके विवेकानन्दजी और शौनकजी का अनुग्रह प्राप्त कर धन,

मान-लाभ करने के व्यामोह में ध्रुव को तिरस्कृत करने का उन्होंने सङ्कल्प ले लिया । एक दिन ध्रुवजी जब मोक्षाश्रम में अकेले घूम रहे थे, एकाएक शास्त्रीजी पहुँचे और ध्रुवजी के गाल पर एक तमाचा जड़कर बोले- 'विवेकानन्दजी के विरोधी की पिटाई करना हमारा पवित्र दायित्व है ।'

ध्रुवजी ने अनुकूल-प्रतिकूल प्रतिक्रिया नहीं की । सिर-नीचा करके रोने लगे । शास्त्री ने सोचा- 'मुझसे हाथापायी न करके, मुझे गाली आदि न देके, इसने आगे की योजना विफल कर दी ।' हरभजन वहाँ से चल पड़े । ध्रुवजी ने इस घटना की किसी को सूचना नहीं दी । यदि वे गुरुदेव और आत्मानन्द जी तक इस घटना को पहुँचाते अथवा अपने मित्रों से कहते तो हरभजन की अच्छी पिटाई होती और वे अपमानित कर निःसन्देह विदा कर दिये जाते ।

❀

४६. शौनक की प्रताडना

एक दिन शौनक जी बगल में एक झोली लटकाये उस पर मोटे रङ्गीन अक्षरों में लिखकर लाये- 'शौनक ब्रह्मचारी, सेवक स्वामी विवेकानन्द ।'

ध्रुवजी से उन्होंने कहा- 'आँख खोलकर देख लो, इस पर क्या लिखा है । जो स्वामी जी का दुश्मन है । वह मेरा दुश्मन है ।'

गुरुदेव अपने भक्तों- शिष्यों के साथ मोक्षाश्रम से पैदल शोभायात्रा में रामाश्रम जा रहे थे । शौनकजी ने ध्रुव से कहा- 'तुम अपनी लकीर बड़ी करो, दूसरे की लकीर मत मिटाओ ।'

ध्रुव ने कहा- 'जब मैं लकीर का फकीर हूँ ही नहीं, तब कौन-सी अपनी लकीर और कौन सी पराई ? किसकी लकीर छोटी

करनी है और किसकी बड़ी ? परन्तु जिस भाषा में आपने मुझसे कहा है, उसी भाषा में आपको उत्तर देना उपयुक्त है । जब लकीर को बड़ी करने की जगह ही न हो तब उसी लकीर पर चलना है और आगे बढ़ना है ।'

ध्रुवजी के उत्तर को सुनकर शौनक जी निरुत्तर और हतप्रभ हो गये । उत्तर सुनने वाले सभी ठहाका लगाकर हँसने लगे और कहने लगे, मिल गया मुँहतोड़ उत्तर, अब और कुछ कहना है क्या ? कल तक विवेकानन्द जी के विरोधी आज मतलब साधने के लिए सेवक बनके आ गये । फिर क्या था ? शौनक जी भाग गये ।

❁

४७. विवेकानन्द का दुष्प्रयास

अब विवेकानन्द ने सोचा, हरभजन के पीटने पर, शौनक के समझाने पर भी यह चेत नहीं रहा है तो अब इसकी सबके सामने पिटाई होनी चाहिये । देखते हैं, गुरुदेव भगवान् इसका कहाँ तक पक्ष लेते हैं । ऐसे अवसरों पर तो वे तटस्थ ही हो जाते हैं ? फिर लाखों रुपये बाहर से लाकर क्या ध्रुव आश्रम चला सकते हैं । विवेकानन्द ने मोक्षाश्रम के प्राङ्गण में ध्रुव को ताव में आकर घेरना चाहा ध्रुवजी भागकर कुछ दूर चले गये । तब रामसेवक जी से स्वामी ने कहा– 'इसको पीटो । मेरी आज्ञा है ।'

परन्तु पं. रामसेवक जी ने कहा– 'आपके कहने पर मैंने कइयों को पीटा । परन्तु यह हमारा और सबका प्यारा है । निरपराध है, उसे आप स्वयं पीटना चाहें पीट लें, मैं नहीं पीट सकता ।'

विवेकानन्द आगे बढ़े । ध्रुव ने जोरों से कहा– 'अरे, मुझे पीटना हो तो शिवजी के मन्दिर में पीटो', ऐसा कहकर ध्रुव ने छोटे से

शिवजी के मन्दिर में प्रवेश किया। विवेकानन्द जी को मन्दिर में घुसकर स्वयं पीटने का साहस नहीं हुआ ।

❋

४८. शिवकरण का उत्पात

शिवाजी कर्मठ, गुरुभक्त, विनोदी और यदा-कदा क्रूरता का परिचय देने वाले थे । एक बार वे एक के द्वारा ध्रुवजी को दबाये जाते देख उससे झगड़ भी गये थे । परन्तु उनके द्वारा भी ध्रुवजी को कम यातना नहीं मिलती थी । एक बार ध्रुवके दायें पाँव के अङ्गुष्ठ और तर्जनी के बीच काँटें का अंश टूट गया था । उसे निकालने के बहाने से नैमिषारण्य में शिवाजी ने तीक्ष्ण ब्लेड से पर्याप्त अंश काट डाला, बाद में उन्होंने कहा- मुझे इतना नहीं काटना चाहिए था ! परन्तु सहिष्णुता की परीक्षा के लिए मैंने ऊँगलियों के मध्य का अंश निर्ममता पूर्वक अधिक काट डाला । कई बार किसी कार्य से गुरुदेव के द्वारा ध्रुवजी कहीं भेजे जाते तब शिवाजी जीप या कार को लेकर चम्पत हो जाते । ध्रुवजी दस-पन्द्रह किलोमीटर पैदल चलकर उस कार्यक्रम में पहुँच पाते । ऐसे अवसरों पर गुरुदेव अपनी तटस्थता का परिचय देकर मौन रहते । ध्रुवजी शिकायत भी नहीं कर पाते । तितिक्षा के नाम पर सब अनर्थों को सहते जाते । कभी-कभी विवेकानन्दादि ब्राह्मण सन्त को प्रेरित करते हुए ध्रुवजी के शरीर पर उनको चढ़वाकर शरीर को जोरों से कुचलवा देते ।

❋

४९. मलभाण्डोद्धार

एक बार प्रयाग में विचित्र घटना घटी । माघ मेले में शिविर में स्वामीजी निवास कर रहे थे । प्रातःकाल वे शौचालय जाने के लिए

उद्यत हुए । ध्रुव जी ने उनके कमण्डलु में पानी भरकर शौचालय के सन्निकट जाकर दे दिया, वे अन्दर जाकर बाहर लौट आये । उन्होंने नाँक बन्द कर ली । ध्रुवजी ने स्वामीजी को इस दशा में देखकर स्वयं शौचालय में प्रवेश किया, देखा गाँधी पिट जैसे शौचालय के नीचे कड़ीदार टीन का पात्र मल से भरा हुआ है । विचित्र दुर्गन्ध है । ध्रुवजी ने सोचा सफाई कर्मी को बुलवाने और शौचालय को परिष्कृत करने में घण्टे भर का समय लग जाना स्वाभाविक है । तब तक शौच का वेग रोके रहना गुरुजी के लिए सम्भव नहीं । अगत्या ध्रुवजी ने मलनिधि के कड़ियों को पकड़कर मलपात्र को उठा लिया और गेट के बाहर एक गड्ढे में डालकर उसे बालू से ढक दिया । तथा मलपात्र को यथास्थान रख दिया । ध्रुवजी एक ब्रह्मचारी को स्वामीजी की सेवा में सौंप कर लौटे और सर्वदानन्द जी से कहा– 'उस परिस्थिति में मैंने अगत्या वह कार्य किया है । मुझे प्रायश्चित्त बताइये ।'

श्रीसर्वदानन्द ने कहा– इसमें प्रायश्चित्त की क्या बात है ? आपने पुरस्कार का कार्य किया है । कोई शौकिया तो उस मलभाण्ड को उठाया नहीं । गुरुसेवा की दृष्टि से अगत्या उठाया है । फिर आप तो आत्मा की नित्यशुद्ध की दृष्टि से सम्पन्न हैं । हाथ–पाँव अच्छी तरह धोकर सचैल स्नान कर वस्त्र वदल लेना ही पर्याप्त है ।

ध्रुवजी ने अपने से आयु में बड़े वेष में पुराने ब्रह्मचारी जी की बात मानकर वैसा ही किया । शिवाजी ने अच्छा मौका देखा । शोर मचाना प्रारम्भ किया, अवाच्य वचनों से ध्रुवजी को लताड़ना प्रारम्भ किया, देखो–देखो, इसे मलमूत्र से कोई परहेज नहीं है । राम–राम ! इसने कितना वीभत्स कार्य किया है । जो कार्य सफाई कर्मी को करना चाहिए, वह इसने किया है । अब इसके हाथ का पानी भी पीना अनुचित है ।.....

समुपस्थित सभी ध्रुवजी में आस्थान्वित ही थे । सबने कहना प्रारम्भ किया । 'राम-राम, शिवाजी आज तुम्हें हो क्या गया है ? व्यर्थ ही निरपराध को अभद्र वचनों से प्रतारित कर रहे हो । बताओ तुम्हारे सामने वह परिस्थिति होती जो ध्रुव के सामने थी तो तुम क्या करते ? सफाई कर्मी को बुलवाकर सफाई कराने में घण्टे-दो घण्टे लगवाकर गुरुदेव भगवान् को खड़े रखते या गुरुजी से ही सफाई करवाते ? या सेवा से भग जाते ?'

ध्रुवजी को सबकी दृष्टि में नीचा दिखाने की भावना प्रताड़ित हुई, तब उन्होंने नया प्रकार अपनाया । आप लोग मेरी बात पर ध्यान न देकर ध्रुव का पक्ष ले रहे हैं । अन्याय कर रहे हैं । अब मैं गुरुदेव भगवान् से इसकी शिकायत करूँगा ।

सबने कहा- गुरुदेव भगवान् से इसकी शिकायत क्या करोगे, जब गुरुदेव के सामने और गुरुदेव के लिए अगत्या ध्रुवजी ने वह कृत्य किया है । अब तो शिवाजी हतप्रभ निरुत्तर होकर अपना-सा मुँह लेकर चल पड़े ।

❋

५०. मल्लक्रीड़ा

पूज्य चरणों के ड्राइवर शिवकरण सिंह (शिवाजी) आदि परिकर पीलीभीत के कार्यक्रम में उपस्थित थे । किसी दायित्व के निर्वाह की व्यवस्था के कारण ध्रुवजी पूज्य गुरुदेव के साथ सभामञ्च पर नहीं जा पाये । शिवाजी भी निवासस्थल पर ही थे । ध्रुवजी के कमरे में आकर शिवाजी हास-परिहास के बहाने ध्रुवजी को प्रताड़ित करने लगे । ध्रुवजी ने सोचा बलजन्य उन्मत्तता ही शिवाजी की इन गतिविधियों का एकमात्र कारण है । गुरुदेव इन सबसे परिचित होने पर भी मौन व्रत धारण कर तटस्थता का परिचय देते हैं । मैं कभी किसी की शिकायत भी नहीं

करता; परन्तु **'अति सर्वत्र वर्जयेत्'** अब शिवाजी के उत्पात्तों का उचित उपचार होना ही चाहिए। ये शरीर से बलवान् और आयु में कुझसे दस वर्ष से अधिक ही होंगे। मैं तो सेवा में संलग्नता के कारण एक महीने में दो-तीन दिन भूखे भी रह लेता हूँ। फिर भी आज भगवत्कृपा से इनके बल का अभिमान तोड़ना ही चाहिए।

ध्रुवजी ने शिवाजी से कहा- 'क्या आप कुश्ती लड़े बिना नहीं मानोगे ?' फिर क्या था, शिवाजी वेगपूर्वक उठ खड़े हुए और ताल ठोंकने लगे। ध्रुवजी ने कहा- 'किवाड़ बन्द कर दो। आओ हमसे भिड़ लो।'

ऐसा कहकर ध्रुवजी ने दाव के बलपर चन्द क्षणों में शिवाजी को दो-तीन बार उठाकर पटका। शिवाजी के घुटने में चोट लगी। शिवाजी काँपने लगे। ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे।

शिवाजी लज्जित हुए। उन्होंने विवेकानन्दजी से एकान्त में सारी घटना बता दी। विवेकानन्द जी के आश्चर्य और भय का ठिकाना न रहा। कभी-कभी पहलवान की तरह डील डॉल वाले विवेकानन्दजी मनोविनोद के लिए शिवाजी से भिड़ जाते। शिवाजी उन्हें बड़ी सुगमता पूर्वक पटक डालते। जो शिवाजी इतने बलवान् थे, उन्हीं को ध्रुवजी ने अनायास ही जब दो-तीन बार पटककर अधमरा कर दिया तो विवेकानन्द आग बबूले होकर ध्रुव के पास आ गये। उन्होंने कहा- 'आज तुमने यह क्या किया ? अरे ! आज तुमने शिवाजी को दे पटका, कल तुम मुझे दे मारोगे। क्या तुम यहाँ पहलवानी करने आये हो ? या साधन भजन करने। आज मैं तुम्हारी शिकायत गुरुदेव भगवान् से किये बिना नहीं रहूँगा।'

ध्रुवजी ने कहा- 'मेरी भी भावना और प्रार्थना है कि आज ही और अभी इस घटना की गुरुजी को अवश्य सूचना दें। मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।'

फिर शिवाजी और विवेकानन्द जी ध्रुव के प्रति प्रकट रूप से अमानुषिक व्यवहार से बाज आये। शिवाजी के घुटने में चोट लगी थी। जो देखते वही पूछते- 'शिवाजी ! यह क्या हो गया।' शिवाजी कहीं लज्जित होकर मुँह लटका देते, कहीं चीखकर कहते 'ध्रुव ने उठाकर पटक डाला।'

ध्रुवजी के प्रचार न करने पर भी यह बात चारों ओर फैल गयी। बल का अभिमान चूर हुआ। शिवाजी के दुर्व्यवहार से घायलों को आराम मिला। फिर तो शिवाजी ने ध्रुवजी से गाढ़ी मैत्री कर ली और समय पर सत्सङ्ग करने लगे। योगवासिष्ठ आदि की पहेलियों को सुलझाने लगे। विवेकानन्द ध्रुवजी को देखते ही पूर्ववत् आक्रोश के स्थान पर मुस्कुराकर निहारने लगे। ठीक ही है **'भय बिनु होई न प्रीति'**।

❋

५१. वेगधारण का कष्ट

एक बार कानपुर में यज्ञोत्सव था। बीच में एक दिन के लिए गुरुजी ने श्री तुलसीदासजी की जन्मभूमि बाँदा जिलान्तर्गत राजापुर का कार्यक्रम ले लिया। सूर्यास्त के पूर्व सहसा गुरुजी ने राजापुर में ध्रुवजी से कहा- 'ध्रुव, सबको कह दीजिए और कानपुर लौटने की तैयारी कीजिए।'

ध्रुवजी ने कहा- 'ठीक है। परन्तु मुझे शौच-स्नान से निवृत होने के लिए थोड़ा समय चाहिए।'

गुरुजी ने कहा- 'यहाँ से तैयारी करके चल दीजिये। शिवाजी से कह दीजिए। यमुना के उस पार गाड़ी रोक देंगे। आप झटपट से निवृत्त हो लेंगे।'

गाड़ी चल पड़ी यमुना के पार पहुँची । ध्रुवजी ने कहा– 'शिवाजी ! मुझे शौच का वेग लगा है । थोड़ी देर कार रोक लीजिए ।'

गुरुजी ने हस्तक्षेप करते हुए कहा– 'यहाँ से सीधे कानपुर जाना है । किसी को लघुशंका करने के लिए भी मौका नहीं मिलेगा ।'

बात तो सबको बुरी लगी । परन्तु किसी ने इस निर्णय को अनुचित नहीं बताया । ध्रुवजी व्याकुल थे । शौच को बल और वेग पूर्वक रोके रहने के कारण कष्ट भी बहुत पा रहे थे । चलते यान से कूदना भी उचित नहीं था । कार बल पूर्वक रुकवाकर सम्बन्ध तोड़कर भगना भी तभी सम्भव था, जब शिवाजी कार रोकने में साथ देते । कार तीव्र गति से चली, कानपुर पहुँची । ध्रुवजी के लिए एक-एक क्षण अपार वेदना दे रहा था । प्रवचन मंच पर सभी पहुँच गये । ध्रुवजी जीप से कूदे । परन्तु सङ्कट में फँस गये । प्रवचन स्थल से लगभग आधा किलोमीटर पर ही धर्मशाला में सभी रुके थे । परन्तु उस धर्मशाला का नाम भी ध्रुवजी को विदित नहीं था । शौच के वेग को थामे और धर्मशाला को ढूंढ़ते ध्रुवजी दैवयोग से धर्मशाला पहुँच गये । दूसरे खण्ड पर निवास स्थल तक पहुँचे । शौचालय में वेगपूर्वक घुसे । शौचक्रिया से निवृत हुए ।

उच्चस्तर पर मानवीय मानबिन्दुओं की अवहेलना की इस घटना ने ध्रुवजी के अन्तस्थल को झकझोर दिया । परन्तु इस प्रकार की पूर्व की घटनाओं ने और आगे घटनेवाली रोमाञ्चकारी हृदय विदारक विषजालों ने भी ध्रुव के मन में स्वप्न में भी यह भाव उदित नहीं होने दिया कि 'इससे तो अच्छा परिवार में निवास ही था । इन विघटनकारी घटनाओं से पिण्ड छुड़ाकर प्रवृत्ति मार्ग का आलम्बन लेना ही उपयुक्त था' उनके मन में यही भाव बना रहता कि **'सब प्रकार से निवृत्तिमार्ग का अनुशीलन ही हितकर है । जो भी विपत्तियाँ आती हैं, वे केवल**

भविष्य की सुदृढ़, भूमिका बनती जाती हैं । भगवान् के प्रति जिसका सम्पूर्ण जीवन समर्पित है, उसके जीवन में भगवत्प्रेरित और भगवत्प्रदत्त ही घटनाएँ घटती हैं । भगवान् के नियन्त्रण के बाहर कुछ भी नहीं होता ।' ऐसा निश्चय ध्रुवजी के हृदय में सदा प्रतिष्ठित था ।

❀

५२. तीर्थयात्रा

एक बार स्वामी विवेकानन्दजी ने कानपुर से तीर्थयात्रा ट्रेन की योजना बनाकर सारी व्यवस्था सम्पन्न की । गुरुजी ने ध्रुवजी को आग्रहपूर्वक बार-बार यात्रा ट्रेन में चलने को कहा । शौनकजी आदि परिकर और सात सौ तीर्थयात्री चले । शौनकजी ने कमेटी में कहा– 'ध्रुवजी को तीर्थयात्रा के लिए नहीं, बल्कि रेल रक्षा के लिए लाया गया है । अतएव जिस समय यात्री लोग दर्शन के लिए जायेंगे, उस समय ये रक्षा में नियुक्त रहेंगे ।'

यद्यपि यह बात सर्वथा असत्य और विद्वेषपूर्ण थी, तथापि स्वामीजी ने ऐसे अवसरों पर अपने स्वभावसिद्ध मौन का आलम्बन किया । ध्रुवजी ने ईश्वरेच्छा पर छोड़कर अपमान सह लिया । हाँ, मन में यह भाव उदित हुआ कि मुझे तो आग्रहपूर्वक बिना किसी शर्त के लाया गया है । तीर्थयात्रा ही करनी होगी तो कभी इससे अधिक कष्ट सहकर पैदल ही कर लेंगे ।

गया के समीप ट्रेन पहुँची । सहसा वेगपूर्वक रुकी । पता चला एक डब्बे के फीते को किसी ने काटा है । इतने में देखा, दो युवक फीते को लेकर घसीटते हुए भगे जा रहे हैं । गुरुजी ने जोर देकर कहा– 'ध्रुवजी ! ध्रुवजी ! दौड़िये इन युवकों के चंगुल से फीते को छीनकर लाइये ।'

३. नैमिषारण्यवास

धुवजी ट्रेन से कूदे । द्रुतगति से दौड़ने लगे । डब्बे से आवाज आयी – ध्रुवजी मार डाले जाओगे, मत दौड़ो । केवल एक युवक रसोइया जो ध्रुवजी का अत्यन्त लाड़ला था, पीछे से दौड़ना प्रारम्भ किया । परन्तु वह बहुत पीछे था । ध्रुवजी ने फीते का एक सिरा पकड़ लिया । उधर दो युवक इधर अकेले ध्रुवजी, इतने में वह युवक भी आ पहुँचा । उसने भी फीते को कसकर पकड़ा । उन दो युवकों ने मारने की धमकी दी । ध्रुवजी ने परवाह नहीं की । ध्रुवजी और मदन फीते को दुष्टों की पकड़ से मुक्त कर घसीटते हुए डब्बे के समीप ले आये । मिस्त्रियों ने उसे यथास्थान लगाया । ट्रेन चली । कुछ दूर आगे देखा, सैकड़ों मुसलमान लाठी, भाला आदि लिए ट्रेन लूटने की योजना को क्रियान्वित करने के लिए तत्पर थे । अपनी योजना को विफल देखकर यात्रियों को लाठी, भाले दिखाकर आक्रोश प्रकट कर रहे थे । सबने बिलाप करना प्रारम्भ किया– 'ध्रुव ने हमें बचा लिया । नहीं तो समान गवाँते, मारे जाते । महिलाओं ने कहना प्रारम्भ किया – हम तो तीर्थयात्रा के नाम पर इन कसाइयों के द्वारा इज्जत भी गवाँ बैठतीं । इस ध्रुव ने हमें बचाया ।'

स्वप्न में भगवान् ने ध्रुवजी को **गीतगोविन्द** के गान का और गया में अपने चरणचिह्न के दर्शन का आदेश दिया । ध्रुवजी के पास दो रुपये भी अपने नहीं होते थे । अत एव उन्होंने गुरुजी से 'गीतगोविन्द' मंगा देने की प्रार्थना की । उन्होंने मंगा दी । पुस्तक आ गयी, ध्रुवजी ने हृदय और मस्तक से ग्रन्थ लगाकर प्रभु की आज्ञा को पूर्ण माना । **'मङ्गलगीतम्'** आदि एक दो पदों का गान भी गुनगुनाकर कर लिया । समयाभाव और विविध प्रकार के तनाव में गीतगोविन्द का साङ्गोपाङ्ग पाठ सम्भव नहीं हो सका । शौनककृत प्रतिबन्ध के कारण चरणदर्शन तो तैंतीस वर्ष बाद ही सध सका ।

३. नैमिषारण्यवास

स्वामी विवेकानन्द जी और शौनक जी में किसी बात पर मनमुटाव हुआ। शौनकजी यात्रा छोड़कर कानपुर लौट गये।

दक्षिण भारत में गोदुग्ध और फलाहारी सामग्री न मिलने से गुरुजी के फलाहार में विघ्न उपस्थित होने लगा। कुछ मखाना, कुछ छोटे-छोटे रामदाने के लड्डू आदि ही बच पाये थे। एक दिन जवाहरलाल गोयल ट्रेन में ही रह गये थे। उन्हें भूख लग गयी, जलपान की कोई सामग्री नहीं थी। गोयल ने ध्रुवजी से गुरुजी के फलाहार की सामग्री को मिलकर खाने की कूटनीति चली। ध्रुवजी की साफ अस्वीकृति मिलने पर बलपूर्वक शपथ देकर ध्रुवजी की हथेली में चूर्ण के तुल्य सामग्री रखकर अधिकांश सामग्री वे चटकर गये। गुरुजी आये। फलाहार के समय भूख की पीड़ा ने उन्हें जीवन में पहली बार मुखर बना दिया। उन्होंने कहा- फलाहार की शेष सामग्री क्या हुई ? गोयल ने झट से कहा- 'ध्रुव ने खा ली' गुजी ने कहा- 'तब तो मैंने ही पा ली'।

अर्जुनमल दुजारी राजस्थानी थे। दिल्ली में वकील थे। आर.एस.एस. के सदस्य थे। न जाने किस उद्देश्य से गुरुजी के साथ रहने का व्रत ले लिया। वे गुरुजी का बारीकी से अध्ययन करते। वे ध्रुवजी की प्रतिभा और सहिष्णुता से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने एक दिन गोष्ठी में प्रश्न उठाया कि ध्रुवजी सुरक्षा के नाम पर डब्बे में पड़े रहें, यह कहाँ तक उपयुक्त है ?

दिल्ली की साइन्स की पढ़ाई छोड़कर अध्यात्म की ओर अग्रसर होने वाले, जी जान से सेवा करने वाले, महाराज के परिकरों में सबसे अधिक योग्य भी सिद्ध हो रहे हैं। परन्तु ये सब तरह से दबाये जाते हैं। इन्हें विविध यातना भी दी जाती है। उस दिन गया के पहले हम सबों के जीवन की इन्होंने अपनी सूझबूझ से रक्षा की। पूरी ट्रेन में केवल ध्रुव आपकी आज्ञा के पालक सिद्ध हुए। कहाँ गये शौनक जी ? साथ लाये

गये मजदूर पहलवान और ट्रेन रक्षक सेवक वृन्द ? आज इनसे यह प्रतिबन्ध हटाया जाए, नहीं तो मैं विद्रोही बन जाऊँगा । गुरुजी ने देखा मामला बिगड़ रहा है । गुरुजी ने कहा– 'ध्रुवजी आप बतावें, आप इस ट्रेन में कैसे और क्यों लाये गये ?'

ध्रुवजी ने कहा– 'मैं आपके प्रबल आग्रह पर लाया गया हूँ, किसी शर्त पर या किसी की सिफारिश पर नहीं । मैं इतना ही जानता हूँ । परन्तु शौनकादि समाजवादी तत्त्व जो आपके यहाँ आध्यात्मिक नेता के रूप में दर्शाये जाते हैं । मेरी यात्रा को जो विकृत रूप दिया, वह मानवीय धरातल पा कथमपि उचित नहीं । फिर भी मैंने कहीं कभी मुँह नहीं खोला । ईश्वरीय मङ्गलमय विधान समझकर सहता गया । मेरे प्रति जो भी अभियोग लगाया जाता है, षड्यन्त्र चला जाता है, मैं एक मूर्ख के तुल्य सहता जाता हूँ । मैं अध्यात्म के नाम पर यहाँ के निम्नातिनिम्न स्तर पर मुग्ध और क्षुब्ध हूँ । कहाँ रामराज्य और धर्मराज्य की स्थापना का उद्देश्य और कहाँ यह निम्नस्तर ।'

गुरुजी ने कहा– 'ध्रुवजी पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है ।' सोमनाथ और द्वारका आदि तीर्थों का दर्शन उक्त न्याय से सध सका । कुरुक्षेत्र में नई ट्रेन की व्यवस्था में तीन दिनों का समय लगा । अर्जुनमल दुजारी जी कार्यवश ट्रेन छोड़ चुके थे । पुनः कुचक्रकारियों ने गुरुदेव से प्रतिबन्ध लगवा दिया । कुरुक्षेत्र का दर्शन नहीं सध सका । बीस वर्ष बाद कुरुक्षेत्र आने का अवसर सुलभ हुआ ।

❋

५३. नाई की कुटिलता

जिस युगल जी की चर्चा पहले की जा चुकी है, वे नापित थे । वर्ण की हीनता ब्राह्मण बहुल वातावरण में रहने के कारण उन्हें अधिक

खटकती थी । वे प्रायः मन-ही-मन संतप्त रहते थे । यद्यपि ध्रुवजी ने उन्हें कईबार दिग्गज व्यक्तियों से तिरस्कृत होने से बचाया था । परन्तु बहती गङ्गा में हाथ धोने की कहावत को चरितार्थ करने की भावना से उन्होंने ध्रुवजी को तिरस्कृत करने का एक घातक मार्ग अपनाया । उन दिनों अलीगढ़ जिला के बढई स्वयं को मैथुल (मैथिल) ब्राह्मण कहने लगे थे । उन्होंने रामभरोसे रसोइये आदि को कह दिया यह बढ़ई है, ब्राह्मण नहीं । स्वयं भी एकान्त में बसूला चलाने का अभिनय करके ध्रुवजी को पीड़ा-पहुँचाने का प्रयास किया । यह बात धीरे-धीरे विज्ञानपूजन चाचाजी के कानों में पड़ी । उन्होंने अपने सम्बन्धी एक अध्यापक जो कि नैमिषारण्य से शुक्लागंज (उन्नाव) ब्रह्मचर्याश्रम में स्थानान्तरित हुआ था, उसे बता दी । दैवयोग से रामभरोसे नामक रामानन्दी तिलक वाले साधु जो कि नैमिषटीला पर रसोई बनाने की सेवा करते थे उनका स्थानान्तरण भी शुक्लागँज में हो गया । ध्रुवजी यात्रा के प्रसङ्ग में गुरुदेव के साथ चार-पाँच दिनों के लिए शुक्लागंज गये । ब्रह्मचर्याश्रम के सभी ब्रह्मचारी जो कि ध्रुवजी को अत्यन्त पूज्य मानते थे, वे उपेक्षा की दृष्टि से देखने लग गये । रामभरोसे ने अत्यन्त अपमान पूर्वक दूर बैठाकर ध्रुवजी को भोजन दिया ।

ध्रुवजी ने बचपन में सातवीं कक्षा में एक निबन्ध पढ़ा था । उसका सारांश उन्होंने निकाला था- **'नम्रता के नाम पर दब्बू बन जाना उचित नहीं । सत्यवादिता के नाम पर उच्छृङ्खलता उचित नहीं ।'** उन्होंने विद्यार्थी जीवन में इस तथ्य का पूर्ण निर्वाह किया था । साथ ही ध्रुवजी के व्यक्तिगत जीवन में समत्व स्वभावसिद्ध था । वे एक तितिक्षु ब्राह्मण के रूप में जीवन-यापन करना उपयुक्त समझते थे । परन्तु तितिक्षा के नाम पर सिद्धान्त की हानि कथमपि उचित नहीं समझते थे । उन्होंने इस सम्बन्ध में नैमिषारण्य में ही मन में एक मानबिन्दु की

अवधि निर्धारित कर ली थी, जिस दिन रोटी आदि कच्चा भोजन ब्राह्मणेतर से परोसवाया जायेगा और चौके में न सही, परन्तु भोजन करने की परिधि के बाहर भोजन लेने का प्रस्ताव लाया जायेगा, उस दिन उनके लिये यह तिरस्कार असह्य होगा । परन्तु अफवाह फैलाने वालों को यह पता था कि ध्रुव उच्च कोटि के ब्राह्मण हैं, वर्णाश्रम में आस्थान्वित हैं। वे वर्णाश्रम को घृणामूलक न मानकर दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टि से भी समीचीन और शास्त्रसम्मत मानते हैं। उनकी दृष्टि में अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहादि यम-नियमों की क्रमशः परिपूर्ण प्रतिष्ठा के लिए वर्णाश्रम एकमात्र अमोघ उपाय है । वे प्रकृतिप्रदत्त भेद का सम्यक् पालन और सञ्चालन के लिए तथा समस्त भेदभूमियों के अतिक्रमण के लिए मान्य मार्ग होने से वर्णाश्रम का पालन आवश्यक मानते हैं। स्वधर्मानुष्ठानरूप भगवदाराधना से सबका कल्याण सुनिश्चित समझते हैं।

ध्रुवजी के मौन का एक कारण यह था । दूसरा कारण यह भी था कि ध्रुवजी श्रीकृष्ण भगवान् की ओर से शास्त्र के नाम पर स्वपूजादि के प्रकार तथा वहाँ की प्रचारशैली और व्यक्तिनिर्माण में चमत्कार के अध्ययन के लिए भेजे गये थे, अतः बीच में पलायन या युद्धघोषणा को वे अनुचित मानते थे ।

ध्रुवजी के मौन का एक कारण यह भी था । गुरुजी के परिकर का स्तर इतना गिरा हुआ था, जिनके साथ रहकर ध्रुवजी प्रारब्धक्षय ही कर सकते थे, न कि उन्मुक्त व्यवहार । अवश्य ही 'श्रीविमलेश जी, आम् हरि जी' आदि कुलीन और सुशील महानुभाव भी थे । जो ध्रुवजी के उत्कर्ष में यथावसर सर्वाधिक सहयोगी भी बना करते थे ।

शुक्लागंज ऋषि आश्रम के प्रधानमन्त्री (सञ्चालक) श्री दधीचि पूजन जी क्षत्रिय कुल के वानप्रस्थी थे। शनैः-शनैः उनके कानों तक यह चर्चा इस दुरभिसन्धि से पहुँचाई गयी कि वे पूज्य गुरुदेव तक इस बात को पहुँचावें कि ध्रुवजी बढ़ई होते हुए भी कपटपूर्वक ब्राह्मण बनकर रह रहे हैं। यद्यपि विद्यालयके प्रधानाचार्य मैथिल ब्राह्मण थे, जिन्हें ध्रुवजीके कुल-शीलादिका पता श्रीबापूजीके प्रधानमन्त्रित्व कालमें ही लग चुका था। प्रयोग उल्टा पड़ा। दधीचि पूजन जी साइन्स से ग्रेजुएट हैं इंग्लिश में कविता भी करते हैं, योगपथ के पथिक हैं, यह तो षडयन्त्रकारियों को विदित था। किन्तु वे भी मिथिला वासी हैं, यह पता नहीं था।

एकान्त में दधीचि पूजन मिले। उन्होंने ध्रुवजी के जन्मस्थान, गोत्र, सूत्र आदि की जानकारी प्राप्त कर कहा– "मैं वहाँ पुलिस इन्सपेक्टर रह चुका हूँ। आप निश्चिन्त रहिये, आज ही मैं इन दुष्टों की दुरभिसन्धि विफल करता हूँ। उन्होंने अध्यापक को और रसोइयों को धमकाया और युगल को भी पर्याप्त लथाड़ा। वही रामभरोसे ध्रुवजी के शङ्कराचार्य होने के बाद उन्हीं से संन्यास की दीक्षा का आग्रह करने लगा। शङ्कराचार्य ने ब्रह्मचारी के रूप में ही रहने का परामर्श दिया।

इस प्रकार भगवत् प्रेरित हृदय से दधीचिपूजन महाभाग ने एक बहुत बड़े सङ्कट से ध्रुवजी को मुक्त किया।

❁

५४. स्वामी आत्मानन्द का महाप्रयाण

यात्रा ट्रेन के बाद ग्रीष्म में ऋषिकेश में प्रतिवर्ष की भाँति शिविर का आयोजन हुआ। स्वामी आत्मानन्द जी ने ध्रुवजी को हृदय से लगाया। उन्होंने यात्रा ट्रेन की गतिविधियों का विस्तारपूर्वक वर्णन सुनाने के लिए भी ध्रुवजी को प्रेरित किया।

३. नैमिषारण्यवास

स्वामी जी भावराज्य में अधिक जीते थे, व्यवहार राज्य में कम । यह तथ्य पहले सिद्ध किया जा चुका है । उनके अग्रज ने उन्हें जन्मभूमि आकर अभिनन्दनग्रन्थ स्वीकार करने का आग्रह किया । उन्होंने पत्र लिखा– 'यह तभी सम्भव है जब, मेरे साथ आप पाण्डवों की तरह स्वर्गारोहण करें ।' भैयाजी ने वचनवद्धता प्रकट की और एक दूत को उन्हें जन्मभूमि लाने कि लिए भेज दिया । स्वामी आत्मानन्दजी किं कर्तव्य विमूढ हो गये । उन्होंने दूत से कहा– 'सुना है, ध्रुव भी आ गया है । मेरी भावना है, कि जब ऋषीकेश स्वामी जी और ध्रुवजी दोनों आवें, तब स्वामी जी की आज्ञा और ध्रुवजी की अनुमति लाभ कर ही जन्मभूमि के लिए प्रस्थान करें । 'दूत तो यमदूत था' । प्रयोजन सिद्धि के लिए वह डटा रहा । उसे यह भी पता चल गया कि जन्मभूमि जाने के लिए सङ्कोचवश आत्मानन्दजी गुरुदेव भगवान् से स्वयं आज्ञा नहीं मागेंगे, ध्रुवजी के माध्यम से ही यह कार्य सम्पन्न होगा । अपनी अनुमति ध्रुवजी स्वयं दें या न दें, यह भी उन्हीं के ऊपर निर्भर करता है । दूत ध्रुवजी की आगे–पीछे करने लगे । ध्रुवजी ने स्वामी जी की मन:स्थिति और किं कर्त्तव्यविमूढता और दूत के आग्रह से गुरुदेव को अवगत कराया । गुरुजी ने कहा– 'ऐसी परिस्थिति में स्वामी जी को जन्मभूमि जाकर शीघ्र लौटने का कार्यक्रम बनाना चाहिए ।' यही सम्भावना थी । स्वामी जी ने ध्रुवजी से अपनी राय व्यक्त करने का आग्रह किया, महाराज की आज्ञा के पश्चात् मेरी राय या अनुमति का कोई महत्त्व नहीं है । मैं इसे प्रवल प्रारब्ध ही समझता हूँ । मेरी राय में अभिनन्दन समारोह के वाद भाई और भाभी को यहाँ साथ लेकर फिर यहाँ से स्वर्गारोहण का निर्णय भी देश, काल, परिस्थिति और विरक्ताश्रम के उपयुक्त नहीं है । परन्तु अब सबकुछ दैवाधीन और वचनबद्धता के कारण उपयुक्त ही है ।'

३. नैमिषारण्यवास

ध्रुवजी के गम्भीर आशय को सुनकर स्वामी जी गम्भीर और हतप्रभ–सरीखे हो गये । शिविर सम्पन्न हुआ । देहरादून, मैनपुरी आदि क्षेत्रों की यात्रा करते हुए गुरुदेव के साथ ध्रुवजी नैमिषारण्य आये । एक दिन ध्रुवजी के नाम उस दूत का विस्तृत पत्र आया–

............अभिनन्दन समारोह पूर्ण हुआ । स्वर्गारोहण की तैयारी प्रारम्भ होने लगी । स्वामी जी को पक्षाघात ने दबोच लिया । ...... अमुक तिथि को स्वामीजी ने आवेश पूर्वक कहा– लाओ मेरा कमण्डलु। मैं स्वर्गारोहण के लिए प्रस्थान करूँगा । सहसा वे खड़े हो गये । हाथ में कमण्डलु लेकर एक–दो कदम उत्तर की ओर चले । धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़े । दम तोड़कर हम सबको अनाथ कर गये । ... आप जानते हैं कि मोक्षाश्रम में उनके कमरे में एक–दो आलमारियाँ पुस्तकें और कीमती ऊनी वस्त्र हैं । कृपया गुरुदेव भगवान् से आज्ञा लेकर उन सब सामग्रियाँ को आप जन्मभूमि पहुँचाइये । स्वामीजी के स्मारक में उनका उपयोग होगा ।

ध्रुवजी ने गुरुदेव को पत्र सुना दिया । गुरुदेव ने मुस्कुराते हुए मौन धारण कर लिया ।

जिन्हें लक्ष्मण और छोटे भाई कहकर पुकारा जाता था । जिनके आगमन की प्रतीक्षा महीनों पूर्व से होती थी, उन्हीं के दिवङ्गत होने पर एक पल का मौन भी नहीं, एक बूंद आंसू नहीं, कोई श्रद्धाञ्जलि सभा नहीं।

शौनक जी ने स्वामी जी की सहमति से 'उद्बोधन समिति' का गठन किया था । उद्बोधन समिति की ओर से उन्होंने उद्बोधन पत्रिका का एक विशेषाङ्क स्वामी आत्मानन्द जी के संस्मरण में निकाला ।

❋

५५. रजनीश – प्रलाप

एक बार हरभजन शास्त्री के परिश्रम से फिरोजाबाद में भव्य यज्ञादि महोत्सव का समायोजन हुआ । उसमें शास्त्रार्थ महारथी पं. माधवाचार्य जी, पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीनिरञ्जन देवतीर्थ जी, रजनीश जी एवं श्याम जी पराशर आदि प्रवक्ता आमन्त्रित थे । संयोगवश रजनीश जी महोत्सव के प्रारम्भ में पधारे । आचार्य रजनीश जी के आरम्भ के पाँच-सात मिनटों के प्रवचन ने सबके मन को मोह लिया, उसके बाद के प्रवचन ने सनातन मानबिन्दुओं पर कुठाराघात करना प्रारम्भ किया । भूमिहारवंशप्रसूत विन्ध्येश्वरी प्रसाद तो इतना क्षुब्ध हुआ कि सिंहगर्जन के साथ उनपर पीछे से झपटा, परन्तु बलपूर्वक लोगों ने उसे काबू में कर लिया । नहीं तो कुछ भी अमङ्गल काण्ड हो सकता था । स्वामी नारदानन्दसरस्वती जी के लिए प्रयुक्त गुरुदेव भगवान् सम्बोधन की भी उन्होंने कटु आलोचना की । परन्तु उस आलोचना ने आचार्य रजनीश को भगवान् रजनीश कहलवाने का व्यसनी बना दिया । रजनीश मञ्चसे चले जानेपर उनके प्रवचनके कुप्रभावके शमन की भावना से गुरुदेवने ध्रुवजीको माइक थमाया ।

*

५६. ध्रुव का उत्कर्ष

पं. माधवाचार्य ने गुरुदेव भगवान् से एकान्त में कहा– आपने विवेकानन्द, शौनकादि बहुत से वक्ता तैयार किया है । परन्तु वैदुष्यपूर्ण, युक्ति-युक्त, प्रभावशाली कोई भी वक्ता तैयार नहीं किया । हाँ भीड़ जुटाने के लिए भागवत कथावाचक श्री जगन्नाथ अवश्य ही चमत्कारी वक्ता आपके यहाँ हैं । आपके ब्रह्मचारियों में प्रभावशाली व्यक्तित्व के साथ-साथ वैदुष्ययुक्त प्रवचन करनेवाला कोई नहीं है । गुरुजी ने

कहा– 'है ! आप प्रवचन सुनकर पूर्ण सन्तुष्ट होंगे और आनन्द विभोर भी ।' फिर क्या था, दोनों मञ्च पर पधारे । ध्रुवजी को बुलवाया । थोड़ी देर बैठकर प्रवचन करने की आज्ञा दी, ध्रुवजी को पता नहीं था कि आज का प्रवचन उनकी परीक्षा है । ध्रुवजी ने लगभग बीस मिनटों तक प्रबचन किया । माधवाचार्य जी से नहीं रहा गया, उन्होंने तत्काल भरी सभा में कह दिया, ब्रह्मचारी जी का प्रवचन क्या है ? इनका हर वाक्य मन्त्र है । हम इनके प्रवचन को सुनकर प्रमुदित, मुग्ध और आह्लादित हुए ।

विश्वहिन्दू परिषद् की पत्रिका में एक लेख प्रकाशित करने के लिए आग्रहपूर्वक गुरुदेव भगवान् से प्रार्थना की गयी, गुरुदेव ने ध्रुवजी से कहा– 'आप मेरे धर्म, अध्यात्म और राष्ट्र से सम्बन्धित हर प्रबचन को सुनते रहते हैं, दो–तीन पृष्ठों का बहुत अच्छा लेख तैयार कीजिए । ध्रुवजी ने शीघ्र लेख तैयार कर सुना दिया । गुरुदेव भगवान् परम प्रमुदित हुए । शिवाजी ने उसे टाइप किया, वह लेख सम्पादक मण्डल को इतना पसन्द आया कि उसे महत्त्वपूर्ण आस्था देकर प्रकाशित किया गया ।

❀

५७. नैमिष में विश्राम

अहर्निश सेवा और विविध प्रकार की यातना के कारण ध्रुवजी का स्वास्थ्य बिगड़ता गया । उन्होंने गुरुदेव से कुछ समय नैमिषारण्य में विश्राम की भावना व्यक्त की । गुरुदेव ने सहर्ष स्वीकृति दी । साथ ही यह भी कहा– 'मेरी एक भावना आज तक साकार नहीं हो सकी । मैं चाहता हूँ कि कुछ साधक नैमिषारण्य से तैयार हों । उन्हें प्राणायाम, ध्यानादि के साथ ही अध्यात्म ग्रन्थों का अध्ययन भी कराया जाए तथा वे व्यवहारकुशल कुञ्ज–गुफादि के निर्माण में भी कुशल हों । नैमिषारण्य

में केवल विश्राम के लिये आप रहें, 'यह उचित नहीं । आदर्श साधक आपके द्वारा निर्मित हों, यह आवश्यक है ।

ध्रुवजी ने कहा- 'जैसी आपकी आज्ञा ।'

❃

५८. साधकों का निर्माण

लगभग पच्चीस एकड़ का वनविभाग ध्रुवजी को सौंपा गया । उसमें झण्डा पार्क, शुकदेवटीला, नैमिषटीला, वसिष्ठ गुफा, शौनक कुटी से लेकर गोमती तक का भूभाग था । इन क्षेत्रों में माताओं का प्रवेश सायं पाँच बजे से प्रातः सात बजे तक नहीं था । ध्रुवजी के नैमिष निवास से आकृष्ट होकर बहुत से साधकों ने ध्रुवजी के सान्निध्य में रहकर तप करने का मन बनाया । चातुर्मास्य व्रत प्रारम्भ हुआ । एक दिन गुरुदेव ने स्थान-स्थान से आये हुए अपने शिष्यों से कहा- 'हम चाहते हैं कि यहाँ दस उपाचार्य पढ़ावें । कुञ्जगुफा के नीचे उनकी कक्षा लगे । ध्रुवजी से तो आप लोग परिचित ही हैं । जो इनकी कक्षा में सम्मिलित होवें हाथ उठाकर अपना नाम लिखा देवें ।'

ध्रुवजी की आयु यद्यपि छोटी थी । परन्तु इधर किसी ने ध्यान नहीं दिया । प्रयागादि ऋषि आश्रम के सञ्चालक वानप्रस्थी आदि नाम लिखाने लगे, युवक साधक भी नाम लिखाने लगे । जब तीस व्यक्तियों ने नाम लिखा दिया, तब गुरुजी ने हस्तक्षेप किया और कहा- 'आपको कई बार कहा जा चुका है कि नौ अन्य उपाचार्यों की अभी घोषणा होनी है । सभी ध्रुवजी से ही पढ़ेंगे तो अन्य उपाचार्य किसको पढ़ावेंगे ?'

गुरुजी ने घोषणा की भगवद्गीता के कर्मयोग नामक तृतीय अध्याय का अध्ययन ध्रुवजी सबको करायेंगे । इनकी कक्षा अमुक स्थल पर अमुक समय पर लगेगी । कभी-कभी हम बिना सूचना दिये कक्षा

को भी देखने आवेंगे । इसी प्रकार नौ उपाचार्यों की नियुक्ति हुई सबके बैठने के लिए, छोटी-छोटी चौकी बनायी गयी ।

चातुर्मास्य का यह प्रयोग बहुत ही सफल रहा । साधकों में विद्या के प्रति रुचि उत्पन्न हुई । शास्त्रों के अध्ययन और अध्यापन की परम्परा प्रारम्भ हुई । चातुर्मास्य व्रत पूर्ण हुआ । गुरुदेव प्रचार-प्रसार के लिये चल पड़े । कुछ साधक ध्रुवजी से पढ़ने के लिए नैमिषारण्य में ही रुक गये । बहिर्मुख व्यक्तियों का प्रवेश न हो जाए, इसलिए ध्रुवजी ने धूप में खड़े रहकर तथा साधकों को खड़ा रखकर तीन घण्टे तक कक्षा प्रारम्भ की । साधक तेजस्वी और विद्वान् होने लगे ।

❀

५९. वन में रात्रि साधना

रात्रि में ध्रुवजी किसी को सूचना दिये विना लगभग दस से बारह तक नंगे पाँव अकेले ही वन में निकल जाते । कभी-कभी वृक्ष के नीचे तो कभी गोमती तटपर तो कभी किसी परिचित वृक्ष पर बैठकर साधना करते ।

ध्रुवजी का निवास शौनककुटी पर था, वगल वाले कक्ष में अवकाश प्राप्त डिप्टी कलेक्टर सत्यपूजन वानप्रस्थी जी निवास करते थे । वे ध्रुवजी की गतिविधि पर ध्यान रखते । यद्यपि किसी ने उनको इस कार्य के लिए नियुक्त नहीं किया था, परन्तु स्वभाववश ही उन्होंने अपना यह दायित्व समझ लिया था । मुन्नालाल तिवारी जी नये साधक उनकी सेवा में सौंपे गये थे । उन्हीं को वे ध्रुवजी की रात्रि में जाने-आने की गतिविधि का पता लगाने के लिए नियुक्त किया था । ध्रुवजी की रात्रि सम्बन्धी उस चर्या से तिवारी जी बहुत प्रमुदित और प्रभावित हुए । एक दिन उन्होंने ध्रुवजी को सत्यपूजन जी द्वारा प्रेरित गुप्तचरी की सारी बातें बता दी और ध्रुवजी के अनुगत हो गये ।

❀

६०. ध्रुव की जल - वन क्रीड़ा

गोमती स्नान के लिए आम जनता चक्रतीर्थ आदि समतल भूमि में जाती थी। अतएव आश्रमवाले क्षेत्र की गोमती में भीड़-भाड़ बिलकुल नहीं होती थी । फिर भी चार-पाँच साधक एक स्थल पर नित्यस्नान करते । वे ध्रुवजी के साथी थे । ध्रुव तैरकर कभी गोमती के पार पहुँच जाते । शवासन में या पद्मासन में लेटे-लेटे तैरते हुए बहुत दूर तक पहुँच जाते । कभी वन में उन्मत्त होकर नृत्य करते मयूर के साथ- **"श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव !"** का राग अलापते हुए नृत्य करते । मयूर उनके परिचित हो गये थे । उनसे बिलकुल भय नहीं करते थे । उसके बाद ध्रुवजी ने अपने स्नान का स्थान कुछ दूर में चुना । रेलवे पुल के समीप गोमती कुछ गहरी थीं । चौड़ाई कुछ कम थीं तट पर बालुका से भरपूर टीला पर ध्रुवजी कभी लेटते कभी पद्मासन लगाकर बैठते ।

❀

६१. वंशीधर-मिलन

एक दिन निर्मल जी ध्रुव के साथ थे । ध्रुवजी नदी के उस तट की ओर मुँहकर नदी में जप कर रहे थे । भयङ्कर गर्मी थी । एक षोडशवर्षीय साधु ने सहसा ध्रुवजी के मन को आकृष्ट किया । मन जप से उचट गया । ध्रुवजी ने विह्वल होकर पीछे निहारा । देखा नंगे पाँव दौड़ता हुआ एक षोडशवर्षीय साधु जा रहा है और वह ध्रुव को विचित्र कटाक्ष से अपनी ओर बुला रहा है । ध्रुवजी उसे देख कर उन्मत्त हो गये । द्रुतगति से तटपर आये । दिल्ली के उन्मत्त षोडशवर्षीय साधु, जिसने पुनः दिल्ली छोड़ने का सङ्केत किया था, उसी के तुल्य इस साधु

का भी सांवला और हृष्टपुष्ट समाकर्षक शरीर था । वेष में विलक्षणता अवश्य थी । हाथ में करची (शाखा) युक्त एक बाँस की छड़ी थी । शाखा चाकू से परिस्कृत की गयी परिलक्षित होती थी । बाँस भी पाँच फुट से अधिक लम्बा नहीं था । शाखाओं में वांसुरियाँ टङ्गी थीं । नाथसम्प्रदाय के साधुओं–जैसी एक छोटी–सी झोली बगल में लटक रही थी । कस्तूरिका के आमोद से सुवासित उसका श्रीअङ्ग था । एक बांसुरी उसके फेंट में संलग्न थी । ध्रुवजी के मन में साधु के प्रति सख्यभाव उदित हुआ । उन्होंने सखा का हाथ पकड़ लिया । साधु ने कहा– 'देखो ! तुम स्नान करके आये हो, इसलिए सन्तप्त बालुका तुम्हारे पाँवों को नहीं झुलसा पा रही है । चलो हम तुम उस गूलर के छोटे–से वृक्ष के नीचे बैठकर कुछ मीठी बातें करें ।' ध्रुवजी उसके हाथ पकड़े गूलर वृक्ष के नीचे बैठ गये । ध्रुवजी ने चुपके से अपना हाथ सखा की फेंट में अटकी मुरली की ओर बढ़ाकर उसे हथियाना चाहा । साधु विह्वल हो गया । बोला– 'मनमाना मत करो । यह वंशी मैं तुम्हें नहीं दे सकता ।'

ध्रुव ने कहा– 'इन सभी वंशियों में मेरा मन तो इसी पर आकृष्ट हो रहा है । अतः इसे लिये बिना नहीं रह सकता । आखिर तुम इस वंशी को मुझे क्यों नहीं लेने देते । ओह ! हो गया, अब देर मत करो । यह वंशी मुझे लेने दो ।'

साधु ने कहा– 'सुनो, अन्य वंशी मेरे सखाओं के लिए है । यह मेरे लिए, तुम मेरे सखा हो, अन्य कोई भी वंशी जो तुम्हें रुचे ले लो, पर यह मेरी अपनी वंशी है । मत छेड़ो मुझे, तङ्ग मत करो ।'

ध्रुव ने कहा– 'सखे, मुझे विरहवेदना से सन्तप्त मत करो । अपनी वंशी तुम रखो । परन्तु इस पर सुमधुर तान छेड़कर मुझे बेसुध तो कर दो ।'

ध्रुवजी साधु सखा के हाथ पकड़े थे । उसके श्रीअङ्ग से और झोली में रखी कस्तुरिकाके मोद से ध्रुवजी विह्वल बेसुध हो रहे थे ।

साधु ने अपने चिर सखा से कहा– 'अरे, तुम भी कैसे हो ? मेरे मुख से यहाँ बाँसुरी पर तान छेड़ने का आग्रह कर रहे हो । सुनो, मेरी यह वंशी मेरे बजाने पर ही बजती है तथा केवल वृन्दावन में सखाओं और गोपियों के बीच ही बजती है । मैं चाहूँ भी तो तुम्हें यहाँ इसे बजाकर नहीं सुना सकता ।'

प्रेमविह्वल अधीर ध्रुव ने पुनः आग्रह किया । साधु ने कहा– 'मेरी वंशी सुननी है तो वृन्दावन चलो मेरे साथ ।'

ध्रुव ने मुस्कुराते हुए कहा– 'प्यारे ! मुझे वृन्दावन आना तो है ही । इस मर्यादा और मायाजाल को उचित स्थल पर विराम देकर ।'

साधु ने कहा– 'तुम इस आश्रम में बँधे रहकर कैसे मेरी वंशी सुन सकते हो । अच्छा, रहने दो वंशी की बात, मुझे भूख लग गयी है । भोजन के लिए कुछ यहाँ मंगवा के दो । तुम जाओ । देर हो गयी, तुम अपने मित्र के हाथ मेरे लिये भोजन भेज देना ।'

ध्रुव समझ गये, अब ये भोजन का बहाना लेकर जाना (छिपना) चाहते हैं । परन्तु बहुत भूख लगी है, यह सुनकर ध्रुव बेचैन हो गये । द्रुतगति से शौनक कुटी पहुँचे । भोजन बन गया था । रोटी–सब्जी थाल में सजाकर ढक्कर निर्मल के हाथ भेजा । निर्मल ने देखा, उच्च स्वर से पुकारा, परन्तु वे नहीं मिले ।

ध्रुव ने उसी दिन से उस घाट का नाम **'वंशीघाट'** रखा । नित्य सायं छः से साढ़े सात बजे रात तक वहाँ बैठते । साथ में निर्मल होते। मुन्नालाल तिवारी होते ।

❀

६२. मुन्नालाल का कल्याण

मुन्नालाल तिवारी जी ने एक दिन वंशी घाट से लौटते समय भगवती सीताजी के दर्शन की तीव्र भावना व्यक्त की । ध्रुवजी ने कहा– 'अच्छा सावधान ! सीताजी दर्शन देनेवाली हैं ।'

मुन्ना ने कहा– 'रहने दीजिए, मैं सीताजी के दर्शन को नहीं सह सकूँगा ।'

ध्रुवजी ने कहा– 'आगे से कभी अध्यात्मपथ को हँसी विनोद मत समझना ।'

मुन्नालाल ने वंशीघाट में एक दिन अपनी व्यथा व्यक्त की । मैं जिला वारावंकी के रुदौली क्षेत्र का हूँ । मेरा विवाह हो चुका है । लखनऊ में गुरुदेव भगवान् के सम्पर्क में आकर प्रभावित हो गया । मैंने बाबा बनने का निश्चय कर लिया, मेरे श्वसुर मिलेट्री से अवकाश प्राप्त हैं । बड़े तेज स्वभाव के हैं । मेरे पिता को भी आप एक बार देख चुके हैं । अयोध्या में वैष्णव परमहंस श्री राममङ्गल दासजी वसिष्ठ कूप पर रहते हैं । वे सिद्ध सन्त हैं । उनका भी अनुग्रह पात्र हूँ ।

ध्रुवजी ने कहा– 'आपके श्वसुर अपनी बेटी के सम्बन्धमें कुछ अन्यथा निश्चय कर चुके हैं । कल ही आप घर के लिए प्रस्थान कीजिए । नहीं तो आपको भयङ्कर पाप लगेगा ।'

मुन्नालाल ने ध्रुवजी की बात मान ली । ध्रुवजी ने उनके जाने के लिए बड़े आश्रम से मार्गव्यय की व्यवस्था करवा दी । तिवारी घर पहुँचे पत्नी को मनाया । पत्नी ने इनका पक्ष लेकर स्वयं के आदर्शको सुरक्षित रखा ।

❀

६३. आत्मबम

ध्रुवजी को एक बार गुरुजी तीन–चार दिनों के लिए लखनऊ ले गये। उन्होंने प्रवचन से आबालवृद्ध अत्यन्त प्रभावित हुए। पचीस मिनट के प्रवचन में पाँच बार करतल ध्वनि से श्रोताओं ने प्रवचन का स्वागत किया। प्रवचन के अन्त में ध्रुवजी ने कहा– 'हम नैमिषारण्य में अणु बम को मात देने की क्षमता वाले आत्मबम बनाते हैं। सबों ने 'बम बनाते हैं' सुनते ही करतल ध्वनि से पुनः प्रवचन का स्वागत किया। उस दिन सभा में लखनऊ के प्रसिद्ध अधिकांश बुद्धिजीवी पधारे थे।

ध्रुवजी नैमिषारण्य लौट आये। एक दिन जीप में लखनऊ से कई उच्च पदवी प्राप्त अधिकरी और वैज्ञानिक आत्मबम की फैक्टरी देखने आये। वे कार्यालय में आकर पूछने लगे– 'ध्रुव चैतन्य कहाँ रहते हैं ? उनसे मिलना चाहता हूँ।'

दैवयोग से कार्यालय में अवकाशप्राप्त तहसीलदार श्रीजगदम्बा प्रसाद जी थे। उन्होंने कहा– 'वह बच्चा है, भावुकता के वशीभूत होकर उसने यह बात कह दी। आश्रम कहीं बम बनाने के लिए है। ध्रुवजी आश्रम में ही रहते हैं, परन्तु यहाँ से एक किलोमीटर दूर वन में। वहाँ पहुँचने के लिए आपको कुछ दूर पैदल भी चलना होगा।'

आश्रम में कहीं बम बनता है ? यह सब सुनकर बेचारे वे महानुभाव निराश होकर लखनऊ लौट गये। परन्तु उनका मन दुविधा में अवश्य पड़ गया। वे मार्ग में सोचने लगे स्वयं गुरुदेव भगवान् ने जिसकी भूरि–भूरि प्रशंसा कर जिसका प्रवचन करवाया हो, जिसके प्रवचन से आबालवृद्ध प्रमुदित हुए हों, बुद्धिजीवी दाँतों तले ऊँगली चबाने लगे हों, वह कोई मिथ्यावादी नहीं हो सकता। क्या पता तहसीलदार को ही पता नहीं या उसने जानबूझकर हमें धोखे में रखा हो। अब तो बहुत दूर लौट आये। कुछ दूर पैदल चल कर ध्रुव से मिल तो लेते !'

जगदम्बा प्रसाद जी वन में ध्रुवजी के पास आये । उन्होंने कहा– 'ऐसा–ऐसा हुआ, कहीं वे आ जाते तो कहीं फैक्टरी न देखकर तुम्हें खरी–खोटी सुनाते । आज मैंने तुम्हें सङ्कट से बचा लिया ।'

ध्रुवजी ने कहा– 'आपने अपनी दृष्टि से अच्छा ही कहा । परन्तु मैंने जिस 'आत्म बम' बनाने की बात कही थी, वह तो वैचारिक बम है। जिसके प्रभावसे व्यक्ति प्रह्लाद परिलक्षित होता है । मैं उन्हें कुपित नहीं होने देता । समझाकर सन्तुष्ट कर देता ।

❀

६४. काका कालेलकर का प्रलाप

श्री रामप्यारे त्रिवेदी जी गुरुदेव भगवान् के बहुत प्यारे थे । वे ऋषि आश्रम लखनऊ में रहकर विद्या अध्ययन और गुरुदेव की संस्था का प्रचार–प्रसार करते थे ।

एक बार वे गाँधी जी के प्रसिद्ध सहयोगी काका कालेलकर जी को आश्रम में बुलाकर ले आये । आश्रम में शौनक कुटी पर वट वृक्ष के नीचे गुरुदेव के बैठने के लिए छतरी बनी थी । उसी को व्यास पीठ कहते थे । गुरुदेव के लिए नैमिषारण्य पीठाधीश्वर या अध्यात्मविद्या–पीठाधीश्वर लिखा जाता था । सभी श्रोता वृक्ष के नीचे बैठकर प्रवचन सुनते थे । प्रवचन के समय वर्षा होने पर भी भींगते हुए प्रवचन सुनने का विधान था ।

काका कालेलकर महाराष्ट्र के थे । उन्होंने अपने प्रवचन में कहा– 'दुर्भाग्य से मेरा जन्म उस ब्राह्मण वंश में हुआ है, जिसने सहस्रों वर्षों से मानव समाज का शोषण किया है । पूज्य गाँधीजी के सम्पर्क में आने पर मेरी आँखे खुलीं । परन्तु मेरे पूर्वजों ने समाज का शोषण कर इसे इतंना जर्जर बना दिया है कि एक काका कालेलकर कें शरीर से मैं उन सब पापों का प्रायश्चित्त कर उऋण नहीं हो सकता ।.....'

प्रवचन पूरा हुआ । काका कालेलकर विदा हुए । सभी श्रोता ब्राह्मण या ब्राह्मणों के भक्त थे । प्रबुद्ध थे । कोलाहल शुरू हुआ । गुरुदेव के कानों तक गुंज पहुँचने लगी । रामप्यारे-जैसे व्यक्तियों को न जानें क्यों इतना प्रश्रय दिया जाता है ? कभी हरभजन रजनीश को हमारे कार्यक्रमों में ले आता है, तो कभी रामप्यारे काका कालेलकर-जैसे नास्तिक को । शिष्यों को अपने प्रति श्रद्धान्वित रखने के लिए गुरुदेव भगवान् ने कहा- 'गॉन्धीजी हृदय से ब्राह्मणों को पसन्द नहीं करते थे । वे इन जैसे बारह ब्राह्मण बैरिष्टरों की बुद्धि के उपयोग से अंग्रेजों से शीत युद्ध लड़ते थे, परन्तु सबको हृदय से ब्राह्मण द्रोही बना चुके थे ।'

❋

६५. विचित्र शिक्षा

गुरुदेव खण्डन-मण्डन से बचकर रहते थे । एक बार वाराणसी में एक दैवज्ञ ज्योतिषी बुद्धिजीवी ने बातचीत के सन्दर्भ में अध्यात्म का गलत ढंग से प्रतिपादन कर गुरुदेव के सामने ध्रुवजी को दबाना चाहा । ध्रुवजी ने धैर्य और बुद्धिपूर्वक उसके सम्पूर्ण तर्कजालों को उच्छिन्न कर उसे निरुत्तर कर दिया । गुरुदेव को इस बात को लेकर प्रसन्नता हुई कि हमारे एक छोटी आयु के शिष्य ने वाराणसी के रमलविद्या के जानकार प्रसिद्ध ज्योतिषी को निरुत्तर कर दिया, परन्तु उनके जाने के बाद गुरुजी ने कहा- 'ध्रुवजी' हमारे प्रति समागत व्यक्तिकी श्रद्धा उत्पन्न करने का प्रयत्न आपको करना चाहिए, भले ही कोई गलत बात कहे । परन्तु मेरा दर्शन करने बार-बार आवे, इसी में संस्था का हित है । बार-बार सम्पर्क में आने पर उसकी भ्राँतियाँ अपने आप नष्ट हो जावेंगी ।

❋

६६. परशुरामदूत नग्न अवधूत

एक बार उड़ीसा निवासी उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास जी श्रीरामप्यारे जी के माध्यम से नैमिषारण्य लाये गये । आश्रम देखकर और वहाँ के सन्तों को प्रसन्नचित्त देखकर वे परम प्रमुदित हुए । गुरुदेव ने प्रवचन के सन्दर्भ में 'बला और अतिबला आदि बूटियाँ आश्रम में हैं । तथा यहाँ के साधक उसका सेवन भी करते हैं ।' ऐसा कहा । समाचार पत्र में छप गया । गुरुजी कार्यक्रमों में अन्यत्र गये । ध्रुवजी उन दिनों बड़े आश्रम में कन्नौज वालों की कुटिया में अकेले निवास कर रहे थे । प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा स्वास्थ्यलाभ का प्रयास भी चल रहा था । एकान्त में एक पैंतीस साल की आयु वाले साधु सहसा कक्ष के अन्दर ध्रुवजी के पास आकर खड़े हो गये । सर्वथा नग्न और हाथ में नंगी तलवार देखकर ध्रुवजी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । ध्रुवजी ने कहा– 'क्या सन्देश है ।' उन्होंने कहा– 'बलातिबला बूटी ढूंढ़ने के बहाने आ गया । लोगों को मेरे आने का यही उत्तर है । परन्तु मैं परशुराम़ जी का शिष्य हूँ । वे महेन्द्र पर्वत पर रहते हैं । उनका संदेश लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ । ...... यह उनका सन्देश है ।

आश्रम के प्रधानमन्त्री बापूजी को पता चला कि एक नंग धड़ंग साधु नंगी तलवार लिए ध्रुवजी के कमरे में घुस गया है । सब दौड़े । ध्रुव तो सबके प्यारे थे । बापूजी ने देखा ध्रुव से वे कुछ गुप्त मन्त्रणा कर रहे हैं । अत: किसी को डाँटने का साहस नहीं हुआ । अवधूत पढ़ा लिखा है या मूर्ख ? वे ऐसा जानना चाहते थे । अवधूत सुलतानपुर क्षेत्र की भाषा में अस्त–व्यस्त शैली में बोलने लगे । आद्याचरण पाण्डेय जी ने बापूजी से कहा– न तो ये पागल लगते हैं, न पढ़े लिखे । फिर भी ध्रुव इनसे प्रभावित लगता है । इस बाबा से सावधान तो रहना ही है । जिसे नंगा रहना है, उसे समाज में आने की आवश्यकता ही क्या है ? फिर

जिसे लंगोटी भी नहीं चाहिए, उसे तलवार की क्या आवश्यकता है ?

पाण्डेयजी चले गये । बापूजी ने ध्रुव से कहा– 'अमुक माता के द्वारा पराठे और सब्जी बनाकर भेज देते हैं । इनको भरपेट डटकर भोजन करवा दो । लाइन पार अमरूद की बगिया में रातभर इन्हें ठहरा दो । माखन धुनी की व्यवस्था कर देगा, ताकि इन्हें ठंड न लगे । उधर कोई गृहस्थी नहीं है । केवल माखन ही है । वहीं इनको ठहराना ठीक है । भला हाँ, तुम बहुत भोले हो, जिस किसी पर विश्वास करके ठगे न जाओ ।

प्रबन्धक की शैली में एक सेवक से कहा– 'जाओ लाइन पर अमरूद के बगीचा में माखन से बाबा के ठहरने और धुनी, पानी आदि की व्यवस्था करवा दो ।' दूसरे सेवक से कहा– 'उस माता से भरपेट पराठे और सब्जी बनवाकर बाबा के लिए ले आओ । तीसरे से कहा– 'पहरेदार को जल्दी मेरे पास बुलाकर ले आओ ।'

पहरेदार आ गया । उससे कहा– आज ऐसी सूचना मिली है । कुछ नशेड़ी बेसुध व्यक्ति आश्रम के इधर–उधर घूम रहे हैं । वे कहीं रात में घुसकर उपद्रव न करें, इसके लिए ठीक दस बजे गेट बन्द कर दो । अच्छी प्रकार ताला लगा दो । सावधान होकर पहरा दो ।

भोजन आया । बाबाने किया । उन्हें माखन के पास पहुँचा दिया । फाटक बन्द कर दिया गया । ध्रुवजी की नींद बिदा हो गई, जो सन्त महेन्द्र पर्वत से मिलने मेरे पास आये, उन्हीं से मिलने में मेरी सुरक्षा की दृष्टि से ही प्रतिबन्ध । कमरे से बाहर निकले, पास में ही रेलवे स्टेशन की ओर जाने के लिए मुख्य द्वार था । आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा । अन्य दिनों रात्रि के दस बजे से प्रात: ५ बजे तक ताला बन्द रहता था आज तो ताला बन्द की कौन कहे पूरा फाटक ही दिन की तरह खुला था । ध्रुवजी को अनायास ही बाहर निकलने का अवसर मिल गया । आश्रम में दो की घण्टी बजी । ध्रुवजी लाइन पार अमरूद की बगिया में

एक अमरुद की ओट में खड़े हो गये । धुनी जल रही थी । कपाट खुला था । बाबा ने ध्रुव को देख लिया । सामने बैठा लिया । आमने-सामने दोनों अवधूत, बीच में अग्नि । अवधूत ने ध्रुवजी को आत्मा की सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मरूपता और सर्वरूपता का प्रतिपादन आश्चर्य जनक ढङ्ग से करना प्रारम्भ किया । उधर बापूजी ने शान्ति कुटी में ध्रुव को ढुंढ़वाया, ध्रुवजी नहीं मिले । तब तक पाँच बज गया । फाटक खोला गया । ध्रुवजी की सेवा में नियुक्त एक वानप्रस्थी को भेजा गया । अवधूत जी ने उसे देखते ही प्राकृतोंकीसी चेष्टा प्रारम्भ की । ध्रुवजी को कहा– 'अब तुम अपने स्थान पर चले जाओ । मैं शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर गन्तव्य की ओर प्रस्थान का विचार करूँगा ।'

बापूजी आदि को रात्रि के दो बजे फाटक खुले रहने की घटना सुन कर आश्चर्य हुआ । इसे सबने ईश्वरीय चमत्कार समझा ।

❃

६७. बङ्गाली साधु का उत्पात

ध्रुवजी पुनः शौनक कुटी चले गये । शौनक कुटी पर जहाँ ध्रुवजी रहते थे, उसके नीचे पक्की कुटी में एक बंगाली सन्त स्वामी कृष्णानन्दजी कुछ समय से रहने लगे थे । वे रामकृष्ण मिशन के साधु थे । प्रातः वे अति उच्चस्वर में ओंकार का उच्चारण करते और एक किलोमीटर दूर चक्रतीर्थ और उसके आस-पास के पण्डों से जाकर पूछते तुमने ओंकार उच्चारण सुना कि नहीं ! ध्रुवजी प्रातःकाल एक घण्टे तक उस ओंकार उच्चारण के अतिरिक्त और कुछ सुनने या करने में असमर्थ हो जाते । शनैः-शनैः बंगाली बाबा ने परख लिया कि ध्रुवजी को आश्रम में बहुत सम्मान प्राप्त है । बाहरी बुद्धिजीवी आदि भी इनको हृदय से सम्मान देते हैं । बस क्या था, उन्होंने आतङ्क फैलाना प्रारम्भ किया । तुम जोरों से बोलते हो, तुम्हारे पास आनेवाले भी जोर-

जोर से बोलते हैं । यद्यपि यह आरोप सर्वथा असत्य था, परन्तु ध्रुवजी ने अपने प्रभाव का उपयोग न कर, शील और सहिष्णुता का उपयोग प्रारम्भ किया । कभी लखनऊ आदि के चन्द्रशेखर अग्निहोत्री जी आदि आ जाते तो ध्रुवजी उन्हें भी उपांशु शैली में ही बात करने के लिए परामर्श देते, फिर भी बाबा खड़ाऊ पहने जोर-जोर से चिल्लाते हुए ध्रुव से लड़ने के लिए आ जाते । इस बिडम्बना को देख आगन्तुक सज्जन आग बबूले हो जाते, परन्तु ध्रुवजी सङ्कोचवश सबको शान्त रखते । सबने समझ लिया, ये शान्तिप्रियता के नाम पर आतङ्क फैलाने वाले और ध्रुवजी के प्रभाव से द्वेष रखनेवाले उपद्रवी बाबा हैं । बाबा में कई गुण भी थे । उन्होंने नैमिषारण्य में शराव की दुकान को देवस्थल से स्थानान्तरित करवाया । दो-चार के शराव को छुड़वाया ।

एक दिन आश्रम के प्रधानमन्त्री बापूजी के पास जाकर ध्रुवजी की शिकायत कर दी । बापूजी आये । वात्सल्यपूर्ण हृदय से समझाने लगे । ध्रुवजी ने सारी परिस्थिति स्पष्ट कर दी । बापूजी ने कहा- 'फिर भी वे हमारे तुम्हारे अतिथि हैं । यावज्जीवन यहीं रहकर भजन करना चाहते हैं । अपने को दबाकर भी उन्हें शान्त रखो ।'

ध्रुवजी ने मन-ही-मन 'न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी' की शैली में समाधान ढूँढ़कर बापूजी से कहा- 'अब आप निश्चिन्त रहें, मुझ निरपराध की शिकायत आपको अब नहीं मिलेगी ।

बापू गये । ध्रुव ने सूर्यास्त की प्रतीक्षा की । एक दरी, एक लोटा, एक कटिवस्त्र, एक लंगोटी और एक छोटे से कैलेण्डर में भगवान् श्रीकृष्ण का चित्र और एक-दो पुस्तक मात्र इतनी सामग्री ध्रुवजी के पास थी । ध्रुवजी उसे लेकर वहाँ से दो-तीन फर्लाङ्ग दूर जंगल में चले गये । एक सेंमल वृक्ष देखा, उसके नीचे काँटो की झाड़ी में कुंज सरीखा बनाकर उसी में रात्रिविश्राम किया । ध्रुवजी को घनघोर जंगल में अकेले

रहने का भी अभ्यास था । ऋषीकेश से बद्रीनाथ और बदरीवन से ऋषीकेश की यात्रा में वे अकेले किसी वृक्ष के नीचे सो जाते थे, सूर्यास्त के पूर्व चरवाहे कहते, बाबा चलकर गाँव में रह, नहीं तो कल तू हमें मरा दीखेगा । यहाँ रात्रि में शेर आते हैं ।

❋

६८. वन में वास

वङ्गाली बाबा कुँआ से पानी खींचने आदि की प्रक्रिया में अनिवार्य शब्द को भी न सुनकर चौंके । डरे हुए ध्रुवजी की कुटी में आये । कुटिया सूनी देखकर बापूजी को उन्होंने सूचना दी । बापूजी ने अपने दूतों को भेजा । ध्रुवजी का पता कठिनाई से दूत लगा पाये । ध्रुवजी के समीप बहुत से व्यक्ति अनुनय-विनय के लिए आये । ध्रुवजी ने कहा– आप एक फावड़ा, एक कुल्हाड़ी और एक हँसिया भेज दीजिए । इस सेंमल के समीप ही मैं कुटिया बनाके रहूँगा । सबकी दृष्टि में बंगाली बाबा गिर गये । बंगाली बाबा की कूटनीति सफल हुई । शौनककुटी में सचमुच में जोर-जोर से चलनेवाले, बोलनेवाले सुमिरन पूजन आदि दो-तीन व्यक्ति थे, स्वामी विवेकानन्दजी आदि बाहर के कार्यक्रम सम्पन्न करके वहीं रहते । सैकड़ों भक्त उनके दर्शन भी करने आते थे । हास, कीर्तन आदि सब कुछ होता था । उस पर बंगाली बाबा को कोई आपत्ति नहीं थी । अपनी विक्षेपजनक प्रवृत्तियों को तो वे सिद्धि समझते थे । असल में उन्होंने समझ लिया था कि विवेकानन्द, शौनक आदि गिने-चुने दो-तीन सन्त वेषधारी ध्रुवजी से अच्छा सम्बन्ध नहीं रखते । उन्हें प्रभावित कर उनकी अनुकूलता का लाभ उठाने के लिए बंगाली बाबा ने विक्षेप का ढिंढ़ोरा पीटकर ध्रुव को कष्ट देना प्रारम्भ किया था। उनकी योजना सफल रही, उनका मनोभाव सबके सामने उभड़कर प्रकट हुआ ।

मनफूल ने पतवार काटना, जंगली शहतूत के खम्भे तैयार करना, जंगल से बाँस काटकर लाना प्रारम्भ कर दिया । ध्रुवजी ने चबूतरा बनाना, झाड़ू देना, भूमि को समतल करना प्रारम्भ किया । सूर्यास्त तक झोंपड़ी बनकर तैयार हो गयी । किसी ने बड़े आश्रम से बैंचें भी लाकर रख दीं, ध्रुवजी सुखपूर्वक उसमें निवास करने लगे । कुटी के पूर्व में २ किलोमीटर तक आबादी नहीं थी, दक्षिण में गोमती पार तक तीन-चार मिलोमीटर तक आबादी नहीं थी उत्तर में शौनक कुटी भी दो-तीन फर्लाङ्ग की दूरी पर थी । बंगाली बाबा के आतङ्क से ध्रुवजी का बोलना हँसना, पाठ करना, संकीर्तन करना, सब बंद हो गया था । उन सब अनर्गल प्रतिबन्धों से त्राण पाकर ध्रुवजी ने सुख की सांस ली ।

ध्रुवजी साधक भोजनालय की व्यवस्था भी देखते और वहीं भोजन भी करते । साधक भोजनालय में केवल एक बार भोजन बनता । बड़े आश्रम से आटा, दाल, तैल, मसाले, नमक के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता था । सब्जी के लिए सेंमल के पुष्प आदि वन्य वस्तुओं का चयन कर ध्रुवजी परस्पर मिलकर भोजन बनाते । जंगल से सञ्चय कर काष्ठ प्राप्त करते ।

❋

६९. क्रोधी सुमिरन

सुमिरन पूजन भी साधक भोजनालय में ही भोजन करते थे । वे बड़े क्रोधी थे । बिना लड़े-झगड़े रह लेना, उनके लिए सम्भव नहीं था। एक दिन ध्रुवजी ने अपने सहयोगी निर्मलजी से कहा- आज सुमिरन से वर्तन मलवाने आदि की कोई सेवा नहीं ली जाएगी । जब सुमिरन भोजन लेने आवें, तब कहना आईये, पधारिये, प्रसाद पाइये । सुमिरन सात रोटी मांगे तो दस रोटी दे देना । फिर हम देखेंगे कि आज सुमिरन

का क्रोध किस पर बरसता है ! ऐसा ही हुआ । ध्रुवजी छिप गए । सुमिरन कमरे से कुल्हाड़ी उठाकर जंगली शहतूत के वृक्ष के पास पहुँचे । पहले माँ–बहन की गाली दी । फिर एकबार वार किया । गाली देना और वृक्ष पर कुठाराघात करना, यह क्रम चलता रहा । वृक्ष लगभग एक चौथाई कट गया । आध घंटे में सुमिरन पसीने–पसीने होकर थक गये । बहुत प्रसन्न हुए । कमरे में लौट आये । ध्रुवजी ने साधकों को बिठाकर सारी घटना सुना दी । सबने कहा– 'यह तो हम पर सुमिरन की अद्भुत सहिष्णुता है कि हमें माँ–बहन की गाली नहीं देता, डण्डे से नहीं पीटता, कुल्हाडी से नहीं काटता, केवल तू–तू–मैं–मैं कर झगड़ कर ही चला जाता है ।'

गुरुदेव यात्रा कर लौटे, उन्हें पता चला कि ध्रुवजी शौनक कुटी छोड़कर चले गये । ध्रुवजी शौनक कुटी में जहाँ रुके थे, गुरुदेव उसके नीचे अन्दर के हिस्से में रुकते थे । और बंगाली बाबा बाहर के हिस्से में ।

गुरुदेव ने कहा– मुझे यहाँ नहीं रुकना है । ध्रुवजी जहाँ रुके हैं, उसके पीछे वाली गुम्फा में रुकना है । वहीं उनके रुकने की व्यवस्था की गयी । जमीन खोदकर आर–पार दो द्वारवाली पक्की चार गुफाएँ बनवायी गयीं थी, जो मिट्टी से आच्छादित और तृण से सुशोभित थीं । उन्हीं में से वह वशिष्ठ गुम्फा भी थीं उसमें एक तखत रखने और पाँच व्यक्तियों के आसानी से बैठने की जगह मात्र थी । उसीमें गुरुदेवने निवास प्रारम्भ किया ।

गुफाके बाहर मैदान में विचारगोष्ठी आदि सम्पन्न होने लगी । वङ्गाली बाबा समझ गये, कि उनका दाँव उलटा गया ।

❋

७०. अमरनाथ की कथा

ध्रुवजी जिस क्षेत्र में थे उसमें उन्होंने पलासवृक्षों के नीचे नौकाकार बालुकामय चत्वर बनाया । खाइयाँ खोदी । केले के वृक्ष लगाये । उस क्षेत्र को दिव्य बनाया । जंगल में शौचक्रिया से निवृत्त होने के लिए स्थान सुनिश्चित किया । वह स्थान रम्य हो गया । सायंकाल वे वंशीघाट पर एक डेढ़ घंटे बैठते । एक-दो साधक साथ होते । साधन-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर चलता । एक दिन अमरनाथ मिश्र जी ब्रह्मचर्याश्रम से ध्रुवजी के पास आये ।

श्री अमरनाथ मिश्रजी उत्तरप्रदेश के मैनपुरी जिलाके काँकनगाँव के निवासी थे । गणित आदि विषयों से उन्होंने डिग्री कॉलेज आगरा में अध्ययन किया था । कुछ समय तक एकरसानन्द विद्यालय मैनपुरी में अध्यापन का कार्य किया था । गायत्री जप का अनुष्ठान भी उन्होंने गाँव में किया था । वे गुरुपूर्णिमा के अवसर पर मैनपुरी में ध्रुवजी से मिले थे। ध्रुवजी की सहानुभूति और गुरुदेव की विचारधारा से प्रभावित होकर वे नैमिष ब्रह्मचर्याश्रम में अध्यापन कार्य करने लगे थे ।

वंशीघाट पर उन्होंने ध्रुवजी से जीवन में यम की प्रतिष्ठा के अमोघ उपाय की जिज्ञासा की । ध्रुवजी के उत्तर से सन्तुष्ट और परम प्रमुदित होकर उन्होंने कहा- 'बस हो गया अध्यापन कार्य । ध्रुवजी के बहुत समझाने पर भी वे ब्रह्मचर्याश्रम नहीं गये । गृहस्थ आश्रम का भी उन्होंने उसी क्षण परित्याग कर दिया । वे ध्रुवजी को अपना गुरु मानते थे । परन्तु ध्रुवजी शील और संकोच वश उन्हें अपना मित्र ही मानकर व्यवहार करते थे ।

अमरनाथ मिश्र जी एवम् अन्य दो-चार साधकों को ध्रुवजी ध्यान की ऐसी दिव्य प्रक्रिया बताते थे, जिसमें मानसी आराधना के

समय माला स्वतः इष्ट के गले में जाकर इष्ट-विग्रह पर सुशोभित होने लगती थी । दिव्यदृष्टि से सारा मानसपूजन कार्य का दर्शन होता था । ध्रुवजी ने श्रीमद्भागवत के अनुसार संकर्षणोपासना का मिश्र को उपदेश किया जिसका अनुष्ठान उन्होंने रात्रि में दस से बारह तक लगभग बारह वर्षों तक किया ।

एक दिन अपने हाथों से निर्मित पर्णकुटी में मिश्र जी और ध्रुवजी अलग-अलग स्थान पर सो रहे थे । ध्रुवजी को पता चल गया की कोई स्वप्न में मिश्रजी को तत्त्वोपदेश दे रहा है, ध्रुवजी भी नींद में ही थे । उनकी प्रबुद्ध चेतना ने मिश्र के प्रति आत्मीयता की भावना से जोर से कहा- 'कौन उपदेश कर रहा है' ? मिश्रजी के हृदय से विनम्रभाव में मध्यमस्वर में उत्तर मिला- 'मैं एक ऋषि हूँ । आपने जो इहें उपदेश दिया है । आपकी भावना के अनुरूप ही मैं उसे सुपुष्ट करने की भावना से उसी का उपदेश दे रहा हूँ ।' ऋषि वाक्य सुनते ही ध्रुवजी की नींद खुली । अद्भुत आश्चर्य हुआ । प्रातः इस अद्भुत घटना से मिश्रजी को ध्रुवजी ने अवगत कराया ।

❀

७१. कदली मोक्ष

एक दिन युवावस्था को प्राप्त हृष्ट-पुष्ट एक केले के वृक्ष ने ध्रुवजी को स्वप्न दिया- 'आपने मुझे अत्यन्त प्रीतिपूर्वक लगाया, सींचा, सब तरह से पाला । इस शरीर की मेरी अवधि पूर्ण हो रही है, कल दिन के बारह बजे मैं कदली शरीर का त्याग कर आपके अनुग्रह से दिव्य शरीर को प्राप्त करूँगा ।'

ध्रुवजी की नींद खुली, स्नानादि कृत्यों से निवृत्त होकर ध्रुवजी कदली वृक्षों के पास जाकर बैठ गये । मध्याह्न काल होते ही सर्वाधिक हृष्ट-पुष्ट वृक्ष बिना किसी बाह्य उपद्रव के मध्यभाग से टूटकर धराशायी

हुआ । ध्रुवजी ने उसका स्पर्श किया । उसके उत्कर्ष और कृतार्थता की भावना की ।

❋

७२. अपकर्षोन्मुख उत्कर्ष

ध्रुवजी अपनी ख्याति से बचकर और बहुत संभलकर ही रहते थे, तथापि उनकी ख्याति गुरुदेव के भक्तों में थी । जब वे गुरुदेव की व्यक्तिगत सेवा में थे । तब सभी पत्रों का उत्तर वे ही देते थे, परन्तु उत्तरदाता के रूप में अपने नाम का उपयोग नहीं करते थे ।

लखनऊ आदि के श्री रामप्यारे त्रिवेदी आदि बुद्धिजीवीयों ने एक बार ध्रुवके सम्मुख ही गुरुदेव से कह दिया– 'महाराज ! बस हम सबों की इन्हीं पर दृष्टि लगी है । आपके बाद और कोई दृष्टिगोचर नहीं होता है ।'

गुरुदेव प्रायः कहा करते थे । 'मेरी मौज जब चाहूँ तभी शरीर छोड़ूँ एक सौ सोलह वर्ष भी रहने का भाव होगा तो रह लूँगा । ऐसी स्थिति में 'आपके बाद' यह वचन उनके लिए अत्यन्त कटु था, ध्रुवजी की प्रशंसा सुनकर वे धीमे स्वर से बोले– 'हमारी भी दृष्टि एकमात्र इन्हीं पर है ।' ध्रुवजी ने समझ लिया – यह प्रशंसा हमारे लिए शूल बनकर प्रगट होने वाली है ।

❋

७३. कलहोपदेश

एक दिन अधिपति अकेले में ध्रुव की कुटिया पर पधारे । हाथ पकड़कर ध्रुवजी को एकान्त में ले गये । उन्होंने कहा– 'विवेकानन्द मेरी कोई भी बात नहीं सुनते । मेरी भावना के सर्वथा विरुद्ध कार्य करना ही वे अपना धर्म समझते हैं । मुझे टीला, कुञ्जगुफा, पर्णकुटी आदि

सात्त्विक वस्तुएँ अतिप्रिय हैं । सादा जीवन एवं साधक मुझे अतिप्रिय है । बैंक बैलेन्स मुझे विलकुल पसन्द नहीं है । आप इन सब बातों को अच्छी प्रकार जानते हैं । इन्हें विस्तारपूर्वक बताने की आवश्यकता नहीं है । विवेकानन्द शौनकटीला खुदवाकर पर्णकुटीरों को तोड़वाकर पक्का भवन बनवा रहे हैं । शौनक कुटी को खुदता देख मुझे लगता है कि मेरा शरीर ही खोदा जा रहा है । आप जाकर शौनक कुटी का खोदना बन्द कर दो ।'

ध्रुवजी शौनक कुटी पहुँचे । उन्होंने मजदूरों से कहा– 'आप लोग मुझे भी जानते हैं और स्वामीजी को तो अपना भगवान् ही मानते हैं । उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है । उन्हें शौनकटीला खुदने से बहुत कष्ट है । आप मेरे कहने पर खोदना बन्द कर दीजिये ।'

मजदूरों ने खोदना बन्द कर दिया । विवेकानन्द को पता चला वे ध्रुव पर परोक्ष में बहुत कुपित हुए, उन्होंने घोषणा कर दी कि ''स्वामीजी कब तक यहाँ बैठे रहेंगे ? उनके बाहर जाने पर हम खुदवा देंगे । स्वामीजी को पं.माधवाचार्य ने जगदाचार्य की उपाधि दी और दिलवायी है । स्वामीजी तो योग्य नहीं हैं । सिंहासन आदि उनके लिए मैं नहीं बनने दूंगा । उनके मर जाने पर मैं जगदाचार्य के रूप मैं पुजूँगा और टीले को खुदवाकर दिव्यव्यासपीठ का रूप देना अभी से प्रारम्भ करूँगा ।''

स्वामी तक दूतों ने सन्देश पहुँचा दिया – 'तनातनी का वातावरण छा गया कुछ इधर कुछ उधर, कुछ दोनों ओर । एक दिन शौनक जी को विवेकानन्द से संघर्ष के लिये उत्तेजित किया गया । शौनकजी ने यह कहकर पीछा छुड़ा लिया कि 'कानपुर और शुक्लागंज में रहने वाला मैं विवेकानन्द से संघर्ष में विजयी हो जाऊँ सम्भव नहीं ।'

ध्रुवजी को सरकंडे के वन में पुनः विवेकानन्दजी के प्रति उत्तेजित

करने का प्रयास किया गया । ध्रुवजी ने अधिपति से कहा– 'आपका कष्ट उचित है । आपका पक्ष भी उचित है । आपने इतने विस्तृत आश्रम की रचना जिस उद्देश्य से की है, वह भी स्तुत्य है । उसका अनुगमन भी हमारा कर्त्तव्य है । परन्तु समस्या का समाधान गाली और गोली से सम्भव नहीं है । विवेकानन्दजी जब माँ के गर्भ में थे तब से आपने उनको लक्ष्य में रखकर उपदेश दिया है । काशी भेजकर उन्हें योग्य बनाया है । वर्षों अपनी व्यक्तिगत सेवा में रखकर अपनी रीति-रिवाज से अवगत कराया है । परन्तु सब जानते हैं कि वे घोर रजोगुणी हैं । आपकी योजना और भावना के सर्वथा विरुद्ध ही उनकी योजना और भावना है । उनको आपने संन्यासी भी बना दिया है । आपके शिष्य जिस घर के वृद्धा और वृद्ध हैं, उनके शिष्य उस घर के युवक और युवतियाँ हैं । आपने मध्यमवर्ग और गरीबों को अपनाया है, उन्होंने धनाढ्यों और मध्यमवर्ग तक स्वयं को सीमित रखा है । आपको साधक प्रिय हैं । उन्हें अराजक प्रिय हैं । आपके पास धन नहीं है । उनके पास लाखों रुपये हैं । आपके पालित पुत्र के रूप में ही एवं राजकुमार तथा उत्तराधिकारी के रूप में ही सर्वत्र उनकी प्रसिद्धि है । आपने स्वयं को रामकृष्ण परमहंस के रूप में प्रस्तुत कर उन्हें विदेशों में जाकर धर्म और अध्यात्मके प्रचारके लिए विवेकानन्द बनानेकी भावनासे उनका नाम विवेकानन्द रखा है । ऐसी स्थिति में आध्यात्मिक बल पर ही आप उनका शमन या दमन कर सकते हैं, अन्यथा नहीं ।'

❀

७४. दैवो दुर्बलघातक :

आध्यात्मिक धरातल पर ध्रुवजी काँटा माने जाने लगे । विजय, आदि कई युवक भर्ती किये गये । राजाराम शर्मा नामक पी.ए.सी. से फरार व्यक्ति भी हरिहरपर्वत पर रखे गये । ध्रुवजी के समीप अकेले में

राजाराम आकर कभी हाथ मड़ोर देता तो कभी पाँव । ध्रुवजी ने सोचा- 'मेरी सत्यनिष्ठा, सरलता, ओजस्विता के कारण बहुत ही कठिनाइयाँ प्राप्त होती हैं । परन्तु इन गुणों को छोड़कर मिथ्याभाषी और उग्रवादी तथा चाटुकार बनना तो उपयुक्त नहीं । कदाचित् नैमिषारण्य छोड़ भी दिया जाए तो, इन तीनों गुणों के कारण संघर्ष का वातावरण तो यावज्जीवन बना ही रहेगा । ऐसी स्थिति में जो विप्लवकारी दृश्य नैमिषारण्य में मेरे लिए प्रस्तुत होनेवाला है, उसे झेलना ही उपयुक्त है ।'

❋

७५. कुलश्रेष्ठ की माया

कुँवरलाल कुलश्रेष्ठ कम्युनिष्ट थे । ध्रुवजी के प्रवचनों से प्रभावित होकर ही वे आगरा में गुरुदेव के प्रति अस्त्रसहित समर्पित हुए थे । पत्नी सहित वे गुरुदेव से दीक्षित हो गये थे । ऋषि-आश्रमों में आडिटर के रूप में भी भेजे जाने लगे थे । उन्होंने गहराई से नैमिषारण्य की परिस्थिति का अध्ययन किया । वे अवसर का लाभ उठाकर गुरुदेव के अत्यन्त सन्निकट होने का जाल विछा रहे थे ।

उन्होंने गुरुदेव से कहना प्रारम्भ किया- 'विवेकानन्दजी तो आपके बचपन से पाले हुए हैं । आपके पुत्रतुल्य हैं । धन भी उनके पास पर्याप्त है । आश्रम चलाने के लिए धन-जन दोनों चाहिए । विद्वान् भी हैं । परन्तु आप वाली अध्यात्मविद्या और साधुता उनमें नहीं है । वे शरीर और मस्तिस्क पर धन, रूप, विद्या, जन आदि के प्रभाव से शासन कर सकते हैं । ध्रुवजी आपके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी हैं ; वे त्यागी, तपस्वी, निरभिमान, स्वाभिमानी और निश्छल हैं । लोगों के हृदय और मस्तिष्क दोनों पर उनका शासन है । कदाचित् उनका ध्यान धन की ओर गया तो वे आश्रम चलाने में भी सबसे आगे सिद्ध होंगे । उनके

बढ़ते हुए प्रभाव को रोक पाना भी कठिन है । वे अपना प्रभाव डालने का कोई प्रयास नहीं करते ; फिर भी नगर, गाँव, आश्रम सर्वत्र उनका अद्भुत प्रभाव है । मैंने रूस-यात्रा का भी उनसे कई बार आग्रह किया, परन्तु उन्होंने रूस आदि की यात्रा से मना कर दिया । यदि वे रूस आदि की यात्रा करें तो सबसे अधिक कम्युनिष्ट उनसे प्रभावित होकर उनके भक्त बनेंगे । शौनकजी कम्युनिष्ट और समाजवादी स्वयं को कहते हैं । परन्तु वे कम्युनिष्टों और समाजवादियों को अपने प्रवचनों से प्रभावित कर सनातनी नहीं बना सकते ।'

विवेकानन्दजी सनातनियों को अपने प्रवचनों से प्रसन्न करते हैं, परन्तु बुद्धिजीवियों, वैज्ञानिकों तथा प्रौढ पण्डितों को अपने प्रवचनों से प्रभावित नहीं कर सकते । ऐसी स्थिति में **शौनकजी, विवेकानन्दजी और स्वयं आपके प्रभाव को भी ध्रुवजी का प्रभाव धूमिल न कर दे, मुझे तो इसकी चिन्ता बनी रहती है** । समाजवादी उमेशजी तो ध्रुवजी से गीता पढ़ने लगे हैं । सभी साधक ध्रुवजी का गुणगान करते आघाते नहीं हैं ।

केकई पर मन्थरा के प्रभाव के तुल्य अधिपति पर कुँवरलाल के कथन का प्रभाव पड़ने लगा । जवाहरलाल गोयल धीरे से कुँवरलाल के स्वर में स्वर मिलाकर कहने लगे- **'गुरुदेव ! इनके कथन पर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक है । विवेकानन्दजी को नियमित रखना भी जरूरी है।'**

ध्रुवजी ने एकान्त में विचार किया । मेरे स्वामीजी के साथ में रहने पर समाज में प्रभाव पड़ता था । जब मैं साथ में नहीं हूँ तो समाज पर मेरा प्रभाव बढ़ने का भी मार्ग अवरुद्ध ही है । बड़े आश्रम से भी सम्बन्ध कटा हुआ है । गिने-चुने साधक ही मेरे सम्पर्क में हैं । सम्भव है, मेरे प्रति किसी के मन में ईर्ष्या न हो और जीवन के कुछ वर्ष कल-कुशल से व्यतीत हो जाँय ।

७६. भृङ्गीकीट कौतुक

एक दिन ध्रुवजी शुकदेवटीला के दक्षिण भाग में एक गुफा में अकेले बैठे थे। एक भृङ्गी ने गुफा में बिल बनाया। वह बाहर आकर घास पर विचरण करनेवाले एक विशेष प्रकारके कीट को डङ्क मारकर मूर्च्छित कर गुफा में ले आयी। उसे बिल में बन्द कर उच्चस्वर से गूँजना प्रारम्भ किया। गूँज की एक तानता के प्रभाव से लगभग पैंतालिस मिनटों में बिल में स्थित कीट भृङ्गी बन गया। पारखी भृङ्ग ने उसे बिल से निकाल दिया। नयी भृङ्गी ने भी तत्काल नया बिल बनाकर बाहर जाकर एक कीट विशेष को डङ्क मारकर मूर्च्छित कर दिया। उसे बिल में बन्द कर पूर्वोक्त प्रक्रिया से भृङ्गी बना दिया। लगभग तीन घण्टे तक ध्रुवजी ने यह अनुपम दृश्य देखा।

हरिहरपर्वत के पश्चिम भाग में गोमती तट से संलग्न एक नाला था। नाले की लंबाई लगभग डेढ़ सौ फीट और चौड़ाई चालीस फीट तथा गहराई दस फीट थी। उसे परिस्कृत कर साधकों से गुरुदेव ने सुन्दर सरोवर का रूप प्रदान किया। उसमें कमल लगवाये गये। कमल पुष्प से सुशोभित सरोवर का दृश्य अद्भुत था। एक दिन सायंकाल ध्रुवजी हरिहर पर्वत के घाट पर बैठे थे। साथ में श्री शिवाजी थे। भ्रमरवृन्द पङ्कज के पराग और मकरन्द का आस्वादन करने के लिए उतावले हो रहे थे। क्षत्रियोचित स्वभाव के कारण शिवाजी हथेली से भ्रमरों को रोक रहे थे और भ्रमर हथेली को विदीर्ण कर पुष्प तक पहुँचने का प्रयास कर रहे थे। यह दृश्य शिवाजी सहित ध्रुवजी को बहुत आह्लादित किये हुए था।

७७. वध की तैयारी

वसिष्ठ गुफा पर ध्रुवजी ने कुछ कन्द के वृक्ष लगवाये । कन्द के वृक्ष सुशोभित होने लग गये । साही यदा-कदा कन्द को खोदकर खाने लग गये । एक दिन प्रातः सत्संग के समय दैवापहारक अधिपति ने सत्संगी शिष्यों से कहा- 'अब तो रात्रि में निशाना लगाकर साही को मार डालना ही उपयुक्त है ।' सत्संगी आश्चर्यचकित हो गये । वे सोचने लगे, पहरा देना ही पर्याप्त है । साही को मार डालने की बात अपने स्वभाव के विरुद्ध कैसे कह रहे हैं ? अधिपति ने राजाजी से कहा- 'आप राजाराम शर्मा को अपनी बन्दूक दो-चार दिनों के लिए दे दें । फिर शर्मा आपको बन्दूक लौटा देंगे ।'

पहले तो राजाजी अनुनय-विनय करने लग गये । 'महाराज' साही से रक्षा के लिए लाठी वाले पहरेदार ही पर्याप्त हैं । मेरे नाम लाइसेन्स है, गलत प्रयोग हो गया तो मैं फँस सकता हूँ ।

अधिपति का कठोर रुख देखकर राजाजी किं-कर्त्तव्यविमूढ हो विवशता की स्थिति में आज्ञा मिलने पर बन्दूक देने के लिए राजी हुए ।

भावुक भक्तों ने इसे अधिपति की विचित्र लीला की संज्ञा दी । पारखी भक्तों ने किसी अमङ्गल भवन की नीव की इसे संज्ञा दी ।

अधिपति की आज्ञा से बाँस काटे जाने लगे । तीर-धनुष बनाये जाने लगे भरत आदि युवकों को दिये जाने लगे । कभी नैमिषटीला पर तो कभी अन्यत्र सभा का आयोजन होने लगा । ध्रुवजी को प्रवचन के लिए विवश किया जाने लगा । विचित्र भंगिमा में तीर -धनुष लिए दो-तीन नये युवक ध्रुव की ओर निहारने लगे ।

❋

७८. वध का विफल प्रयास

अधिपति कुछ दिनों के लिए प्रचार क्षेत्र में गये । एक दिन लखीमपुर जिला का एक युवक जो ध्रुवजी की सेवा के नाम पर सौंपा गया था, वंशीघाट जा पहुँचा । निर्मल के साथ ध्रुवजी अध्यात्म की चर्चा कर रहे थे । वह ध्रुवजी को पीछे से धकेलने लगा । ध्रुवजी ने बार-बार उसकी गतिविधि को देखकर उसका मनोभाव जानना चाहा । उसने बताया- 'मैं आपको गोमती में आज डुवाकर मार देना चाहता हूँ ।'

ध्रुवजी सावधान हुए । निर्मल भयभीत हो गये । ध्रुवजी ने सोचा इसे भूत-प्रेत आदि उन्मादी तत्त्व ने दबोचकर ऐसा करने के लिए विवश किया है । अथवा सम्भावित षड्यन्त्र से विवश हो, यह ऐसा करना चाहता है । ध्रुवजी ने दोनों ही स्थितियों से दृढतापूर्वक निपटने का निश्चय किया ।

ध्रुवजी ने विजय से कहा- ''मुझे पानी में डुबाकर मारने की बात छोड़ो, पहले कुश्ती लड़ लो ।''

बस क्या था । विजय ने ताल ठोंककर झपट्टा मारा, ध्रुवजी ने बालुका के टीले पर उसे गेन्द के समान दस-पद्रह बार उठा-उठाकर पटका । वह मूर्च्छितप्राय हो गया । निर्मल और ध्रुवजी ने उसे सहारा देकर एक गुफा में लाकर लिटा दिया । ध्रुवजी ने उससे कहा- 'तुम पर्याप्त थक गये हो ! चार-पाँच दिनों तक यहीं विश्राम करो । निर्मल तुम्हारे पास समय पर भोजन पहुँचा दिया करेंगे ।'

विजय ने कहा- ''यह आपकी मुझपर बड़ी कृपा होगी । चार-पाँच दिनों में स्वस्थ होने पर वह ध्रुवजी के पास आया । ध्रुवजी ने कहा- उस दिन नदी के तट पर जो कुछ हुआ था, क्या तुम्हें स्मरण है। क्या तुम्हें किसी ने मुझे डुबाने की प्रेरणा दी थी ? विजय ने रोना प्रारम्भ किया । कुछ भी बोलकर उत्तर नहीं दिया ।''

७९. अमरनाथ का ताड़न

एक दिन रात्रि में राजाराम वसिष्ठ गुफा में ध्रुवजी से बात करने आया। अमरनाथ मिश्र गुफा के द्वार के पास थे। जब वह बात करके जाने लगा तब ध्रुवजी ने मानवता के वशीभूत हो, अमरनाथ जी से कहा– 'अंधेरी रात है। इन्हें लालटेन से रास्ता दिखा दीजिये।'

कुछ देर हुई। मिश्र जी लौटे नहीं। बारह से चट–पट की आबाज सुनाई दी। ध्रुवजी झटपट बाहर निकले। देखा, लालटेन गिरी हुई है। अमरनाथ जी को पटककर राजाराम पीट रहा है।

ध्रुवजी ने सिंह गर्जन से कहा– 'राजाराम ! इन्हें छोड़ता है या नहीं ?' ऐसा कहकर ध्रुवजी ने बलपूर्वक राजाराम को पकड़कर अलग किया। अमरनाथ जी पर्याप्त थक चुके थे। हाँफ रहे थे। उन्होंने कहा– गुफा के बाहर आते ही इसने लालटेन छीनकर फेंक दी। मुझे दबोचकर, नीचे डालकर पीटना प्रारम्भ किया।

ध्रुवजी ने कहा– आप यहीं बैठे रहिये।

ध्रुवजी शौनक कुटी की ओर मुँहकर जोर–जोर से दौड़ो–दौड़ो कहकर चिल्लाने लगे। पद्मपाणि जी दौड़े आये। हरिहरपर्वत की ओर से गौरीशङ्कर वानप्रस्थजी दौड़े आये।

ध्रुवजी ने दोनों को सारी घटना सुना दी। गौरीशङ्कर जी का राजाराम बहुत प्यारा हो गया था तथापि ध्रुवजी के प्रति अद्भुत स्नेह और उनके आक्रोश को देखकर गौरी–शङ्कर कुछ बोलने या करने की स्थिति में नहीं थे। पद्मपाणिजी ने कहा– 'यह ब्रह्म हत्यारा है। ब्रह्मराक्षस है, इसे दण्ड देना चाहिए।'

ध्रुवजी ने कहा– इसके दोनों हाथ बाँधकर बड़े आश्रम तक एक दो साधकों के साथ ले जाकर चाचाजी और प्रधानमन्त्री बापूजी को

सारी बातें बताकर गुरुदेव के लौटने तक सौंप दीजिए । साथ ही मेरा नाम लेकर उन्हें कहिये– 'यदि यह छोड़ दिया गया और इसने कोई अमङ्गल कृत्य किया तो बापूजी जिम्मेदार होंगे ।'

जब पद्मपाणि जी हाथ बाँधने लगे तब राजाराम ने कहा – ध्रुवजी मेरी प्रार्थना है कि हाथ सामने से बाँधना, पीठ के पीछे करके मत बाँधना ।

ध्रुवजी समझ गये कि यह पी.ए.सी. का भागा हुआ जवान है । आनन–फानन में सामने का बंधन तोड़कर फिर आक्रमण करना चाहता है । ध्रुवजी ने पद्मपाणिजी और एक–दो सहयोगियों से कहा– इसके दोनों हाथ पीछे करके बाँध दीजिए ।

गौरीशङ्करजी राजाराम की यह दशा देखकर चुपके से अपनी कुटियाँ लौट गये । पद्मपाणि जी ने राजाराम को बड़े आश्रम पहुँचा दिया ।

❃

८०. दुष्ट पर कृपा, सन्त को दण्ड

तीन–चार दिन बाद अधिपति लौटे । वसिष्ठ गुफा में उन्होंने विश्राम किया । राजाराम ने सारी बातें उन्हें बड़े आश्रम में ही बता दी थी। प्रातः सत्सङ्ग में उन्होंने राजाराम को आज्ञा दी – 'यहाँ सभी वर्ण के व्यक्ति विराजमान हैं । सबके चरण छूकर प्रणाम करो । तुमने जो कुछ किया है, उसका यह प्रायश्चित्त है ।'

विश्वमित्र आदि पुलिस विभाग से अवकाश प्राप्त वानप्रस्थी गुनगुनाने लगे– आखिर इसने ऐसा करने का साहस ही क्यों किया । ? यह तो सरासर षड्यन्त्र है । इस पर चर्चा न करके, इस पी.ए.सी. से फरार को सबको प्रणाम कराके भीषण घटना को दबा देना, कहाँ तक उचित है ?

पारखी व्यक्तियों ने समझ लिया कि यह घातक उपक्रम था । अमरनाथ के बहाने ध्रुवजी को मारने का षड्यन्त्र था ।

दूसरे दिन प्रातः तीन बजे अधिपति ने जवाहरलाल गोयल के सम्मुख ध्रुवजी से कहा– 'आपने उसे हाथ बाँधकर बड़े आश्रम पहुँचाया, यह उचित नहीं किया ।'

ध्रुवजी ने कहा– 'मुझे क्या करना चाहिए था ?'

स्वामीजी ने कहा– 'अपने अध्यात्मिक तेज से हतप्रभ करना चाहिए था ।'

ध्रुवजी ने कहा– 'मैंने वैसा ही किया । अमरनाथ जी को दबोचे हुए उसे पृथक् कर लिटा दिया । वह मरणासन्न स्थिति में लेटा रहा । वह सर्वथा हतप्रभ था, नहीं तो अमरनाथ जी के बाद मुझ पर आक्रमण कर सकता था । उसका अग्रज भी था । सबकी बोलती बन्द थी । वह अध्यात्मिक तेज का प्रभाव ही था ।'

स्वामीजी ने चिढ़कर कहा– 'यदि ऐसा ही था तो किस भय से पीछे की ओर हाथ करके, हाथों को बँधवा कर उसे बापूजी के पास भेजा गया ।'

ध्रुवजी ने कहा– 'किसी भय से नहीं । शव को श्मशान बाँधकर भेजा जाता है, जबकि उससे कोई भय नहीं होता । शव को बाँधकर श्मशान पहुँचाने की विधा के तुल्य ही हमने आध्यात्मिक तेज से हतप्रभ, स्तम्भित शर्मा को बापूजी तक पहुँचवाया ।'

अधिपति उत्तर सुनकर किंकर्त्तव्यविमूढ हो गये । फिर भी कहा– 'आपसे पाप हुआ है, आप उसके प्रायश्चित्त के लिए अभी खड़े होकर पूर्व की ओर मुखकर शिवजी का सौ बार नाम लिजीए ।'

ध्रुवजी ने सोचा– अब हठ का परिचय देना उचित नहीं । भगवान् का नाम लेना तो अभीष्ट ही है । वे पूर्व की ओर मुख करके सौ

बार शिवजी का नाम लेकर बैठ गये । परन्तु उनकी भाव-भगिमा से समझ गये कि अब कोई भयङ्कर घटना मेरे प्रति घटने वाली है ।

❀

८१. रक्षक नाग

अधिपति प्रचार-प्रसार के लिये बाहर गये । उनकी आज्ञा के अनुसार शौनक कुटी में उनके निवास की व्यवस्था की गयी । ध्रुवजी को वसिष्ठ गुफा में रहने की आज्ञा मिली । रात्रि में दस बजे के लगभग एक विषधर भयङ्कर सर्प ध्रुवजी के पास आकर लेटने का प्रयास करने लगा । उसे भगाने के सभी उपाय व्यर्थ गये, उसे मरवाना ध्रुवजी को अभीष्ट नहीं था । रात्रि में नित्य जागते रहना भी सम्भव नहीं था । स्थान बदल लेना अनुशासन के नाम पर किसी भीषण दण्ड को जन्म देता । रात्रि भर लालटेन जलाना भी सम्भव नहीं था । गुफा गैस से भर जाती तथा एक सप्ताह के लिए प्राप्त मिट्टी तैल एक रात में ही समाप्त हो जाता । नागदेव को नारायण की शय्या शेष समझकर और नागलोक की जया, विजया तथा विषहरादि देवियों का स्मरण कर ध्रुवजी सो जाते ।

मूलमन्त्रश्च वेदोक्तो भक्तानां वाञ्छितप्रदः ।
मूलकल्पतरुर्नाम प्रसिद्धो द्वादशाक्षरः ।।
(ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहा)
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहेति कीर्त्तितः ।
पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ।।
मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स सिद्धो जगती तले ।
सुधासमं विषं तस्य धन्वन्तरिसमो भवेत् ।।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्रकृतिखण्ड ४६.५,७)

"ॐ नमो मनसायै ।"

"जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी ।

वैष्णवी नागभगिनी शैवी नामेश्वरी तथा ।।
जरत्कारुप्रियाऽऽस्तीकमाता विषहरीति च ।
महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता ।।
द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले यः पठेत् ।
तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च ।।"

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण २.४५.१४-१७)

श्री अधिपति के नैमिष लौटने पर स्थानपरिवर्त्तन की प्रार्थना की गयी ; परन्तु वह भी ठुकरा दी गयी । सर्पकाण्ड लगभग डेढ़ महीने चला । नित्य रात्रि के दस बजे सर्प आता और प्रातः पाँच बजे चला जाता । ध्रुवजी और मिश्रजी ने यही सोचा की यह कोई घातक आक्रमण से रक्षा करने वाला देवदूत है । अधिपति नैमिष में विद्यमान थे ।

❀

८२. वध की इच्छा

प्रातः सत्सङ्ग के लिए बड़े उमंग से भक्तवृन्द आने लगे । वसिष्ठ गुफा का प्राङ्गण भक्तों से भर गया ।

राजाजी को उन्होंने कहा- 'राजाजी ! उस बार कन्दमूल की रक्षा की योजना क्रियान्वित नहीं की जा सकी । मेरे जाने के बाद आप अपनी बन्दूक एक-दो दिन के लिए राजाराम को दे दीजिये । एक-दो दिन में साही मर और डर जायेंगे । फिर आपको राजाराम बन्दूक लौटा देंगे ।

राजा भयभीत थे । किसी को समझ में यह बात नहीं आ रही थी, कि कषैले दो-चार कन्द की रक्षा के लिए साही मारे जायेंगे, या कोई और । सभा साही काण्ड में ही समाप्त हुई ।

❀

८३. ध्रुव और मयूर की रक्षा

एक बार ध्रुवजी गोमती-क्षेत्रके वनमें एकान्तमें शौचक्रियाका सम्पादन कर रहे थे। ध्रुवसे स्नेह रखनेवाला एक मयूर वहीं आ गया। एक बहेलियेकी दृष्टि मयूरपर पड़ी। उसने भालेका दूरसे उसपर बार किया। दैवयोगसे भाला मयूरके समीप भूमिमें धस गया। मयूर उड़ गया। ध्रुव सहसा चौंके। प्रभुकी मयूर पर और स्वयंपर अद्भुत कृपाका अवलोकन कर वे विह्वल हो गये। बहेलिया आया। उसने ध्रुवको देखा। वह कुछ बोल न सका, हतप्रभ था। बधिक भाला उठाकर चलते बना। ध्रुवजीने उसे कुछ भी नहीं कहा।

❀

८४. किं कर्त्तव्यविमूढता

श्री विश्वमित्र पूजन ध्रुवजी से एकान्त में मिले। उन्होंने कहा- महाभाग की यह बात रहस्यमयी है। 'मेरे जाने के बाद राजाराम को बन्दूक देना। वे साही को मारकर बन्दूक तुम्हें लौटा देंगे।' ध्रुवजी तुम तो दिल्ली में पढ़े हो। क्या बता सकते हो, वह साही कौन हो सकता है ?

ध्रुवजी ने धैर्यपूर्वक गर्जन के साथ कहा- 'मैं।'

विश्वमित्रजी ने कहा- फिर तुम चुपके से यहाँ से चम्पत क्यों नहीं हो जाते ?'

ध्रुवजी ने कहा- 'मुझे भगवत्प्रदत्त दिव्य दृष्टि से दिखाई देता है कि, यहाँ के दाना-पानी का प्रबल योग अभी अवशिष्ट है। विश्वमित्र जी अद्भुत उत्तर सुनकर चुप रहे। वे रुदन करते जोर-जोर से कहने लगे- 'तुम जैसे शरणागत मेधावी सुयोग्य और रक्षक तथा सेवक गुरुभक्त को भी जो मरवाना चाहते हैं, वे हम लोगों का क्या करेंगे ? कुछ समझ में नहीं आता। हमने भी दाढी बढ़ा ली घर छोड़ दिया। अब कोई विकल्प

नहीं । मेरी यह दशा है तो सामान्य व्यक्ति यहाँ की माया का पार कैसे कर सकता है ?

विश्वमित्रजी ध्रुवजी के प्रति अत्यन्त आस्थावान् थे । वे भगवद्गीता का पाठ करनेवाले सरयूपारीण मिश्र परिवारके ब्राह्मण थे । वे नित्य अग्निहोत्र करते थे । उन्होंने उच्च पद पर प्रतिष्ठित रहने पर भी अतिरिक्त धन नहीं प्राप्त किया । वे जीवन में अपनी कमाई से एक पर्णकुटी भी नहीं बना पाये । वे जब अवकाश प्राप्त करनेके बाद कानपुरमें रहने लगे, तब यदा-कदा निकटवर्ती शुक्लागञ्जमें पूज्य गुरुदेवका दर्शन करने आने लगे । वे ध्रुवजी से परिचित हो गये । उन्होंने एक-दो बार ध्रुवजी का प्रवचन भी सुना ।

जब वे बाबा हो गये । दो वर्षोंके बाद नैमिषारण्यमें एकान्तमें ध्रुवजीसे मिले और अबोध बालकके समान सहसा रोने लगे ।

ध्रुवजीने रोनेका कारण पूछा । उन्होंने कहा- तुम्हारा सौम्य स्वभाव, गौरवर्ण, ब्राह्मणवर्ण, प्रतिभावैभव, भाषणकौशलादिसे प्रभावित होकर मैं तुम्हारे प्रति आस्थान्वित था; तथापि छोटी आयु में दिल्लीकी पढ़ाई छोड़कर सगे-सम्बन्धियोंसे मुख मोड़कर बाबा बननेके पीछे कोई बदमासी तो हेतु नहीं है'; यह शङ्का मन को उद्वेलित कर रही थी । मैंने लगभग दो वर्षों तक तुम्हारी स्वयं छानवीन की और तुम्हारे पीछे कइयोंको लगाया । परन्तु जब कोई कमी नहीं दृष्टिगोचर हुई तो स्वयंको कोसने और तुम्हें योगभ्रष्ट सन्त मानने के लिए बाध्य हुआ । बेटा ! मैंने पुलिस-विभागमें नौकरी क्या की, अपनी सद्गतिका मार्ग ही बन्द कर डाला । हमारे सामने कदाचित् शुकदेव भी आ जाँय तो हमारी पहली भावना यही होती है कि यह कोई उचक्का, शैतान, दम्भी ही होगा । अतः तुम मुझे क्षमा करो ।

❋

८५. पापी को दण्ड

एक दिन रात्रि में ध्रुवजी अपनी गुफामें विश्राम कर रहे थे। सहसा बाहर से अपरिचित की आवाज आयी । ध्रुवश्रीने कहा– 'कौन है, क्या है ?' बाहर से आवाज आयी– ''मैं राजाराम का बड़ा भाई । दो दिन पहले बाहर से आया हूँ । राजाराम को थोड़ी देर पहले उल्टी प्रारम्भ हुई । बेहोशी से पहले रोते–रोते उसने कहा– 'आप ध्रुवजी से प्रार्थना करो, वे मुझे जीवनदान दें, नहीं तो मैं मर जाऊँगा ।''

ध्रुवजी ने कहा– 'कहाँ है, राजाराम ?'

शर्मा ने कहा– 'हरिहर पर्वत पर बेहोश ।'

ध्रुवजी ने कहा– 'चलिये, चिन्ता मत कीजिए । आपके छोटे भाई स्वस्थ होंगे, जीवन लाभ करेंगे ?'

हरिहर पर्वत पर ध्रुवजी गये । राजाराम के शरीर को निहारा, हाथ फेरा । राजारामजी की बेहोशी टूटी । फूट–फूट कर रोने लगे । ध्रुवजी ने कहा– 'इतना अधीर आप क्यों हो रहे हो ।'

राजाराम ने कहा– मैं आपको मारने के लिए वसिष्ठ गुफा के पासवाली गुफा में निशाना लगाने का अभ्यास कर रहा था । सोच रहा था, कुछ रात बीत जाए एकादशी है । ध्रुवजी की गुफा में घुस कर उन्हें मार डालूँगा । गोमती में शव को बहा देने की व्यवस्था कर ली गयी थी। परन्तु एक अत्यन्त काली स्त्री प्रकट हुई । उसे देखते ही मुझे उल्टी होने लगी । मेरी चेतना लुप्त होने लगी । किसी तरह हरिहर पर्वत पर आ सका । मैंने अपने भाई से कहा– मुझे ध्रुवजी ही जीवन दे सकते हैं । आपने मेरे अपराधों पर ध्यान न देकर मुझे जीवनदान दिया । आज मेरा उद्धार हो गया ।

ध्रुवजी ने भगवान् की कृपा का स्मरण कर भगवान् को नमस्कार किया । अपने स्थान पर लौट आये । उन्होंने उस घटना का कहीं प्रकाश

नहीं किया, केवल अमरनाथ मिश्र जो पास में रहते थे, उन्हीं तक घटना की जानकारी सीमित रहने दी ।

❋

८६. नैमिष त्याग

ध्रुवजी ने अमरनाथ मिश्रजी से परामर्श लिया और नैमिषारण्य से अयोध्या, प्रयाग, चित्रकूट, सुतीक्ष्ण, अमरकण्टक, पुरी, बालाजी होते हुए रामेश्वरम् की पदयात्रा का विचार किया । ध्रुवजी ने एक पत्र लिखा । निर्मल जी को बताया, मैं अमरनाथ मिश्र को साथ लेकर अज्ञात मार्ग से अयोध्या की ओर जा रहा हूँ । सूर्यास्त होने तक बहुत दूर गाँव और जंगल के मार्ग से पहुँच जाऊँगा । तब तुम मेरा लिखा हुआ पत्र श्री डिप्टी साहव विश्वमित्र पूजन जी को दे देना । वे पत्र के आशय को श्री गुरुदेव के नैमिषारण्य आने पर बता देंगे । मैं स्वेच्छापूर्वक तीर्थयात्रा की भावना से जा रहा हूँ । मेरे इस वनगमन में किसी का हाथ नहीं है । तुम मेरी यह भावना अधिपति से निवेदित कर देना ।

स्नानादि कृत्य से निवृत्त होते ही पुलमार्ग से गोमती पार करके ध्रुवजी और अमरनाथ मिश्रजी अज्ञात मार्गपर द्रुतगति से चलने लगे ।